Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

C. No. 4031

'मास्टर' मणिमालायाः १९५ संख्यको मणिः (सा० वि० ९)

॥ श्रीः ॥

काशीस्थराजकीयसंस्कृतप्रथमपरीक्षानिर्द्धारितम्

वाल्मीकिरामायणायोध्याकाण्डीयम्

रामवनगमनम्

२४ सर्गात् ३१ सर्गपर्यन्तम्-अष्टसर्गात्मकम् ।

[सरलव्याख्या-भावार्थहिन्दी-प्रभाटीकासमेतम्]

सम्पादकः—

नारायणशास्त्री 'शुक्लः'

015,2
NA

प्रकाशकः—

मास्टर खेलाड़ीलाल ऐण्ड सन्स

संस्कृत बुकडिपो,

कचौड़ीगली, बनारस–१

मूल्यम् १॥)

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

015,2 4031
NA

Valmiki
Ayodhya Kandam!
Ram van gamanam

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE IKS

श्रीवाल्मीकिरामायणायोध्याकाण्डीयम्

२६

श्रीरामवनगमनम्

[२४ सर्गात् ३१ सर्गान्त–अष्टसर्गात्मकम्]

केदारनाथ ... को अर्पित, १५-७-७५

तदिदम्—

प्रायःशतग्रन्थसम्पादकेन "शास्त्रार्थमहाविद्यालय, मीरघाट, काशी" इत्यस्याऽध्यक्षेण विश्वविश्रुतपण्डितराजश्रीवेणीमाधवशास्त्रिणामात्मजेन ख्यातनाम्ना आचार्य-श्रीराजनारायणशास्त्रिशुक्लमहोदयेन न्यायाद्यनेकशास्त्राचार्येण संस्कृत-हिन्दीद्वयात्मकप्रभाटीकया संयोज्य सम्पादितम् ।

तच्च—

काशीस्थ—'संस्कृत-बुकडिपो'–इत्यस्याध्यक्षवरेण्यैः

मास्टर खेलाड़ीलाल ऐण्ड सन्स महोदयैः

स्वीये 'मास्टर-प्रिण्टिङ्ग-वर्क्स' ऽभिधयन्त्रालये मुद्रापयित्वा प्रकाशितम् ।

रघुनन्दन प्रसाद शुक्ल संस्कृत पुस्तकालय

JANGAMAWADI MATH LIBRARY

पुनर्मुद्रणाद्यधिकारः प्रकाशिकाधीनः ।

मूल्यम् १॥)

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

वक्तव्यम्

अये ! भक्तिभावभाजो भगवद्भजनैकचरिताश्चरणीयार्यमर्यादा मर्यादापुरुषोत्तमरामचन्द्रस्य चरितभूतम् महाकविवाल्मीकिविरचितम् आदिकाव्यं वाल्मीकिरामायणं नाम को न जानीते जगज्जालजटिलोऽपि । अत्र च महाकाव्ये यद्यपि शिष्टसम्प्रदायानुसारम् प्रत्यक्षतरम् पुण्यप्रवाहा आनन्दजाह्नवी पवित्रयति पाठकान् श्रोतृनिकरान् सावधानानसावधानाँश्चेति । तथापि सनातनधर्ममूलभूतेऽस्मिन् सुचरिते मातुः पुत्रे, पुत्रस्य स्वमातरि, पत्युः स्वजायायाम्, तस्याश्च स्वपतौ, भ्रातुर्भ्रातरि, पितुः पुत्रे, सुतस्य च जनके कीदृशी भक्तिः औचितीमाधत्ते इत्यादयः विषयाः साधुरूपेण सरलातिसरलभाषया भावपूर्णेन पद्यबन्धेन च अयोध्याकाण्डीये भगवतः रामस्य वनगमनसमये वर्णिताः । प्रसन्नतायाश्च विषयोऽयं यत् काशिकराजकीयसंस्कृतमहाविद्यालयीयपरीक्षाधिकारिभिः सहोदयैः परीक्षायाम् प्रथमायाम् परमशिक्षाप्रदम् रामवनगमनमिदम् अष्टसर्गात्मकम् निरधारि । काव्यस्यास्य पठनेन पाठनेन च प्राचीनार्यमर्यादायाः आबाल्यादेव संस्कारसम्पत्तौ पश्चात्ते नास्तिकवादाः नावकाशमीशेरन् मामकेषु धर्मजन्मस्विति सुदृढो विश्वासः ।

महाकाव्यादिदम् पृथक्कृत्य सम्पिपादयिषोः पुरतो मम बहवः विघ्नाः कार्यबाहुल्यादिरूपेण समयाभावात्मना च प्रावर्तन्त । परम् भगवतो रामचन्द्रस्यानुग्रहेण छात्राणां हितानि दर्शन्दर्शम् व्याख्यादिसमन्वितसंस्कृतहिन्दीद्वयात्मकप्रभाटीकया संयोज्य भवतां सेवासूपस्थापयतः मोमुदीति मानसम् । सत्वरमस्य सम्पादनादिषु सर्वथा दोषविरहः केनाकर्णनीयः स्यात्तथापि तत्र क्षमापटवः सहृदया एव प्रमाणमिति विनि-

भवदीय एव—

श्रीराजनारायणशुक्लः,

शास्त्रार्थमहाविद्यालयः, मीरघाट, काशी ।

SRI JAGADGURU VISHWARADHYA
JNANA SIMHASAN JNANAMANDIR
LIBRARY
जै० सं० 2008
Acc No. 4051

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

संक्षिप्तकथा

प्रथम सर्ग ।

रामचन्द्र जी के बन जाने का समाचार सुनकर माता कौशल्या ने अति दुःख प्रकट कर कहा कि हे पुत्र ! तुम आजतक ऐश्वर्यमय जीवन में पले हो अब जंगल के भोजन कन्द, मूल तथा पत्तों के बिछौने, पेड़ के नीचे सोने से कैसे निर्वाह करोगे। साथ ही तुम्हारे वियोग में इतने समयतक मैं कैसे जीवित रह सकूँगी ?। अतः मुझे भी साथ ले चलो…। रामचन्द्र जी ने माता की ऐसी बातें सुनकर कहा कि पूज्य पिता महाराज दशरथ मेरे चले जाने पर अतीव दुःखी होंगे, अगर तुमने भी मेरा साथ पकड़ा तो उनकी दशा और भी चिन्तनीय हो जायगी। सर्वश्रेष्ठ-पतिव्रता धर्म तुम्हें यही आदेश देता है कि तुम महाराज की ही सेवा करो…। हम जंगल से लौट कर जब आयेंगे तब तुम्हारे सभी मनोरथ पूर्ण होंगे। बहुत समझाने पर माता ने कहा कि भावी प्रबल है, तुम पिता की आज्ञा का पालन करो।

द्वितीय सर्ग ।

कौसल्या ने अनेकों आशीर्वाद देकर, समस्त भूतगण, देवगण इत्यादि से पुत्र की रक्षा के लिए प्रार्थना की। यज्ञादिद्वारा ब्राह्मणों से आशीर्वाद प्रदान कराया, इसके बाद पुत्र का आलिङ्गनकर प्रदक्षिणा की। रामचन्द्रजी ने भी अपनी पूज्यचरणा माता को दण्डवत् किया।

तृतीय सर्ग ।

इसके बाद रामचन्द्रजी सीताजी के पास गए। सीताजी ने उनकी ऐसी दशा देख पूछा कि महाराज ! आज तो आपका अभिषेक होनेवाला है फिर भी ऐसी दशा क्यों ? कोई भी राजचिह्न सामने नहीं दिखाई दे रहा है कारण क्या ? इस तरह की अनेक बातें सुनकर रामचन्द्रजी ने सारी बातें सीताजी को समझायीं। साथही यह भी कहा कि अब भरत राजा होगा—तू उसके सामने किसी प्रसङ्ग पर मेरी प्रशंसा न करना अन्यथा वह बुरा मान जायगा…।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

चतुर्थ सर्ग ।

सीताजी ने कहा कि हे पतिदेव! अगर ऐसा ही निश्चय है तो मैं भी आप के साथ चलूँगी क्यों कि किसी भी स्थिति में पतिव्रता स्त्री पति से अलग नहीं रह सकती। जंगल में किसी प्रकार से आप को कष्ट न देकर सुख की ही व्यवस्था करती रहूँगी, मुझे किसी प्रकार का कष्ट न होगा…।

पञ्चम सर्ग ।

रामचन्द्रजी ने बनवास के अनेक कष्टों का वर्णन कर यह चाहा कि सीता वन न चले। परन्तु सीताजी ने उन कष्टों को सुख मान कर साथ चलने का ही आग्रह रक्खा…।

षष्ठ सर्ग ।

सीताजी ने कहा कि हे पूज्यपाद! आपके साथ रहने पर किस की शक्ति है कि जो मुझे कुदृष्टि से देख सके?। रामजी ने जब वन ले जाना उचित न समझा तब सीताजी ने प्रणय कोप से रोना शुरु किया।

सप्तम सर्ग ।

सीताजी ने कहा कि महाराज! आप मुझे बार बार उपदेश न दें, मैंने बहुत कुछ उपदेश पा लिया है। अगर मेरे पिताजी को यह मालूम होता कि आप पुरुष के लिहाफ में स्त्री हैं तो वे कभी भी आपसे मेरा सम्बन्ध न करते। आपके वियोग में मुझे मर जाना पसन्द है परन्तु आपके प्रति शत्रुता करनेवाले भरत आदि की संरक्षकता में कदापि नहीं रह सकती। वन में आपके साथ रहने पर जो भी दुःख सामने आयेंगे मेरे लिए वे सुख ही हो जायँगे। आप इस की चिन्ता न करें…इत्यादि। विवश हो रामजी ने सीता को साथ ले जाना स्वीकार किया।

अष्टम सर्ग ।

लक्ष्मणजी ने भी आग्रहपूर्वक कहा कि महाराज मैं भी साथ चलूँगा। माता पिता की रक्षा आनन्द से हो सकेगी, मैं यथाशक्ति श्रीचरणों की सेवा करता रहूँगा…। लक्ष्मणजी के आग्रह को स्वीकार कर शुभ मुहूर्त्त में रामलक्ष्मण तथा सीता तीनों ही वन के लिए प्रस्थान किए।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

ज्ञानप्रभापरीक्षायां निर्धारिताऽर्जुनस्तुतिः

अर्जुनस्तुति (श्रीमद्भगवद्गीता अ० ११ श्लोक ३६ से ४६ तक)

स्थाने हृषीकेश ! तव प्रकीर्त्या जगत् प्रहृष्यत्यनुरज्यते च ।
रक्षांसि भीतानि दिशो द्रवन्ति सर्वे नमस्यन्ति च सिद्धसंघाः ॥१॥

अन्वयः—हे हृषीकेश !, तव, प्रकीर्त्या, जगत्, प्रहृष्यति, अनुरज्यते, च, भीतानि, रक्षांसि, दिशः, द्रवन्ति, सर्वे, च, सिद्धसंघाः, नमस्यन्ति, स्थाने ।

अर्थः—हे अन्तर्यामिन् ! यह योग्य ही है कि आपके नामप्रभाव से संसार आनन्दित तथा सानुराग होता है, भय के मारे राक्षस दिशाओं में भागते हैं तथा सभी सिद्धगण नमस्कार करते हैं ॥ १ ॥

कस्माच्च ते न नमेरन् महात्मन् ! गरीयसे ब्रह्मणोऽप्यादिकर्त्रे ।
अनन्त ! देवेश ! जगन्निवास ! त्वमक्षरं सदसत्तत्परं यत् ॥२॥

अन्वयः—हे अनन्त !, देवेश, हे जगन्निवास !, हे महात्मन् !, गरीयसे, ब्रह्मणः, अपि, आदिकर्त्रे, ते, च, कस्मात्, न, नमेरन्, यत्, त्वम्, अक्षरम् (यत्) सदसत्, तत्परम् ।

अर्थः—हे महात्मन् !, हे अनन्त, हे देवों के ईश, हे जगत् के आश्रय ! ब्रह्माजी के भी आरम्भक आपके लिए वे क्यों नमस्कार न करें ? सत् असत् से पर तथा अक्षर ब्रह्म भी तो आपही हैं ॥ २ ॥

त्वमादिदेवः पुरुषः पुराणस्त्वमस्य विश्वस्य परं निधानम् ।
वेत्तासि वेद्यं च परं च धाम त्वया ततं विश्वमनन्तरूप ! ॥३॥

अन्वयः—हे अनन्तरूप !, त्वम्, आदिदेवः, पुराणः, पुरुषः, त्वम्, अस्य, विश्वस्य, परम्, निधानम्, वेत्ता, वेद्यम्, च, परम्, च, धाम, असि, त्वया, विश्वम्, ततम् ।

अर्थः—हे प्रभो ! आप आदिदेव तथा सनातन पुरुष हैं । आपही इस सम्पूर्ण जगत् के एकमात्र आश्रय, ज्ञाता, जानने योग्य तथा परमधाम हैं । हे अनन्तरूपवाले ! आपसे समस्त जगत् व्याप्त अर्थात् परिपूर्ण हैं ॥ ३ ॥

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

वायुर्यमोऽग्निर्वरुणः शशाङ्कः प्रजापतिस्त्वं प्रपितामहश्च ।
नमो नमस्तेऽस्तु सहस्रकृत्वः पुनश्च भूयोऽपि नमो नमस्ते ॥४॥

अन्वयः—त्वम् , वायुः, यमः, अग्निः, वरुणः, शशाङ्कः, प्रजापतिः, त्वम् , च प्रपितामहः, ते, सहस्रकृत्वः, नमः, नमः, अस्तु, पुनः, च, भूयः, अपि, ते, नमः, नमः ।

अर्थः—हे प्रभो ! तुम्हीं वायु, यम, अग्नि, वरुण, चन्द्र, प्रजाओं के स्वामी ब्रह्मा तथा ब्रह्मा के भी पिता हो । अतः आपके लिये हजारों बार नमस्कार हो, बार बार नमस्कार हो ॥ ४ ॥

नमः पुरस्तादथ पृष्ठतस्ते नमोऽस्तु ते सर्वत एव सर्व ! ।
अनन्तवीर्यामितविक्रमस्त्वं सर्वं समाप्नोषि ततोऽसि सर्वः ॥५॥

अन्वयः—ते, पुरस्तात् , नमः, अथ, पृष्ठतः, नमः, अस्तु, हे सर्व, सर्वतः, एव, त्वम् , अनन्तवीर्यामितविक्रमः, सर्वम् , समाप्नोषि, ततः, सर्वः, असि ।

अर्थः—हे भगवन् ! आपके लिये आगे से, पीछे से क्या हर तरफ से नमस्कार है । हे सर्वात्मन् ! अनन्तपराक्रमशील आप समस्त जगत् में व्याप्त हैं । अतः आप भी सर्वरूप हैं ॥ ५ ॥

सखेति मत्वा प्रसभं यदुक्तं हे कृष्ण ! हे यादव ! हे सखेति ।
अजानता महिमानं तवेदं मया प्रमादात् प्रणयेन वापि ॥६॥

अन्वयः—तव, महिमानम् , अजानता, मया, सखा, इति, मत्वा, प्रसभम् , हे कृष्ण, हे यादव, हे सखे, इति (सन्धिरार्षः) यत् , उक्तम् , तत् , प्रमादात् , प्रणयेन, अपि, वा ।

अर्थ—हे परमेश्वर ! आपके इस महत्त्व को न जानते हुए मैंने अपना सखा समझ कर, प्रेम से अथवा भूल से हे कृष्ण ! हे यादव ! हे सखे ! ऐसा हठ पूर्वक कहा, उसे क्षमा करें । क्योंकि अज्ञान में भूल होना स्वाभाविक ही है ॥ ६ ॥

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

यच्चावहासार्थमसत्कृतोऽसि विहारशय्यासनभोजनेषु ।
एकोऽथवाऽप्यच्युत ! तत्समक्षं तत्क्षामये त्वामहमप्रमेयम् ॥ ७ ॥

अन्वयः—हे अच्युत !, एकः, अथवा, तत्समक्षम्, अपि, यत्, च, विहारशय्यासनभोजनेषु, अवहासार्थम्, असत्कृतः, असि, तत्, अप्रमेयम्, त्वाम्, अहम्, क्षामये ।

अर्थः—हे अच्युत ! जो आप हँसी के लिए, विहार, शय्या, आसन और भोजनादि कार्यों के समय एकान्त में अथवा मित्रों के सामने मुझसे अपमानित हुए हों उसके लिए मैं क्षमाप्रार्थी हूँ ॥ ७ ॥

पितासि लोकस्य चराचरस्य त्वमस्य पूज्यश्च गुरुर्गरीयान् ।
न त्वत्समोऽस्त्यभ्यधिकः कुतोऽन्यो लोकत्रयेऽप्यप्रतिमप्रभाव ! ॥ ८ ॥

अन्वयः—हे अप्रतिमप्रभाव !, त्वम्, अस्य, चराचरस्य, लोकस्य, पिता, गरीयान्, गुरुः, च, असि, लोकत्रये, अपि, त्वत्समः, अन्यः, न, अस्ति, अभ्यधिकः, कुतः ।

अर्थः—हे अतुलशक्तिवाले महाराज ! तुम्हीं इस स्थावर जङ्गम सृष्टि के पिता, बड़े से बड़े गुरु हो । तीनों लोकों में तुम्हारे बराबर का कोई दूसरा नहीं तो बढ़कर होना तो सर्वथा असम्भव ही है ॥ ८ ॥

तस्मात् प्रणम्य प्रणिधाय कायं प्रसादये त्वामहमीशमीड्यम् ।
पितेव पुत्रस्य सखेव सख्युः प्रियः प्रियायार्हसि देव ! सोढुम् ॥ ९ ॥

अन्वयः—हे देव, तस्मात्, अहम्, कायम्, प्रणिधाय, ईड्यम्, ईशम्, त्वाम्, प्रणम्य, प्रसादये, पुत्रस्य, पिता, इव, सख्युः, सखा, इव, प्रियः, प्रियाय, सोढुम्, अर्हसि ।

अर्थः—हे भगवन् ! मैं अपने शरीर को आपके चरणों में रख, स्तुति के योग्य आपको नमस्कार करके प्रसन्न होने के लिए प्रार्थना करता हूँ । हे देव ! जैसे पिता अपने पुत्र के, सखा अपने मित्र के, पति अपनी स्त्री के अपराधों को क्षमा करता है वैसे ही आप भी मुझ अज्ञानी के अपराध क्षमा कर प्रसन्न हों ॥ ९ ॥

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अदृष्टपूर्वं हृषितोऽस्मि दृष्ट्वा भयेन च प्रव्यथितं मनो मे ।
तदेव मे दर्शय देव ! रूपं प्रसीद देवेश ! जगन्निवास ! ॥१०॥

अन्वय:—हे देव !, अदृष्टपूर्वम्, दृष्ट्वा, हृषितः, अस्मि, मे, मनः, च, भयेन, प्रव्यथितम्, हे देवेश, तत्, एव, रूपम्, मे, दर्शय, हे जगन्निवास !, प्रसीद ।

अर्थः—हे भगवन् ! पहले कभी भी न देखे हुए इस आश्चर्यमय रूप को देखकर मैं हुआ तो प्रसन्न, परन्तु भय से मेरा मन बड़ा ही दुःखी है । कृपया अपना वही पुराना रूप धारण करिए, मुझ पर प्रसन्न होइए ॥ १० ॥

किरीटिनं गदिनं चक्रहस्तमिच्छामि त्वां द्रष्टुमहं तथैव ।
तेनैव रूपेण चतुर्भुजेन सहस्रबाहो ! भव विश्वमूर्त्ते ॥११॥

अन्वय:—हे विश्वमूर्त्ते !, अहम्, त्वाम्, किरीटिनम्, गदिनम्, चक्रहस्तम्, तथा, एव, द्रष्टुम्, इच्छामि, हे सहस्रबाहो !, तेन, एव, चतुर्भुजेन, रूपेण, भव ।

अर्थ—हे प्रभो ! मैं आपको उसी मुकुट, चक्र, गदाधर रूप में देखना चाहता हूँ । अतः हे हजारों भुजाओं वाले महाराज ! अब कृपाकर आप अपने चार भुजावाले रूप को ही धारण कीजिए ।११॥

❀ इति अर्जुनकृता भगवत्स्तुतिः ❀

—०❀०—

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

❀ श्रीगणेशाय नमः ❀

अथ रामवनगमनम्

[संस्कृतहिन्दीद्वयात्मकप्रभाटीकासमन्वितम् ।]

प्रथमः सर्गः ।

तं समीक्ष्य व्यवसितं पितुर्निर्देशपालने ।
कौशल्य बाष्पसंरुद्धा वचो धर्मिष्ठमब्रवीत् ॥ १ ॥

पदच्छेदः—तम्, समीक्ष्य, व्यवसितम्, पितुः, निर्देशपालने, कौशल्या, बाष्पसंरुद्धा, वचः, धर्मिष्ठम्, अब्रवीत् ।

अन्वयः—बाष्पसंरुद्धा, कौशल्या, पितुः, निर्देशपालने, व्यवसितम्, धर्मिष्ठम्, तम्, समीक्ष्य, वचः, अब्रवीत् ।

व्याख्या—बाष्पसंरुद्धा (बाष्पसंरुद्धवाक्) कौशल्या (रामचन्द्रमाता) पितुः (महाराजदशरथस्य) निर्देशपालने (आज्ञापालने) व्यवसितम् (निश्चितमतिम्) धर्मिष्ठम् (धार्मिकम्) तम् (रामचन्द्रम्) समीक्ष्य (अवलोक्य) वचः (वक्ष्यमाणम्) अब्रवीत् (उवाच) ।

व्युत्पत्तिः—बाष्पैः संरुद्धा (तृ०त०) । निर्देशस्य पालनम् तस्मिन् (ष०त०) । बाष्पमूष्माश्रु काशिपु इति अमरः । अववादस्तु निर्देशो निदेशः शासनं चेति कोशः।

संस्कृतार्थः—पितुराज्ञापालनपरं वनं गन्तुमुद्यतं रामं मोहाश्रुरुद्धकण्ठा माता कौशल्या अब्रवीत् ।

वाच्यपरिवर्तनम्—पितुराज्ञापालनपरः वनं जिगमिषुः रामः बाष्परुद्धकण्ठया कौशल्यया ऊचे ।

भावार्थः—महाराज दशरथ की आज्ञा से वन जाने के लिए तैयार, धर्मस्वरूप अपने प्रियपुत्र भगवान् रामचन्द्रजी को देखकर आँसुओं से रुक गया है कण्ठ जिसका ऐसी माता श्रीकौशल्याजी ने कहा ॥ १ ॥

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अदृष्टदुःखो धर्मात्मा सर्वभूतप्रियंवदः ।
मयि जातो दशरथात् कथमुञ्छेन वर्तयेत् ? ॥ २ ॥

पदच्छेदः—अदृष्टदुःखः, धर्मात्मा, सर्वभूतप्रियंवदः, मयि, जातः, दशरथात्, कथम्, उञ्छेन, वर्तयेत् ।

अन्वयः—अदृष्टदुःखः, धर्मात्मा, सर्वभूतप्रियंवदः, दशरथात्, मयि, जातः, उञ्छेन, कथम्, वर्तयेत् ।

व्याख्या—अदृष्टदुःखः (अननुभूतकष्टः) धर्मात्मा (धर्मस्वरूपः) सर्वभूतप्रियंवदः (निखिलजीवप्रियवाचकः) दशरथात् (चक्रवर्तिदशरथनृपात्) मयि (कौशल्यायाम्) जातः (उत्पन्नः) उञ्छेन (कणश आदानेन) कथम् ? (केन प्रकारेण ?) वर्तयेत् (जीवेत्) ।

व्युत्पत्तिः—न दृष्टानि दुःखानि येन सः । धर्मः आत्मा यस्य सः (उभयत्र बहुव्रीο) सर्वे च ते भूताः सर्वभूताः तेषां प्रियं वदतीति सर्वभूतप्रियंवदः (षο तο) । उञ्छः कणश आदानं कणिशाद्यर्जनं शिलमिति यादवः । स्यात् कष्टं कृच्छ्रमाभीलमिति कोशः ।

संस्कृतार्थः—यः कदापि किमपि दुःखं न अनुभूतवान् चक्रवर्तिदशरथसुतः सः रामचन्द्रः वनं गत्वा उञ्छवृत्त्या कथं जीवेत् ? ।

वाच्यान्तरम्—अदृष्टदुःखेन धर्मात्मना दशरथात् मयि जातेन उञ्छेन कथं वर्त्येत ? ।

भावार्थः—जिसने कभी भी दुःख का अनुभव न किया तथा सर्वलोकप्रिय ऐसे ये चक्रवर्ती महाराज दशरथ के पुत्र श्रीरामचन्द्र उञ्छवृत्ति से कैसे अपनी जीविका करेंगे ? [किसान जब खेत से अन्न उखाड़ कर ले जाने लगते हैं उस समय कुछ दाने खेत में ही गिर जाते हैं, उन्हीं को इकट्ठा कर उन्हीं से भोजन चलाने का नाम उञ्छवृत्ति है] ॥ २ ॥

यस्य भृत्याश्च दासाश्च मृष्टान्यन्नानि भुञ्जते ।
कथं स भोक्ष्यते रामो वने मूलफलान्ययम् ॥ ३ ॥

पदच्छेदः—यस्य, भृत्याः, च, दासाः, च, मृष्टानि, अन्नानि, भुञ्जते, कथम्, सः, भोक्ष्यते, रामः, वने, मूलफलानि, अयम् ।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अन्वयः—यस्य, भृत्याः, च, दासाः, च, मृष्टानि. अन्नानि, भुञ्जते, सः, अयम्, रामः, वने, मूलफलानि, कथम्, भोक्ष्यते ।

व्याख्या—यस्य (दशरथात्मजस्य) भृत्याः (भर्तव्याः) च (पुनः) दासाः (सेवकाः) च मृष्टानि (सुसंस्कृतानि) अन्नानि (खाद्यानि) भुञ्जते (अश्नन्ति) सः (तादृशः) अयम् (एषः, उपस्कृतमांसादिभोजनशीलः) रामः (रामचन्द्रः) वने (कान्तारे) मूलफलानि (कन्दमूलादिकम्) कथम् (केन प्रकारेण) भोक्ष्यते (खादिष्यति) इति बुद्धौ न समायातीति निष्कर्षः ।

व्युत्पत्तिः—डुभृञ् धारणपोषणयोः इति कृत्यतुको भृत्यशब्दः । मृजूष् शुद्धौ इति धातोः क्ते मृष्टानि इति । मूलानि च फलानि चेति मूलफलानि (इतरेतरयोगद्वन्द्वः) । भृत्ये दासेरदासेयदासगोप्यकचेटकाः इत्यमरः ।

संस्कृतार्थः—यस्य रामचन्द्रस्य सेवकादयोऽपि शुद्धसंस्कृतभोजनानि कुर्वते सः काननवासी कथं मूलफलादिना जीविकां सम्पादयिष्यतीति आश्चर्यमेव ।

वाच्यान्तरम्—यस्य भृत्यैश्च दासैश्च मृष्टानि भुज्यन्ते तेन कथं मूलफलानि••।

भावार्थः—जिस रामचन्द्र के नौकर-चाकर भी सुन्दर सुसंस्कृत अन्न का भोजन करते है ऐसे विविध भोजन योग्य वे जङ्गल में रहकर कन्दमूल फल से कैसे बितायेंगे ?, समझ में नहीं आता ॥ ३ ॥

क एतच्छ्रद्दधेच्छ्रुत्वा कस्य वा न भवेद् भयम् ? ।
गुणवान् दयितो राज्ञः काकुत्स्थो यद् विवास्यते ॥ ४ ॥

पदच्छेदः—कः, एतत्, श्रद्दधेत्, श्रुत्वा, कस्य, वा, न, भवेत्, भयम्, गुणवान्, दयितः, राज्ञः, काकुत्स्थः, यद्, विवास्यते ।

अन्वयः—एतत्, श्रुत्वा, कः, श्रद्दधेत्, कस्य, वा, भयम्, न, भवेत्; यद्, गुणवान्, राज्ञः, दयितः, काकुत्स्थः, रामः, विवास्यते ।

व्याख्या—एतत् (इदम्) श्रुत्वा (आकर्ण्य) कः (कः जनः) श्रद्दधेत् (श्रद्धां कुर्यात्) कस्य वा (पुरुषस्य) भयम् (भीतिः) न भवेत् (न स्यात्) यद् गुणवान् (सर्वगुणालङ्कृतः) राज्ञः (स्वपितुः महाराजदशरथस्य) दयितः (अभीष्टः प्रियः) काकुत्स्थः (ककुत्स्थवंश्यः) रामः (श्रेष्ठपुत्रः) विवास्यते (निर्वास्यते) काननायेति शेषः ।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

व्युत्पत्तिः—विपूर्वकाद् वसेर्ण्यन्तात् कर्मणि लट्। ककुदि तिष्ठतीति ककुत्स्थः स एवेति काकुत्स्थः। दयितं वल्लभम् प्रियमित्यमरः।

संस्कृतार्थः—रामस्य वनवासः भवतीति श्रुत्वा कः सत्यं मन्वीत, मत्वा वा भयं न कुर्वीत यद् दशरथस्य ज्येष्ठपुत्रः सर्वगुणान्वितः राज्यार्होऽपि कथं वनवासाय राज्ञा प्रेष्यत इति।

वाच्यान्तरम्—गुणवन्तं काकुत्स्थं राज्ञः दयितं वनं विवासयति।

भावार्थः—रामचन्द्र वन जा रहे हैं इस बात को सुनकर कौन सत्य मान लेगा ?, अथवा मानने पर भी किसे भय न होगा कि इस प्रकार के गुणी, राजा होने योग्य, सर्वलक्षणसम्पन्न तथा ज्येष्ठ पुत्र राम को दशरथ जी वन भेज रहे हैं ॥ ४ ॥

नूनं तु बलवाँल्लोके कृतान्तः सर्वमादिशन्।
लोके रामाभिरामस्त्वं वनं यत्र गमिष्यसि ॥५॥

पदच्छेदः—नूनम्, तु, बलवान्, लोके, कृतान्तः, सर्वम्, आदिशन्, लोके, राम, अभिरामः, त्वम्, वनम्, यत्र, गमिष्यसि।

अन्वयः—सर्वम्, आदिशन्, कृतान्तः, तु, लोके, बलवान्, इति, नूनम्, यत्र, हे राम, अभिरामः, त्वम्, लोके, वनम्, गमिष्यसि।

व्याख्या—सर्वम् (निखिलं जगत्) आदिशन् (सुखदुःखेन योजनम्) कृतान्तः (दैवम् तु) लोके (संसारे) बलवान् (प्रबलम्) इति (एतद्) नूनम् (निश्चयेन मन्ये इत्यर्थः) यत्र (यस्मात्) हे राम ! (हे रामचन्द्र !) अभिरामः (सुन्दरः) त्वम् लोके (कर्मलोके स्थितः) वनम् (कान्तारम्) गमिष्यसि (व्रजिष्यसि)।

व्युत्पत्तिः—यस्मात् इति यत्र, यत्शब्दात् पञ्चम्याः सार्वविभक्तिकः त्रल्। कृतान्तो यमुनाभ्राता शमनो यमराड्यमः इत्यमरः।

संस्कृतार्थः—सकलं जगत् सुखदुःखयोः प्रेरयत् दैवं सर्वतः प्रबलम्। हे राम ! तस्यैव प्रभावेण अद्य कर्मलोकागतः त्वमपि वनं व्रजसि।

वाच्यान्तरम्—सर्वमादिशता कृतान्तेन (प्रबलेन भूयते) यत्र रामेण वनं गम्यते।

भावार्थः—समस्त संसार को सुख दुःख में नियुक्त करता हुआ दैव सबसे

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

प्रबल है । हे राम ! कर्मलोक में आये हुए तुम्हें भी उसी के कारण जङ्गल जाना पड़ रहा है ॥ ५ ॥

अयं तु मामात्मभवस्तवादर्शनमारुतः ।
विलापदुःखसमिधो रुदिताश्रुहुताहुतिः ॥ ६ ॥
चिन्तावाष्पमहाधूमस्तवागमनचिन्तजः ।
कर्शयित्वाधिकं पुत्र ! निःश्वासायाससम्भवः ॥ ७ ॥
त्वया विहीनामिह मां शोकाग्निरतुलो महान् ।
प्रधक्ष्यति यथा कक्ष्यं चित्रभानुर्हिमात्यये ॥ ८ ॥

पदच्छेदः—अयम् , तु, माम्, आत्मभवः, तव, अदर्शनमारुतः, विलापदुःखसमिधः, रुदिताश्रुहुताहुतिः, चिन्तावाष्पमहाधूमः, तव, आगमनचिन्तजः, कर्शयित्वा, अधिकम् , पुत्र, निःश्वासायाससम्भवः, त्वया, विहीनाम् , इह, माम् , शोकाग्निः, अतुलः, महान् , प्रधक्ष्यति, यथा, कक्ष्यम् , चित्रभानुः, हिमात्यये ।

अन्वयः—हे पुत्र ! आत्मभवः, तव, अदर्शनमारुतः, विलापदुःखसमिधः, रुदिताश्रुहुताहुतिः, चिन्तावाष्पमहाधूमः, तव, आगमनचिन्तजः, निःश्वासायाससम्भवः, अयम् , अतुलः, महान् , शोकाग्निः, माम्, अधिकं, कर्शयित्वा, यथा, हिमात्यये, चित्रभानुः, कक्ष्यम् , तथा, इह, त्वया, विहीनाम्, माम्, प्रधक्ष्यति ।

व्याख्या—हे पुत्र ! (हे सुत !) आत्मभवः (आत्मजः) तव (रामस्य) अदर्शनमारुतः (अदर्शनवायुः) विलापदुःखसमिधः (विलापदुःखकाष्ठः) रुदिताश्रुहुताहुतिः (रोदनवाष्पहुताहुतिः) चिन्तावाष्पमहाधूमः (चिन्ताजन्यबाष्पदीर्घधूमः) तव (रामस्य) आगमनचिन्तजः (आगमनचिन्तासमुत्थः) निःश्वासायाससम्भवः (निःश्वाससन्धुक्षणवृद्धिः) अयम् (एषः) अतुलः (अतुलनीयः) महान् (सुदीर्घः) शोकाग्निः (शोकवह्निः) माम् (कौशल्याम्) अधिकम् (अत्यन्तम्) कर्शयित्वा (दुर्बलीकृत्य) यथा हिमात्यये (ग्रीष्मे) चित्रभानुः (अग्निः) कक्ष्यम् (तृणपुञ्जम्) तथा इह (लोके) त्वया (रामेण) विहीनाम् (रहिताम्) माम् प्रधक्ष्यति (प्रदग्धां करिष्यति) ।

व्युत्पत्तिः—आत्मनो भवतीत्यात्मभवः । अदर्शनमेव वर्धकत्वात् मारुतो यस्य सः । विलापदुःखैः समिधः यस्य सः । समूपूर्वकात् इन्धधातोः घञर्थे कः ।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

रुदिताश्रूण्येव हुता आहुतयो यस्मिन् सः। चिन्ताहेतुकबाष्पमेव महाधूमो यस्य सः (अत्र सर्वत्र बहुव्रीहिः)। आगमनस्य चिन्ता तया जातः (तत्पुरुषः) ह्रस्वः बाहुलकात्। निःश्वासरूपायासेन सम्भवः यस्य सः। शोक एवाग्निः शोकाग्निः। हिमस्य अत्ययः तस्मिन् (तत्पुरुषः)। चित्रा भानवो यस्य सः (बहु०) दह भस्मीकरणे लृट्।

संस्कृतार्थः—हे पुत्र! तव अदर्शनेन उत्पन्नः शोकाग्निः माम् अत्यन्तं दुर्बलीकृत्य ग्रीष्मे वह्निः कक्ष्यपुञ्जमिव दग्धां करिष्यति।

वाच्यान्तरम्—हे पुत्र! तवादर्शनमारुतेन विलापदुःखसमिधेन आगमन-चिन्तजेन शोकाग्निना प्रधक्ष्ये।

भावार्थः—हे पुत्र! तुम्हारे यहाँ न रहने से जो शोकाग्नि उत्पन्न होगी वह मुझे अत्यन्त क्षीण बनाकर गर्मी के दिनों में फूस के ढेर को अग्नि की तरह जला देगी॥ ६-७-८॥

कथं हि धेनुः स्वं वत्सं गच्छन्तमनुगच्छति।
अहं त्वानुगमिष्यामि यत्र वत्स! गमिष्यसि॥ ९॥

पदच्छेदः—कथम्, हि, धेनुः, स्वम्, वत्सम्, गच्छन्तम्, अनुगच्छति, अहम्, त्वा, अनुगमिष्यामि, यत्र, वत्स, गमिष्यसि।

अन्वयः—हे वत्स!, हि, धेनुः, गच्छन्तम्, स्वम्, वत्सम्, अनुगच्छति, कथम्, तथा, अहम्, त्वा, अनुगमिष्यामि, यत्र, गमिष्यसि।

व्याख्या—हे वत्स (हे पुत्र) हि (यतः) धेनुः (गौः) गच्छन्तम् (व्रजन्तम्) स्वम् (स्वकीयम्) वत्सम् (सुतम्) अनुगच्छति (अनुव्रजति) कथम् (यथा) तथा अहम् (कौशल्या) त्वा (त्वाम्) अनुगमिष्यामि (व्रजि-ष्यामि) यत्र (वने) गमिष्यसि (व्रजिष्यसि)।

व्युत्पत्तिः—युष्मद्शब्दात् द्वितीयान्तम् त्वा इति। गम्धातोः शत्रन्तात् द्वितीयैकवचनम् गच्छन्तमिति।

संस्कृतार्थः—हे पुत्र! यथा धेनुः गच्छतो वत्सस्य पृष्ठतो गच्छति तथैव अहमपि यत्र त्वं गमिष्यसि तत्र गमिष्यामि इति।

भावार्थः—हे पुत्र! जैसे किसी भी तरफ जाते हुए अपने बछड़े के पीछे गाय चलती है वैसे ही तुम कहीं भी जाओ तुम्हारे पीछे मैं भी चलूँगी॥ ९॥

CC0: In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

यथा निगदितं मात्रा तद्वाक्यं पुरुषर्षभः ।
श्रुत्वा रामोऽब्रवीद् वाक्यं मातरं भृशदुःखिताम् ॥१०॥

पदच्छेदः—यथा, निगदितम्, मात्रा, तद्वाक्यम्, पुरुषर्षभः, श्रुत्वा, रामः, अब्रवीद्, वाक्यम्, मातरम्, भृशदुःखिताम् ।

अन्वयः—पुरुषर्षभः, रामः, मात्रा, यथा, निगदितम्, तद्वाक्यम्, श्रुत्वा, भृशदुःखिताम्, मातरम्, वाक्यम्, अब्रवीत् ।

व्याख्या—पुरुषर्षभः (नरश्रेष्ठः) रामः (रामचन्द्रः) मात्रा (कौशल्यया) यथा (येन प्रकारेण) निगदितम् (कथितम्) तद्वाक्यम् (तदीयं वचः) श्रुत्वा (आकर्ण्य) भृशदुःखिताम् (अत्यन्तं क्लिश्यन्तीम्) मातरम् (जननीम्) वाक्यम् (वक्ष्यमाणम्) अब्रवीत् (उवाच) ।

व्युत्पत्तिः—पुरुषेषु ऋषभः तत्सम्बुद्धौ (तत्पुरुषः) । भृशम् दुःखिता ताम् ।

संस्कृतार्थः—रामः मातुः कौशल्यायाः कथनं श्रुत्वा वक्तुमारभत ।

वाच्यान्तरम्—रामेण मातुर्वचनं श्रुत्वा ऊचे ।

भावार्थः—रामचन्द्रजी ने माता कौशल्या की बातें सुनकर जवाब देना शुरु किया ॥ १० ॥

कैकेय्या वञ्चितो राजा मयि चारण्यमाश्रिते ।
भवत्या च परित्यक्तो न नूनं वर्तयिष्यति ॥११॥

पदच्छेदः—कैकेय्या, वञ्चितः, राजा, मयि, च, अरण्यम्, आश्रिते, भवत्या, च, परित्यक्तः, न, नूनम्, वर्तयिष्यति ।

अन्वयः—कैकेय्या, वञ्चितः, मयि, च, अरण्यम्, आश्रिते, भवत्या, च, परित्यक्तः, राजा, न, वर्तयिष्यति, नूनम् ।

व्याख्या—कैकेय्या (तव सपत्न्या) वञ्चितः (मद्वियोजनात् दुःखम् प्रापितः) मयि (रामे) च (पुनः) अरण्यम् (काननम्) आश्रिते (गतवति) भवत्या (कौशल्यया) च परित्यक्तः (वियुक्तः) राजा (पिता दशरथः) न वर्तयिष्यति (जीविष्यति) नूनम् (निश्चयेन) ।

व्युत्पत्तिः—केकयस्यापत्यं स्त्री कैकेयी । वृतुवर्तने इत्यस्यानेकार्थत्वात् जीवनमर्थः ।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

संस्कृतार्थः—हे मातः ! कैकेयीवचनानुसारम् मया वनं गच्छता त्वयाऽपि च वियुक्तः पिता दशरथः निश्चयेन जीवनं त्यक्ष्यति ।

वाच्यान्तरम्—कैकेय्या वञ्चितेन राज्ञा नूनं न वर्तयिष्यते ।

भावार्थः—हे मातः ! कैकेयी की बात पर मैं जङ्गल जा रहा हूँ ऐसी अवस्था में अगर तुम भी पिता जी का साथ छोड़ दोगी तो अवश्य ही वे मर जायँगे ॥११॥

भर्तुः पुनः परित्यागो नृशंसः केवलं स्त्रियाः ।
स भवत्या न कर्तव्यो मनसापि विगर्हितः ॥१२॥

पदच्छेदः—भर्तुः, पुनः, परित्यागः, नृशंसः, केवलम्, स्त्रियाः, सः, भवत्या, न, कर्त्तव्यः, मनसा, अपि, विगर्हितः ।

अन्वयः—स्त्रियाः, भर्त्तुः, परित्यागः, पुनः, केवलम्, नृशंसः, मनसा, अपि, विगर्हितः, सः, भवत्या, न, कर्त्तव्यः ।

व्याख्या—स्त्रियाः (नार्याः) भर्त्तुः (स्वामिनः) परित्यागः (परित्यजनम्) पुनः (च) केवलम् (एकम्) नृशंसः (क्रौर्यमेव) तस्मात् मनसा (चेतसा) अपि विगर्हितः (अतिनिन्दितः) सः भवत्या (श्रीमत्या) न (नैव) कर्त्तव्यः (विधेयः) यतो हि तेन नेहामुत्र वा सुखसम्भव इति भावः ।

व्युत्पत्तिः—परिपूर्वकत्यजधातोः घञि रूपम् । गर्ह निन्दायाम् । नृशंसो घातुकः क्रूरः, इति कोशः । अत्र नृशंसस्तत्कृत्ये लाक्षणिकः ।

संस्कृतार्थः—इह लोके परलोके च महापापत्वात् स्वपतिपरित्यागः क्षणायापि नार्या न कर्त्तव्यः । चेतसापि तस्य निन्दितत्वात् भवत्या जगदादर्शया राममात्रा कथमपि न विधेयः ।

वाच्यान्तरम्—भर्तुः परित्यागम् मनसा अपि विगर्हितम् भवती न कुर्यात् ।

भावार्थः—स्वामी का परित्याग स्त्री के लिए कदापि सुखकर नहीं, अतः मन से भी निन्दित उस कार्य को आप जैसी आदर्श नारी को कभी नहीं करना चाहिए॥१२॥

यावज्जीवति काकुत्स्थः पिता मे जगतीपतिः ।
शुश्रूषा क्रियतां तावत् स हि धर्मः सनातनः ॥१३॥

पदच्छेदः—यावत्, जीवति, काकुत्स्थः, पिता, मे, जगतीपतिः शुश्रूषा, क्रियताम्, तावत्, सः, हि, धर्मः, सनातनः ।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अन्वयः—जगतीपतिः, काकुत्स्थः, मे, पिता, यावत्, जीवति, तावत्, शुश्रूषा, क्रियताम्, हि, सः, सनातनः, धर्मः ।

व्याख्या—जगतीपतिः (भूमिपः) काकुत्स्थः (ककुत्स्थवंश्यः) मे (मम) पिता (जनकः राजा दशरथः) यावत् (यावत्कालपर्यन्तम्) जीवति (प्राणान् धारयति) तावत् (तावत्कालपर्यन्तम्) शुश्रूषा (सेवा) क्रियताम् (विधीयताम्) हि (यतः) सः (पतिसेवारूपः) सनातनः (शाश्वतः) धर्मः अस्ति । पतिशुश्रूषणं नार्याः इति आगमसिद्धान्तात् इति भावः ।

व्युत्पत्तिः—जगत्याः पतिः जगतीपति (ष०त०)। सना भवः सनातनः, सना सनात् नित्ये इत्यव्ययम् तस्मात् सायं चिरम् प्राह्णे इति ट्युतुटौ । वरिवस्या तु शुश्रूषा परिचर्याऽप्युपासना इति अमरः ।

संस्कृतार्थः—हे मातः ! यावत् मम पिता राजा दशरथः जीवति तावत् त्वया तत्सेवा कर्त्तव्या, एष एव सनातनो धर्मस्तव ।

वाच्यान्तरम्—जगतीपतिना काकुत्स्थेन मम पित्रा यावत् जीव्यते तावत् त्वं शुश्रूषां कुरु ।

भावार्थः—मेरे पिता राजा दशरथ जब तक जीवित हैं तब तक तुम्हें उनकी सेवा करनी चाहिए, यही सनातन धर्म है ॥१३॥

एवमुक्ता तु रामेण कौशल्या शुभदर्शना ।
तथेत्युवाच सुप्रीता राममक्लिष्टकारिणम् ॥१४॥

पदच्छेदः—एवम्, उक्ता, तु, रामेण, कौसल्या, शुभदर्शना, तथा, इति, उवाच, सुप्रीता, रामम्, अक्लिष्टकारिणम् ।

अन्वयः—शुभदर्शना, कौशल्या, तु, रामेण, एवम्, उक्ता, सुप्रीता, अक्लिष्टकारिणम्, रामम्, तथा, इति, उवाच ।

व्याख्या—शुभदर्शना (उत्तमस्वरूपा) कौशल्या (राममाता) तु रामेण (रामचन्द्रेण) एवम् (पूर्वोक्तप्रकारेण) उक्ता (कथिता) सुप्रीता (सुप्रसन्ना) अक्लिष्टकारिणम् (शुभकृतिम्) रामम् (स्वपुत्रम्) तथा (यथा त्वं कथयसि) इति (एवम्) उवाच (कथयामास) तदीयं वचः स्वीचकारेति भावः ।

व्युत्पत्तिः—शुभं दर्शनं यस्याः सा (बहु०)। सुष्ठु प्रीता सुप्रीता (कर्म०)। न क्लिष्टम् करोतीति तम् ।

२

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

संस्कृतार्थः—उत्तमस्वरूपा माता कौशल्या रामवचः श्रुत्वा तथास्तु इति तम् प्रतिशुश्राव ।

वाच्यान्तरम्—शुभदर्शनया कौशल्यया सुप्रीतया रामोऽक्लिष्टकारी ऊचे ।

भावार्थः—माता कौशल्या ने भगवान् राम की बातें सुन प्रसन्न हो कहा ॥१४॥

एवमुक्तस्तु वचनं रामो धर्मभृतां वरः ।
भूयस्तामब्रवीद् वाक्यं मातरं भृशदुःखिताम् ॥१५॥

पदच्छेदः—एवम्, उक्तः, तु, वचनम्, रामः, धर्मभृताम्, वरः, भूयः, ताम्, अब्रवीत्, वाक्यम्, मातरम्, भृशदुःखिताम्, ।

अन्वयः—धर्मभृताम्, वरः, रामः, एवम्, तु, वचनम्, उक्तः, भृशदुःखिताम्, ताम्, मातरम्, भूयः, वाक्यम्, अब्रवीत् ।

व्याख्या—धर्मभृताम् (धर्मधारिणाम्) वरः (श्रेष्ठः) रामः (रामचन्द्रः) एवम् (वर्णितप्रकारेण) तु वचनम् (वचः) उक्तः (कथितः) भृशदुःखिताम् (अत्यन्तदुःखवतीम्) ताम् (पूर्वोक्ताम्) मातरम् (जननीम्) भूयः (पुनः) वाक्यम् (वचः) अब्रवीत् (उवाच) पुनः वक्तुमारेभे ।

व्युत्पत्तिः—धर्मं बिभ्रति इति धर्मभृतः तेषाम् । भृशम् दुःखिता ताम् ।

संस्कृतार्थः—धार्मिकाणां श्रेष्ठः रामः मात्रा पूर्वोक्तप्रकारेण अभिहितः परमदुःखिताम् जननीं पुनरब्रवीत् ।

वाच्यान्तरम्—धर्मभृताम् वरेण रामेण भृशदुःखिता माता ऊचे ।

भावार्थः—धार्मिकों में अग्रसर भगवान् राम माता से इस प्रकार कहे जाने पर फिर बोले ॥ १५ ॥

मया चैव भवत्या च कर्तव्यं वचनम् पितुः ।
राजा भर्ता गुरुः श्रेष्ठः सर्वेषामीश्वरः प्रभुः ॥१६॥

पदच्छेदः—मया, च, एव, भवत्या, च, कर्तव्यम्, वचनम्, पितुः, राजा, भर्ता, गुरुः, श्रेष्ठः, सर्वेषाम्, ईश्वरः, प्रभुः ।

अन्वयः—मया, च, एव, भवत्या, च, पितुः, वचनम्, कर्त्तव्यम् (यतो हि) राजा, भर्ता, गुरुः, ईश्वरः, सर्वेषाम्, प्रभुः ।

व्याख्या—मया (रामेण) च (पुनः) एव भवत्या (कौशल्यया) च

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

(पुनः) पितुः (जनकस्य दशरथस्य) वचनम् (आदेशः) कर्त्तव्यम् (पालनीयः) यतो हि राजा (नृपः) भर्ता (पतिः) गुरुः (आचार्यः) श्रेष्ठः (महान्) ईश्वरः (अधिष्ठाता) सर्वेषाम् (प्राणिनाम्) प्रभुः (पालकः) भवतीति शेषः ।

व्युत्पत्तिः—ईष्टे इतीश्वरः, ईश धातोः "स्थेशभासपिसकसो वरच्" इति वरच्-प्रत्ययान्तः ।

संस्कृतार्थः—मम रामस्य तव कौशल्यायाः च कर्तव्यमिदं यत् दशरथस्य महाराजस्य आज्ञा पालनीया । यतो राजा सर्वथा मान्यो भवति ।

वाच्यान्तरम्—अहं भवती च पितुः वचनम् कुर्याव । यतो हि राज्ञा सर्वमान्येन भूयते ।

भावार्थः—हे मातः ! हमें तथा आप को महाराज की आज्ञा का पालन करना चाहिए, क्योंकि राजा सर्वथा पूजनीय होता है ॥ १६ ॥

इमानि तु महारण्ये विहृत्य नव पञ्च च ।
वर्षाणि परमप्रीत्या स्थास्यामि वचने तव ॥ १७ ॥

पदच्छेदः—इमानि, तु, महारण्ये, विहृत्य, नव, पञ्च, च, वर्षाणि, परमप्रीत्या, स्थास्यामि, वचने, तव ।

अन्वयः—परमप्रीत्या, इमानि, नव, पञ्च, च, वर्षाणि, महारण्ये, विहृत्य, तव, वचने, स्थास्यामि ।

व्याख्या—परमप्रीत्या (परमानन्देन) इमानि (एतानि) नव (नवसंख्याकानि) पञ्च (पञ्चसंख्याकानि) च वर्षाणि (हायनानि) महारण्ये (महाकानने) विहृत्य (विहारं कृत्वा) तव (मातुः) वचने (वाक्ये) शुश्रूषणे इत्यर्थः, स्थास्यामि (स्थितिं करिष्यामि)

व्युत्पत्तिः—परमा प्रीतिः तया, महत् अरण्यम् तस्मिन् (उभयत्र कर्मधारयः)

संस्कृतार्थः—हे मातः ! चतुर्दश वर्षाणि कानने सानन्दं यापयित्वा पुनः तव सेवायामुपस्थितो भविष्यामि इति निश्चितं विद्धि ।

वाच्यान्तरम्—नवपञ्चवर्षाणि महारण्ये विहृत्य तव वचने स्थास्यते...।

भावार्थः—हे मातः ! चौदह वर्ष जङ्गल में आनन्द से विताकर फिर आपकी भी सेवा में उपस्थित हो जाऊँगा ॥ १७ ॥

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

एवमुक्त्वा प्रियं पुत्रं बाष्पपूर्णानना तदा ।
उवाच परमार्ता तु कौसल्या सुतवत्सला ॥ १८ ॥

पदच्छेदः—एवम्, उक्त्वा, प्रियम्, पुत्रम्, बाष्पपूर्णानना, तदा, उवाच, परमार्ता, तु, कौसल्या, सुतवत्सला ।

अन्वयः—सुतवत्सला, परमार्ता, कौसल्या, तु, एवम्, उक्त्वा, तदा, बाष्पपूर्णानना, प्रियम्, पुत्रम्, उवाच ।

व्याख्या—सुतवत्सला (पुत्रप्रिया) परमार्ता (अतिकातरा) कौसल्या (रामजननी) तु, एवम् (पूर्वोक्तप्रकारेण) उक्त्वा (रामकथिता) तदा (तस्मिन् समये) बाष्पपूर्णानना (अश्रुपूर्णमुखी) प्रियम् (अभीष्टम्) पुत्रम् (सुतम्) रामम् प्रति उवाच (अब्रवीत्) ।

व्युत्पत्तिः—सुते वत्सला (तत्पु०) परमा आर्त्ता (कर्म०) बाष्पैः पूर्णमाननं यस्याः (बहुब्रीहिः) ।

संस्कृतार्थः—पुत्रप्रिया माता कौशल्या रामकथनं श्रुत्वा मोहात् साश्रुनयना राममवोचत् ।

वाच्यान्तरम्—सुतवत्सलया मात्रा कौशल्यया राम ऊचे ।

भावार्थः—माता कौशल्या ने राम की बातें सुनकर पुत्र के मोहवश नेत्रों में आँसू भर कर कहा ॥१८॥

आसां राम सपत्नीनां वस्तुं मध्ये न मे क्षमम् ।
नय मामपि काकुत्स्थ वनं वन्यां मृगीमिव ॥ १९ ॥

पदच्छेदः—आसाम्, राम, सपत्नीनाम्, वस्तुम्, मध्ये, न, मे, क्षमम्, नय, माम्, अपि, काकुत्स्थ, वनम्, वन्याम्, मृगीम्, इव ।

अन्वयः—हे राम ! आसाम्, सपत्नीनाम्, मध्ये, वस्तुम्, मे, न, क्षमम्, अतः हे काकुत्स्थ ! वन्याम्, मृगीम्, इव, माम्, अपि, वनम्, नय ।

व्याख्या—हे राम (हे राघव) आसाम् (सुमित्राप्रभृतीनाम्) सपत्नीनाम् मध्ये (तासु) वस्तुम् (निवस्तुम्) मे (मया) न क्षमम् (न सह्यम्) अतः हे काकुत्स्थ ! वन्याम् (काननीयाम्) मृगीम् (मृगपत्नीम्) इव (यथा) माम् (कौसल्याम्) अपि वनम् (काननम्) नय (सहैव नय) त्वया सहैव गमिष्यामि, अङ्गीकृतभर्तृसेवयापि कथं सपत्नीदुःखानि सोढव्यानि ।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

व्युत्पत्तिः—समानः पतिः यासाम् तासाम् (बहुव्री०) ।

संस्कृतार्थः—हे राम ! यद्यपि भर्तृशुश्रूषां श्रेष्ठां मन्ये तथापि सपत्नीनां मध्ये भृशदुःखिता कथं स्थास्यामि ? अतः यथा मृगी स्ववत्सैः सह कानने भ्रमति तथैव त्वया सहाहमपि व्रजिष्यामि इति माम् सहैव नय ।

वाच्यान्तरम्—हे राघव ! त्वया मृगीव अहम् वनम् नेया ।

भावार्थः—हे राम ! यद्यपि पति सेवा ही प्रधान धर्म मेरा है तो भी इन सौतों के बीच दुःखी मैं कैसे रह सकती हूँ । अतः जैसे जङ्गल में मृगी अपने बच्चों के साथ घूमती है वैसे ही मैं भी रहूंगी, तुम मुझे अपने साथ ही ले चलो ॥१९॥

यदि ते गमने बुद्धिः कृता पितुरपेक्षया ।
तां तथा रुदतीं रामोऽरुदन् वचनमब्रवीत् ॥ २० ॥

पदच्छेदः—यदि, ते, गमने, बुद्धिः, कृता, पितुः, अपेक्षया, ताम्, तथा, रुदतीम्, रामः, अरुदन्, वचनम्, अब्रवीत् ।

अन्वयः—यदि, पितुः, अपेक्षया, ते, गमने, बुद्धिः, कृता (तदा माम् अवश्यम् स्वेन सह नयेति पूर्वेणान्वयः) रामः, तथा, रुदतीम्, ताम्, अरुदन्, वचनम्, अब्रवीत् ।

व्याख्या—यदि पितुः (दशरथस्य) अपेक्षया (आज्ञया) ते (त्वया) गमने (व्रजने) बुद्धिः (मनीषा) कृता (विहिता) तदा माम् सहैव कानने नयेति पूर्वेणान्वयः, रामः (रामचन्द्रः) तथा (तेन प्रकारेण) रुदतीम् (विलपन्तीम्) ताम् (मातरम्) अरुदन् (अकातरः) वचनम् (वचः) अब्रवीत् (उवाच) ।

विशेषः—रोदने कातर्यप्रकटनेन मातुः पुनरपि अनुगमनप्रत्याशाप्रसङ्गात् रामस्य रोदनाभावतात्पर्यम् व्यञ्जयितुम् अरुदन्निति पदच्छेदः आवश्यकः ।

व्युत्पत्तिः—रुदति इति रुदन्, न रुदन् अरुदन् (नञ्तत्पु०) ।

संस्कृतार्थः—हे राम ! यदि पितुः आज्ञानुसारं तव वनगमनं ध्रुवं तदा मामपि सहैव नय । रामः रुदन्तीम् मातरम् गम्भीरतया उवाच ।

वाच्यान्तरम्—अरुदता रामेण रुदन्ती माता वचनम् ऊचे ।

भावार्थः—माता ने कहा कि हे राम ! पिताजी के आदेशानुसार अगर तुम्हें जङ्गल की यात्रा करनी ही है तो मुझे भी साथ ले चलो । इस तरह रोती

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

हुई माता से राम गम्भीरता पूर्वक बोले। क्योंकि अगर माता की दशा देख मोह से अपने भी वैसे ही हो जाते तो माता का जङ्गल जाना रोक न पाते ॥२०॥

जीवन्त्या हि स्त्रिया भर्ता दैवतं प्रभुरेव च।
भवत्या मम चैवाद्य राजा प्रभवति प्रभुः ॥ २१ ॥

पदच्छेदः—जीवन्त्याः, हि, स्त्रियाः, भर्ता, दैवतम्, प्रभुः, एव, च, भवत्याः, मम, च, एव, अद्य, राजा, प्रभवति, प्रभुः।

अन्वयः—हि, जीवन्त्याः, स्त्रियाः, भर्ता, दैवतम्, प्रभुः, च, एव, अद्य, राजा, भवत्याः, मम, च, एव, प्रभुः, प्रभवति।

व्याख्या—हि (यतः) जीवन्त्याः (प्राणवत्याः) स्त्रियाः (नार्याः) भर्ता (पतिः) दैवतम् (देवः) प्रभुः (स्वामी) च एव । अद्य (अत्र) राजा (महाराजः दशरथः) भवत्याः (कौशल्यायाः) मम (रामस्य) च (पुनः) एव प्रभुः (दण्डादिदाने समर्थः) प्रभवति (जायते) इति।

व्युत्पत्तिः—जीवति इति जीवन्ती तस्याः । देव एव देवता सैव ।

संस्कृतार्थः—हे मातः ! जीवन्त्याः नार्याः पतिरेव सर्वस्वम् । अथ च पिता दशरथः राजा, स चास्मान् दण्डयितुमपीष्टे ।

वाच्यान्तरम्—जीवन्त्याः भर्त्रा प्रभुणा दैवतेन च भूयते । राज्ञा च प्रभुणा प्रभूयते इति।

भावार्थः—हे मातः ! जीती हुई स्त्री के लिए उसका पति ही सर्वस्व है। इतना ही नहीं राजा होने के नाते महाराज आज हम लोगों को दण्ड भी दे सकते हैं ॥ २१ ॥

न ह्यनाथा वयं राज्ञा लोकनाथेन धीमता।
भरतश्चापि धर्मात्मा सर्वभूतप्रियंवदः ॥ २२ ॥
भवतीमनुवर्त्तेत स हि धर्मरतः सदा।

पदच्छेदः—न, हि, अनाथाः, वयम्, राज्ञा, लोकनाथेन, धीमता, भरतः, च, अपि, धर्मात्मा, सर्वभूतप्रियंवदः, भवतीम्, अनुवर्तेत, सः, हि, धर्मरतः सदा।

अन्वयः—हि, वयम्, धीमता, लोकनाथेन, राज्ञा, अनाथाः, न, सर्वभूतप्रियंवदः, धर्मात्मा, भरतः, च, अपि, भवतीम्, अनुवर्तेत, हि, सः, सदा, धर्मरतः।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

व्याख्या—हि (यतः) वयम् (सर्वे) धीमता (बुद्धिमता) लोकनाथेन (लोकेशेन) राज्ञा (नृपतिना) अनाथाः (स्वामिहीनाः) न किन्तु सनाथाः इति भावः । सर्वभूतप्रियंवदः (निखिलप्राणप्रियभाषी) धर्मात्मा (धार्मिकः) भरतः (भरतनामा) च (पुनः) अपि भवतीम् (ज्येष्ठमातरम्) अनुवर्तेत (सेवेत) हि (यतः) सः (भरतः) सदा (सर्वदा) धर्मरतः (धार्मिक-विचारः) अस्ति ।

व्युत्पत्तिः—लोकानां नाथः तेन । सर्वभूतानां प्रियं वदतीति । धर्मे रतः (सर्वत्र तत्पुरुषः) धर्मः आत्मा स्वरूपं यस्य सः (बहुव्रीहिः) नास्ति नाथः येषां ते (बहुव्रीहिः)

संस्कृतार्थः—हे मातः ! महाराजदशरथस्य सत्त्वे वयं सनाथा एव । अत्र च धार्मिकः भरतः अपि तवैवानुगमनं करिष्यति नात्र सन्देहः ।

वाच्यान्तरम्—धर्मात्मना सर्वभूतप्रियंवदेन धर्मरतेन भरतेन त्वम् अनु-वर्तिष्यसे ।

भावार्थः—हे मातः ! महाराज के रहते हुए तुम किसी प्रकार अनाथ नहीं हो । साथ ही भरत भी तुम्हारी सेवा करेगा, क्योंकि वह धर्मात्मा है ॥२२॥

यथा मयि तु निष्क्रान्ते पुत्रशोकेन पार्थिवः ॥ २३ ॥

श्रमं नावाप्नुयात् किञ्चिदप्रमत्ता तथा कुरु ।
दारुणश्चाप्ययं शोको यथैनं न विनाशयेत् ॥ २४ ॥

पदच्छेदः—यथा, मयि, तु, निष्क्रान्ते, पुत्रशोकेन, पार्थिवः, श्रमम् , न, अवाप्नुयात् , किञ्चित् , अप्रमत्ता, तथा, कुरु, दारुणः, च, अपि, अयम् , शोकः, यथा, एनम् , न, विनाशयेत् ।

अन्वयः—मयि, निष्क्रान्ते, तु, पार्थिवः, पुत्रशोकेन, यथा, किञ्चित् , श्रमम् , न, अवाप्नुयात् , अप्रमत्ता (त्वं) तथा, कुरु, यथा, च, दारुणः, अपि, अयम् , शोकः, एनम् , न विनाशयेत् ।

व्याख्या—मयि (रामे) निष्क्रान्ते (वनं गते) तु, पार्थिवः (राजा दश-रथः) पुत्रशोकेन (ज्येष्ठपुत्रवियोगेन) यथा (येन प्रकारेण) किञ्चित् (लेशतः अपि) श्रमम् (दुःखम्) न, अवाप्नुयात् (लभेत) अप्रमत्ता (प्रमाद-

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

रहिता) त्वम् तथा (तेन प्रकारेण) कुरु (विधेहि) यथा च (यथा हि) दारुणः (भयङ्करः) अपि अयम् (एषः) शोकः (पुत्रवियोगरूपः) एनम् (महाराजम्) न विनाशयेत् (न नाशयेत्) नायं यथा म्रियेतेति भावः ।

व्युत्पत्तिः—पुत्रस्य शोकः तेन । न प्रमत्ता (उभयत्र तत्पुरुषः) दारुणं भीषणं भीष्मं घोरं भीमं भयानकमित्यमरः ।

संस्कृतार्थः—हे मातः ! त्वया तथा कर्त्तव्यं यथा राजा मम वनगमने शोकेन न विषीदेत्, शोकेन वा प्राणान् न त्यजेत् ।

वाच्यान्तरम्—पार्थिवेन यथा श्रमो नावाप्येत, अप्रमत्तया तथा क्रियताम्, दारुणेन शोकेन एषः न विनाश्येत ।

भावार्थः—हे मातः ! आप को सावधानी से ऐसा उपाय करना चाहिए कि जिससे मेरे जंगल चले जाने पर राजा दशरथ को पुत्र वियोग का दुःख सता न सके ॥ २३-२४ ॥

राज्ञो वृद्धस्य सततं हितं चर समाहिता ।
व्रतोपवासनिरता या नारी परमोत्तमा ॥२५॥
भर्तारं नानुवर्तेत सा च पापगतिर्भवेत् ।

पदच्छेदः—राज्ञः, वृद्धस्य, सततम्, हितम्, चर, समाहिता, व्रतोपवासनिरता, या, नारी, परमोत्तमा, भर्तारम्, न, अनुवर्तेत, सा, च, पापगतिः, भवेत् ।

अन्वयः—समाहिता, सततम्, वृद्धस्य, राज्ञः, हितम्, चर, व्रतोपवासनिरता, परमोत्तमा, या, नारी, भर्तारम्, न अनुवर्त्तेत, सा, च, पापगतिः, भवेत् ।

व्याख्या—समाहिता (सावधाना) सततम् (निरन्तरम्) वृद्धस्य (जरठस्य) राज्ञः (दशरथस्य) हितम् (कल्याणम्) चर (कुरु) व्रतोपवासनिरता (व्रतोपवासादिलग्नमानसा) परमोत्तमा (अत्युत्तमा) या (कापि) नारी (स्त्री) भर्तारम् (पतिम्) न (नैव) अनुवर्त्तेत (अनुगच्छेत्) सा च (नारी) पापगतिः (पापस्थाना) भवेत् (जायेत) ।

व्युत्पत्तिः—व्रतानि च उपवासाश्च व्रतोपवासाः तेषु निरता (तत्पुरुषः) परमा उत्तमा परमोत्तमा (कर्मधारयः) पापा गतिः यस्याः साः (बहुव्रीहि) ।

संस्कृतार्थः—हे मातः ! त्वं सावधाना वृद्धस्य महाराजस्य सेवां कुरु । व्रतो-

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

पवासादिभिः या स्वामुत्तमां पतिसेवामन्तरेणापि मन्यमाना सा नरकं गच्छति ।

वाच्यान्तरम्—समाहितया त्वया राज्ञः हितम् चर्यताम् । परमोत्तमया यथा भर्ता नानुवर्त्त्येत तया पापगत्या भूयताम् ।

भावार्थः—हे मातः ! तुम सावधान होकर वृद्ध महाराज की सेवा करो । पतिसेवा पर ध्यान देकर जो कुलीना स्त्रियाँ व्रत उपवास आदि से उत्तम बनना चाहती हैं उन्हें स्वर्ग नहीं, किन्तु नरक मिलता है ॥२५॥

भर्तुः शुश्रूषया नारी लभते स्वर्गमुत्तमम् ॥२६॥
अपि या निर्नमस्कारा निवृत्ता देवपूजनात् ।
शुश्रूषामेव कुर्वीत भर्त्तुः प्रियहिते रता ॥२७॥
एष धर्मः स्त्रिया नित्यो वेदे लोके श्रुतः स्मृतः ।

पदच्छेदः—भर्तुः, शुश्रूषया, नारी, लभते, स्वर्गम्, उत्तमम्, अपि, या, निर्नमस्कारा, निवृत्ता, देवपूजनात्, शुश्रूषाम्, एव, कुर्वीत, भर्त्तुः, प्रियहिते, रता । एषः, धर्मः, स्त्रियाः, नित्यः, वेदे, लोके, श्रुतः, स्मृतः ।

अन्वयः—नारी, भर्त्तुः, शुश्रूषया, उत्तमम्, स्वर्गम्, लभते, या, अपि, निर्नमस्कारा, देवपूजनात्, निवृत्ता, भर्तुः, प्रियहिते, रता, (सा) शुश्रूषाम्, एव, कुर्वीत । स्त्रियाः, एषः, धर्मः, वेदे, लोके, श्रुतः, स्मृतः ।

व्याख्या—नारी (योषित्) भर्तुः (पत्युः) शुश्रूषया (सेवया) उत्तमम् (निरतिशयम्) स्वर्गम् (नाकम्) लभते (गच्छति) या अपि (काचित्) निर्नमस्कारा (प्रणामेनापि शून्या) देवपूजनात् (देवपूजायाः) निवृत्ता (दूरवर्त्तिनी) भर्तुः (पत्युः) प्रियहिते (अभीष्टसम्पादने) रता (निरता) सा शुश्रूषाम् (सेवाम्) एव, कुर्वीत (विदध्यात्) । स्त्रियाः (नार्याः) एषः (अयम्) धर्मः वेदे (श्रुतौ) लोके (संसारे) च श्रुतः (आकर्णितः) स्मृतः (स्मृतिषु प्रतिपादितः) च । पतिसेवामात्रं सर्वस्वम् इति भावः ।

व्युत्पत्तिः—निर्गतः नमस्कारो यस्याः सा (बहुव्रीहिः) देवस्य पूजनम् तस्मात् (तत्पु०) प्रियं च हितं तस्मिन् (कर्म०) ।

संस्कृतार्थः—कापि स्त्री भर्त्तुः सेवया स्वर्गं प्राप्नोति । देवपूजादिषु यस्या ध्यानं नास्ति सापि पतिं शुश्रूषमाणा तत्फलं लभते । एष एव स्त्रीधर्मः ।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

वाच्यान्तरम्—नार्या उत्तमः स्वर्गो लभ्यते । निर्नमस्कारया निवृत्तया शुश्रूषा क्रियेत ।

भावार्थः—अपने पति की सेवा करके कोई भी स्त्री स्वर्ग प्राप्त कर सकती है। भलेही वह देवपूजा इत्यादि कृत्यों से दूर रहती हो। यही स्त्रियों का परम-धर्म वेदों तथा शास्त्रों में कहा है ॥२६-२७॥

अग्निकार्येषु च सदा सुमनोभिश्च देवताः ॥२८॥
पूज्यास्ते मत्कृते देवि ब्राह्मणाश्चैव सत्कृताः ।
एवं कालं प्रतीक्षस्व ममागमनकांक्षिणी ॥२९॥

पदच्छेदः—अग्निकार्येषु, च, सदा, सुमनोभिः, च, देवताः, पूज्याः, ते, मत्कृते, देवि, ब्राह्मणाः, च, एव, सत्कृताः, एवम्, कालम्, प्रतीक्षस्व, मम, आगमनकांक्षिणी ।

अन्वयः—हे देवि ! मत्कृते, अग्निकार्येषु, च, देवताः, सुमनोभिः, ब्राह्मणाः, च, सत्कृताः, सदा, पूज्याः, एवम्, मम, आगमनकांक्षिणी, कालम्, प्रतीक्षस्व ।

व्याख्या—हे देवि (हे जननि) मत्कृते (मदर्थम्) अग्निकार्येषु (पति-सम्मतेषु यज्ञादिषु) च देवताः (त्रिदशाः) सुमनोभिः (पुष्पैः, शुद्धचेतोभिर्वा) ब्राह्मणाः (द्विजाः) च (पुनः) सत्कृताः (सत्कारार्हाः) सदा (सर्वदा) पूज्याः (मान्याः) एवम् (उक्तरीत्या) मम (रामस्य) आगमनकांक्षिणी (आगमनाभिलाषिणी) कालम् (समयम्) प्रतीक्षस्व (प्रतिपालय) ।

व्युत्पत्तिः—अग्नेः कार्याणि तेषु । आगमनं कांक्षति या सा (उभयत्र तत्पु०)

संस्कृतार्थः—हे मातः ! मदर्थम् पित्रनुगतमार्गेण यागादिभिर्देवाः सत्कारैश्च द्विजाः सदा त्वया अर्चनीयाः । एवम् मम आगमनप्रतीक्षां सावधाना विधेहि ।

वाच्यान्तरम्—मम आगमनकांक्षिण्या कालः प्रतीक्ष्यताम् ।

भावार्थः—हे मातः ! मेरी रक्षा के लिए सदैव पिताजी की आज्ञा से तुम देव द्विज पूजा सत्कार करती हुई मेरे आने की इन्तज़ार करना ॥२८-२९॥

नियता नियताहारा भर्तृशुश्रूषणे रता ।
प्राप्स्यसे परमं कामं मयि पर्यागते सति ॥३०॥
यदि धर्मभृतां श्रेष्ठो धारयिष्यति जीवितम् ।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

पदच्छेदः—नियता, नियताहारा, भर्तृशुश्रूषणे, रता, प्राप्स्यसे, परमम्, कामम्, मयि, पर्यागते, सति, यदि, धर्मभृताम्, श्रेष्ठः, धारयिष्यति, जीवितम् ।

अन्वयः—यदि, धर्मभृताम्, श्रेष्ठः, जीवितम्, धारयिष्यति, तर्हि, नियता, नियताहारा, भर्तृशुश्रूषणे, रता, (त्वम्) मयि, पर्यागते, सति, परमम्, कामम्, प्राप्स्यसे ।

व्याख्या—यदि धर्मभृताम् (धार्मिकाणाम्) श्रेष्ठः (अग्रेसरः) जीवितम् (जीवनम्) धारयिष्यति (भरिष्यति) तर्हि नियता (नियमवती) नियताहारा (संयतभोजना) भर्तृशुश्रूषणे (पतिसेवायाम्) रता (लग्ना) त्वम् मयि (रामे) पर्यागते (प्रत्यावृत्ते) सति परमम् (अत्युच्चम्) कामम् (अभीष्टम्) प्राप्स्यसे (लप्स्यसे) ।

व्युत्पत्तिः—धर्मं बिभ्रति इति धर्मभृतः तेषाम् (तत्पु०) । नियतः आहारो यस्याः सा (बहु०) । भर्तुः शुश्रूषणं तस्मिन् (तत्पु०) ।

संस्कृतार्थः—हे मातः ! त्वम् साधु संयता भर्तारमुपसेवस्व । यदि मम प्रत्यागमनपर्यन्तम् महाराजः जीविष्यति तदा त्वम् स्वपरमाभीष्टं लप्स्यसे ।

वाच्यान्तरम्—नियतया नियताहारया कामः प्राप्स्यते यदि धर्मभृतां श्रेष्ठेन ।

भावार्थः—हे मातः ! तुम सुसंयम से पिताजी की सेवा करना । अगर मेरे लौटने तक वे जीवित रह गए तो तुम्हें सभी अभीष्ट मिलेंगे ॥ ३० ॥

एवमुक्ता तु रामेण बाष्पपर्याकुलेक्षणा ॥३१॥
कौसल्या पुत्रशोकार्ता रामं वचनमब्रवीत् ।

पदच्छेदः—एवम्, उक्ता, तु, रामेण, बाष्पपर्याकुलेक्षणा, कौसल्या, पुत्रशोकार्त्ता, रामम्, वचनम्, अब्रवीत् ।

अन्वयः—रामेण, एवम्, उक्ता, तु, बाष्पपर्याकुलेक्षणा, पुत्रशोकार्त्ता, कौसल्या, रामम्, वचनम्, अब्रवीत् ।

व्याख्या—रामेण (रामचन्द्रेण) एवम् (पूर्वप्रकारेण) उक्ता (कथिता) तु बाष्पपर्याकुलेक्षणा (अश्रुव्याप्तनेत्रा) पुत्रशोकार्त्ता (सुतदुःखकातरा) कौसल्या (रामजननी) रामम् (स्वपुत्रम्) वचनम् (वाक्यम्) अब्रवीत् (उवाच) ।

व्युत्पत्तिः—बाष्पैः पर्याकुले अक्षिणी यस्याः सा (बहु०) । पुत्रशोकेन आर्त्ता (तत्पु०) ।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

संस्कृतार्थः—रामस्य वचनानि श्रुत्वा मोहं गता साश्रुनयना माता कौशल्या रामसुवाच ।

वाच्यान्तरम्—बाष्पपर्याकुलेक्षणया रामः ऊचे ।

भावार्थः—रामचन्द्रजी की बातें सुन माता पुत्र के मोह से रोती हुई बोली—॥२०-२१॥

गमने सुकृतां बुद्धिं न ते शक्नोमि पुत्रक ! ॥३२॥
विनिवर्तयितुं वीर ! नूनं कालो दुरत्ययः ।
गच्छ पुत्र ! त्वमेकाग्रो भद्रं तेऽस्तु सदा विभो ! ॥३३॥

पदच्छेदः—गमने, सुकृताम्, बुद्धिम्, न, ते, शक्नोमि, पुत्रक, विनिवर्तयितुम्, वीर, नूनम्, कालः, दुरत्ययः, गच्छ, पुत्र, त्वम्, एकाग्रः, भद्रम्, ते, अस्तु, सदा, विभो ।

अन्वयः—हे पुत्रक !, गमने, सुकृताम्, ते, बुद्धिम्, विनिवर्तयितुम्, न, शक्नोमि, हे वीर !, कालः, नूनम्, दुरत्ययः, हे पुत्र !, त्वम्, एकाग्रः, गच्छ, हे विभो !, ते, सदा, भद्रम्, अस्तु ।

व्याख्या—हे पुत्रक ! (हे सुत !) गमने (व्रजने) सुकृताम् (सुनिश्चिताम्) ते (तव) बुद्धिम् (धिषणाम्) विनिवर्तयितुम् (निषेद्धुम्) न (नैव) शक्नोमि (शक्ता) हे वीर ! (हे शूर !) कालः (इष्टवियोगादिजनकः समयः) नूनम् (निश्चयेन) दुरत्ययः (अवश्यम्भावी) हे पुत्र ! (हे वत्स !) त्वम् (रामः) एकाग्रः (एकाकी) गच्छ (वनं व्रज) हे विभो ! (हे व्यापक !) ते (तव) सदा भद्रम् (कल्याणम्) अस्तु (जायताम्) ।

व्युत्पत्तिः—सुष्ठु कृता सुकृता ताम् (कर्म०) । दुरत्येतीति दुरत्ययः । एकम् अग्रम् अस्य सः एकाग्रः (बहु०) ।

संस्कृतार्थः—हे पुत्र ! वनगमनबुद्धिं ते न वारयितुमीशे, कालो न परिवर्तते । त्वम् एकाकी वनं व्रज । तव कल्याणमस्तु ।

वाच्यान्तरम्—सुकृता ते बुद्धिः न शक्यते, एकाग्रेण त्वया गम्यताम् ।

भावार्थः—हे पुत्र ! वन जाने की तुम्हारी बुद्धि बदली नहीं जा सकती । समय बलवान् है । हे वीर ! तुम अकेले ही जाओ । हे प्रभो ! तुम्हारा कल्याण हो ॥ ३२-३३॥

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

पुनस्त्वयि निवृत्ते तु भविष्यामि गतक्लमा ।
प्रत्यागते महाभागे कृतार्थे चरितव्रते ॥३४॥
पितुरानृण्यतां प्राप्ते स्वपिष्ये परमं सुखम् ॥३५॥

पदच्छेदः—पुनः, त्वयि, निवृत्ते, तु, भविष्यामि, गतक्लमा, प्रत्यागते, महाभागे, कृतार्थे, चरितव्रते, पितुः, आनृण्यताम् , प्राप्ते, स्वपिष्ये, परमम् ,सुखम् ।

अन्वयः—पुनः, त्वयि, निवृत्ते, तु, गतक्लमा, भविष्यामि, कृतार्थे, चरितव्रते, महाभागे, पितुः, आनृण्यताम्, प्राप्ते (त्वयि) प्रत्यागते, परमम् , सुखम् , स्वपिष्ये ।

व्याख्या—पुनः (भूयः) त्वयि (रामे) निवृत्ते (वनात् प्रत्यावृत्ते तु) गतक्लमा (गतदुःखा) भविष्यामि (सम्पत्स्ये) कृतार्थे (कृतकृत्ये) चरितव्रते (विहितानुष्ठाने) महाभागे (अतिभाग्ये) पितुः (दशरथस्य) आनृण्यताम् (ऋणापनयने) प्राप्ते (अधिकृते) त्वयि प्रत्यागते (प्रतिनिवृत्ते) परमम् (अत्यन्तम्) सुखम् (आनन्दसहितम् यथा स्यात्तथा) स्वपिष्ये (शयनं करिष्यामि) ससुखा भविष्यामीति भावः ।

व्युत्पत्तिः—गतः क्लमो यस्याः सा । चरितं व्रतं येन तस्मिन् । महान् भागो यस्य तस्मिन् । नास्ति ऋणं यस्य सः अनृणः तस्य भावः आनृण्यम् (सर्वत्र बहुव्री०) ।

संस्कृतार्थः—हे राम ! पितुः आज्ञां सम्पाद्य त्वं यदा आगमिष्यसि तदा सुखनिद्राम् अधिगमिष्यामि ।

वाच्यान्तरम्—त्वयि निवृत्ते गतक्लमया भूयते सुखं स्वप्स्यते ।

भावार्थः—हे पुत्र ! जब तुम जङ्गल से लौट आओगे, पिता के आदेश का पालनकर उनके ऋण से मुक्त हो चुकोगे तब हमें सुख की नींद आयेगी ॥३४-३५॥

कृतान्तस्य गतिः पुत्र दुर्विभाव्या सदा भुवि ।
यत्त्वां संचोदयति मे वच आविद्धय राघव ॥३६॥

पदच्छेदः—कृतान्तस्य, गतिः, पुत्र, दुर्विभाव्या, सदा, भुवि, यत्, त्वाम् संचोदयति, मे, वचः, आविद्धय, राघव ।

अन्वयः—हे पुत्र !, भुवि, कृतान्तस्य, गतिः, सदा, दुर्विभाव्या, यत्, हे राघव !, मे, वचः, आविद्धय, त्वाम्, सञ्चोदयति ।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

व्याख्या--हे पुत्र (हे सुत) भुवि (पृथिव्याम्) कृतान्तस्य (यमस्य) गतिः (कृतिः) सदा (सर्वदा) दुर्विभाव्या (विलक्षणा, प्रबलेति यावत्) यत् (यतः) हे राघव (हे राम) मे (मम) वचः (वचनम्) आविद्धय (आच्छिद्य) त्वाम् (रामम्) संचोदयति (वनगमनाय प्रेरयति) ।

व्युत्पत्तिः--कृतमन्तयतीति कृतान्तः तस्य । दुःखेन विभाव्या । कृतान्तः यमराड्यमः, इति कोषः ।

संस्कृतार्थः--हे पुत्र ! दैवम् प्रबलं यत् स्ववचसापि त्वामहं वनाय प्रेरयामि।

वाच्यान्तरम्—हे राघव ! मे वचसा त्वं सञ्चोद्यसे ।

भावार्थः—हे राम ! इस संसार में दैव बड़ा ही प्रबल है कि देखो मेरी ही वाणी मेरे प्रियपुत्र को जंगल जाने का समर्थन कर रही है ॥३६॥

गच्छेदानीं महाबाहो ! क्षेमेण पुनरागतः ।
नन्दयिष्यसि मां पुत्र साम्ना श्लक्ष्णेन चारुणा ॥३७॥

पदच्छेदः—गच्छ, इदानीम्, महाबाहो, क्षेमेण, पुनः, आगतः, नन्दयिष्यसि, माम्, पुत्र, साम्ना, श्लक्ष्णेन, चारुणा ।

अन्वयः—हे महाबाहो ! इदानीम्, गच्छ, हे पुत्र ! क्षेमेण, पुनः, आगतः, साम्ना, श्लक्ष्णेन, चारुणा (वचनेन), माम्, नन्दयिष्यसि ।

व्याख्या—हे महाबाहो (हे महावीर) इदानीम् (अस्मिन् समये) गच्छ (वनं व्रज) हे पुत्र (हे सुत) क्षेमेण (आनन्देन) पुनः (भूयः) आगतः (प्रत्यावृत्तः) साम्ना (सान्त्वेन) श्लक्ष्णेन (निर्मलेन) चारुणा (मनोहरेण) वचनेन माम् (मातरम्) नन्दयिष्यसि (प्रसादयिष्यसि) त्वाम् दृष्ट्वा प्रसन्ना भविष्यामीत्यर्थः ।

व्युत्पत्तिः—महान्तौ बाहू यस्य सः तत्सम्बुद्धौ (बहुव्रीहिः) ।

संस्कृतार्थः—हे पुत्र ! इदानीं त्वं वनं गच्छ । सानन्दं ततः प्रत्यावृत्तः माम् सुखयिष्यसि ।

वाच्यान्तरम्—हे पुत्र ! पुनरागतेन त्वयाऽहं नन्दयिष्ये ।

भावार्थः—हे पुत्र ! इस समय तो तुम जाओ । जंगल से सानन्द लौटकर हमें सुखी करना ॥३७॥

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अपीदानीं स कालः स्याद् वनात् प्रत्यागतं पुनः ।
यत्त्वां पुत्रक ! पश्येयं जटावल्कलधारिणम् ॥३८॥

पदच्छेदः—अपि, इदानीम्, सः, कालः, स्यात्, वनात्, प्रत्यागतम्, पुनः, यत्, त्वाम्, पुत्रक ! पश्येयम्, जटावल्कलधारिणम् ।

अन्वयः—हे पुत्रक !, सः, कालः, इदानीम्, अपि, स्यात्, यत्, वनात्, प्रत्यागतम्, जटावल्कलधारिणम्, त्वाम्, पुनः, पश्येयम् ।

व्याख्या—हे पुत्रक (हे सुत) सः (पूर्वोक्तः) कालः (समयः) इदानीम् अपि (अधुनैव) स्यात् (भवेत्) यत् (यदा) वनात् (काननात्) प्रत्यागतम् (प्रतिनिवृत्तम्) जटावल्कलधारिणम् (जटातरुत्वग्धारिणम्) त्वाम् (रामम्) पुनः (भूयः) पश्येयम् (अवलोकयेयम्) ।

व्युत्पत्तिः—जटाश्च वल्कलानि च धरतीति शीलः तम् (तत्पुरुषः) ।
शिखा चूडा केशपाशो व्रतिनश्च जटा सटा, इत्यमरः ।

संस्कृतार्थः—हे पुत्र ! तव प्रत्यागमनकाल इदानीमेव पूर्णः स्याद् येन त्वाम् अवलोक्य सुखम् शीघ्रमासादयेयम् ।

वाच्यान्तरम्—तेन कालेन इदानीमेव भूयताम्, मया त्वं दृश्येथाः ।

भावार्थः—हे पुत्र ! वह समय अतिशीघ्र आवे जब कि बन से वापस आए हुए तुम्हें देखूँ ॥३८॥

तथाहि रामं वनवासनिश्चितं ददर्श देवी परमेण चेतसा ।
उवाच रामं शुभलक्षणं वचो बभूव च स्वस्त्यनाभिकाङ्क्षिणी ॥३९॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्येऽयोध्याकाण्डे
चतुर्विंशः सर्गः ॥ २४ ॥

पदच्छेदः—तथा, हि, रामम्, वनवासनिश्चितम्, ददर्श, देवी, परमेण, चेतसा, उवाच, रामम्, शुभलक्षणम्, वचः, बभूव, च स्वस्त्ययनाभिलाषिणी ।

अन्वयः—देवी, हि, वनवासनिश्चितम्, रामम्, तथा, ददर्श, परमेण, चेतसा, च शुभलक्षणम्, वचः, उवाच, स्वस्त्ययनाभिलाषिणी, च, बभूव ।

व्याख्या—देवी (कौशल्या) हि (यतः) वनवासनिश्चितम् (वनवास-भुवम्) रामम् (स्वपुत्रम्) तथा (तेन प्रकारेण) ददर्श (अवालुलोके) परमेण

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

(उदारवता) चेतसा (मनसा) च (पुनः) शुभलक्षणम् (शुभस्वरूपम्) वचः (वचनम्) उवाच (जगाद) स्वस्त्ययनाभिलाषिणी (मङ्गलाभिकांक्षिणी) च बभूव (समजायत) ।

व्युत्पत्तिः—वनवासाय निश्चितः तम् । स्वस्त्ययनमभिलषतीति (उभयत्र तत्पु०) । शुभं लक्ष्यते इति । शुभं लक्षणं स्वरूपं यस्य वा (बहु०) ।

स्वस्त्याशीः क्षेमपुण्यादौ इत्यमरः ।

संस्कृतार्थः—कौशल्या तथोक्तप्रकारेण रामस्य वनगमनं निश्चितं विज्ञाय शुभम् वचोऽब्रवीत् , यात्राकालिकमङ्गलादि च आचकाङ्क्ष ।

वाच्यान्तरम्—देव्या वनवासनिश्चितः रामः ददृशे । स्वस्त्ययनाभिलाषिण्या बभूव ।

भावार्थः—माता कौशल्या ने राम का वन जाना निश्चित समझ कर शुभ-बातें कहीं, साथही प्रास्थानिक मङ्गल की तैयारी करना चाहीं ॥३९॥

इति वाल्मीकीये रामवनगमने आचार्यश्रीराजनारायणशास्त्रिशुक्लरचितायाम् प्रभाटीकायां प्रथमः सर्गः ॥ १ ॥

अथ द्वितीयः सर्गः ।

सा विनीय तमायासमुपस्पृश्य जलं शुचि ।
चकार माता रामस्य मङ्गलानि मनस्विनी ॥ १ ॥

पदच्छेदः—सा विनीय, तम् , आयासम् , उपस्पृश्य, जलम् , शुचि, चकार, माता, रामस्य, मङ्गलानि, मनस्विनी ।

अन्वयः—मनस्विनी, सा, रामस्य, माता, तम् , आयासम् , विनीय, शुचि, जलम् , उपस्पृश्य, मङ्गलानि, चकार ।

व्याख्या—मनस्विनी सा (पूर्वोक्ता) रामस्य (रामचन्द्रस्य) माता (कौसल्या) तम् (पूर्वोक्तम्) आयासम् (आयासजनकं शोकम्) विनीय (अपनीय) शुचि (पवित्रम्) जलम् (उदकम्) उपस्पृश्य (आचम्य) मङ्गलानि (मङ्गलवचनानि) चकार (विदधे) ।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

व्युत्पत्तिः—उपस्पृश + क्त्वा (ल्यप्) उपस्पृश्य । आयासः स्वजनके लाक्षणिकः । शिवं भद्रं कल्याणं मङ्गलं शुभम् इत्यमरः ।

संस्कृतार्थः—उत्तमकुला माता कौशल्या समुपस्थितम् शोकम् दूरीकृत्य आचम्य रामस्य मङ्गलानि अकरोत् ।

वाच्यान्तरम्—रामस्य मात्रा""मङ्गलानि चक्रिरे ।

भावार्थः—मनस्वी राम की माता शोक को पीछे कर पवित्र जल से आचमन द्वारा यात्रा का मङ्गल सजाने लगीं ॥ १ ॥

न शक्यते वारयितुं गच्छेदानीं रघूत्तम ।
शीघ्रं च विनिवर्तस्व वर्तस्व च सतां क्रमे ॥ २ ॥

पदच्छेदः—न, शक्यते, वारयितुम्, गच्छ, इदानीम्, रघूत्तम, शीघ्रम्, च, विनिवर्त्तस्व, वर्तस्व, च, सताम्, क्रमे ।

अन्वयः—हे रघूत्तम ! इदानीम्, वारयितुम्, न, शक्यते, गच्छ, शीघ्रम्, च, विनिवर्त्तस्व, सताम्, क्रमे, च, वर्तस्व ।

व्याख्या—हे रघूत्तम (हे रघुवंशशिरोमणे) इदानीम् (अधुना) वारयितुम् (निवारयितुम्) न, शक्यते (नैव युज्यते) अतः गच्छ (वनं याहि) शीघ्रम् (आशु) च विनिवर्तस्व (विनिवृत्तो भव) सताम् (सत्पुरुषाणाम्) क्रमे (मार्गे) च वर्तस्व (प्रवृत्तो भव) ।

व्युत्पत्तिः—रघुषु उत्तमः तत्सम्बुद्धौ (तत्पुरुषः) ।

संस्कृतार्थः—हे राम ! इदानीं वनगमनात् त्वां कोऽपि वारयितुम् न शक्नोति, अतः त्वं गच्छ । शीघ्रं च ततो निवर्त्य सत्पुरुषाणां मार्गे प्रवर्त्तेः ।

वाच्यान्तरम्—राम ! त्वया गम्यताम्, शीघ्रं विनिवर्त्यताम्, सतां क्रमे वर्त्यताम् ।

भावार्थः—हे राम ! तुम जाओ, जङ्गल से शीघ्र वापस आओ और सत्पुरुषों के कार्य में लगो ॥ २ ॥

यं पालयसि धर्मं त्वं प्रीत्या च नियमेन च ।
स वै राघवशार्दूल धर्मस्त्वामभिरक्षतु ॥ ३ ॥

पदच्छेदः—यम्, पालयसि, धर्मम्, त्वम्, प्रीत्या, च, नियमेन, च, सः, वै, राघवशार्दूल ! धर्मः, त्वाम्, अभिरक्षतु ।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अन्वयः—हे राघवशार्दूल ! त्वम्, प्रीत्या, च, नियमेन, च, यम्, धर्मम्, पालयसि, सः, वै, धर्मः, त्वाम्, अभिरक्षतु ।

व्याख्या—हे राघवशार्दूल (रघुवंशसिंह) त्वम् (भगवान् राम) प्रीत्या (स्नेहेन) च (पुनः) नियमेन (संयमेन) च यम् धर्मम् (सनातनम्) पालयसि (रक्षसि) सः (पालितः) वै धर्मः (स्वस्य) त्वाम् (रामम्) अभिरक्षतु (पालयतु) धर्मो रक्षति रक्षितः इति मनूक्तेः ।

व्युत्पत्तिः—राघवेषु शार्दूल इवेति तत्सम्बुद्धौ । तत्पुरुषः ।

संस्कृतार्थः—हे राम ! यं सनातनं धर्मं त्वम् नियमतः पालयसि स त्वाम् रक्षतु ।

वाच्यान्तरम्—त्वया यः धर्मः पाल्यते तेन त्वं रक्ष्यस्व ।

भावार्थः—हे राम ! तुम जिस अपने प्रिय सनातन धर्म की रक्षा सर्वथा करते हो वह तुम्हारी रक्षा करे ॥ ३ ॥

येभ्यः प्रणमसे पुत्र देवेष्वायतनेषु च ।
ते च त्वामभिरक्षन्तु वने सह महर्षिभिः ॥ ४ ॥

पदच्छेदः—येभ्यः, प्रणमसे, पुत्र, देवेषु, आयतनेषु, च, ते, च, त्वाम्, अभिरक्षन्तु, वने, सह, महर्षिभिः ।

अन्वयः—हे पुत्र ! देवेषु, आयतनेषु, च, येभ्यः, प्रणमसे, वने, महर्षिभिः, सह, ते, च त्वाम्, अभिरक्षन्तु ।

व्याख्या—हे पुत्र (हे सुत) देवेषु आयतनेषु च (देवालयेषु) येभ्यः (केभ्यश्चित्) प्रणमसे (नमस्करोषि) वने (कानने) महर्षिभिः (ऋषिभिः) सह, ते (सर्वे) च, त्वाम् (रामम्) अभिरक्षन्तु (पालयन्तु) ते विपदः दूरयन्तु इति भावः ।

व्युत्पत्तिः—महान्तः ऋषयः तैः (कर्मधारयः) ।

संस्कृतार्थः—हे पुत्र ! सर्वे देवाः महर्षिभिः सह कानने त्वां रक्षन्तु ।

वाच्यान्तरम्—त्वया ये प्रणम्यन्ते……तैः त्वं रक्ष्यस्व ।

भावार्थः—हे पुत्र ! मन्दिरों में जिन देवताओं के लिए तुम नमस्कार करते रहते हो जंगल में महर्षियों के साथ वे लोग तुम्हारी रक्षा करें ॥ ४ ॥

यानि दत्तानि तेऽस्त्राणि विश्वामित्रेण धीमता ।
तानि त्वामभिरक्षन्तु गुणैः समुदितं सदा ॥ ५ ॥

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

पदच्छेदः—यानि, दत्तानि, ते, अस्त्राणि, विश्वामित्रेण, धीमता, तानि, त्वाम् , अभिरक्षन्तु, गुणैः, समुदितम् , सदा ।

अन्वयः—धीमता, विश्वामित्रेण, गुणैः, समुदितम् , ते, यानि, अस्त्राणि, दत्तानि, तानि, सदा, त्वाम् , अभिरक्षन्तु ।

व्याख्या—धीमता (बुद्धिमता) विश्वामित्रेण (तन्नामकमहर्षिणा) गुणैः (सद्गुणैः) समुदितम् (सप्रसादम्) ते (तुभ्यम्) यानि (कानिचित्) अस्त्राणि (दिव्यशस्त्राणि) दत्तानि (वितीर्णानि) तानि (सर्वाणि) सदा (सर्वदा) त्वाम् (रामम्) अभिरक्षन्तु (पालयन्तु) ।

व्युत्पत्तिः—धीः अस्यास्तीति धीमान् तेन । विश्वस्य मित्रः तेन "मित्रे चर्षौ" इति पाणिनीयेन दीर्घः ।

संस्कृतार्थः—हे राम ! विश्वामित्रेण त्वद्गुणेषु प्रसन्नीभूय यानि अस्त्राणि दत्तानि तानि त्वाम् अभिरक्षन्तु ।

वाच्यान्तरम्—विश्वामित्रेण दत्तैः अस्त्रैः त्वं सदा अभिरक्ष्यस्व ।

भावार्थः—महर्षि विश्वामित्र ने तुम्हारे गुणों पर प्रसन्न होकर जो अस्त्र प्रदान किए थे वे ही अस्त्र तुम्हारी रक्षा करें ॥ ५ ॥

पितृशुश्रूषया पुत्र मातृशुश्रूषया तथा ।
सत्येन च महाबाहो चिरञ्जीवाभिरक्षितः ॥ ६ ॥

पदच्छेदः—पितृशुश्रूषया, पुत्र, मातृशुश्रूषया, तथा, सत्येन, च, महाबाहो, चिरञ्जीव, अभिरक्षितः ।

अन्वयः—हे पुत्र ! हे महाबाहो ! पितृशुश्रूषया, तथा, मातृशुश्रूषया, च, सत्येन, अभिरक्षितः, चिरञ्जीव ।

व्याख्या—हे पुत्र (हे सुत) हे महाबाहो (हे विशालभुज) पितृशुश्रूषया (महाराजसेवया) तथा मातृशुश्रूषया (जननीसेवया) च (पुनः) सत्येन (सर्वथा सत्येन) अभिरक्षितः (सुरक्षितः) चिरम् (बहुकालम्) जीव (प्राणान् धारय) ।

व्युत्पत्तिः—महान्तौ बाहू यस्य तत्सम्बुद्धौ (बहुव्री०) । पितुः शुश्रूषा तया । मातुः शुश्रूषा तया उभयत्र (तत्पु०) ।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

संस्कृतार्थः—हे वीरपुत्र ! पितृसेवया मातृसेवया सत्येन च रक्षितः त्वं चिरञ्जीव।

वाच्यान्तरम्—हे महाबाहो ! पितृशुश्रूषया··'सत्येन त्वया चिरं जीव्यताम्।

भावार्थः—हे पुत्र ! पिता की सेवा, माता की सेवा तथा सत्य से रक्षित होकर तुम चिरकाल तक जीवित रहो ॥ ६ ॥

समित्कुशपवित्राणि वेद्यश्चायतनानि च ।
स्थण्डिलानि च विप्राणां शैला वृक्षाः क्षुपा ह्रदाः॥
पतङ्गाः पन्नगाः सिंहास्त्वां रक्षन्तु नरोत्तम ! ॥ ७ ॥

पदच्छेदः—समित्कुशपवित्राणि, वेद्यः, च, आयतनानि, च, स्थण्डिलानि, च, विप्राणाम् , शैलाः, वृक्षाः, क्षुपाः, ह्रदाः, पतङ्गाः, पन्नगाः, सिंहाः, त्वाम्, रक्षन्तु, नरोत्तम ।

अन्वयः—हे नरोत्तम !, समित्कुशपवित्राणि, वेद्यः, च, आयतनानि, च, विप्राणाम्, स्थण्डिलानि, च, शैलाः, वृक्षाः, क्षुपाः, ह्रदाः, पतङ्गाः, पन्नगाः, सिंहाः, च, त्वाम्, रक्षन्तु ।

व्याख्या—हे नरोत्तम ! (हे पुरुषोत्तम !) समित्कुशपवित्राणि (समित्कुशाधिष्ठातृदेवताः) वेद्यः (यज्ञभूमयः) च (पुनः) आयतनानि (देवायतनानि) च (पुनः) विप्राणाम् (ब्राह्मणानाम्) स्थण्डिलानि (स्थानानि) च (पुनः) शैलाः (पर्वताः) वृक्षाः (तरवः) क्षुपाः (शिफायुक्तवृक्षाः) ह्रदाः (जलाशयाः) पतङ्गाः (पक्षिणः) पन्नगाः (सर्पाः) सिंहाः (शार्दूलाः) च (पुनः) त्वाम् (रामम्) रक्षन्तु (पालयन्तु) ।

व्युत्पत्तिः—नरेषु उत्तमः तत्सम्बुद्धौ (तत्पु०) । समिधश्च कुशाश्च पवित्राणि चेति (इतरेतरयोगः) । वेदिः परिष्कृता भूमिः समे स्थण्डिलचत्वरे, इत्यमरः ।

संस्कृतार्थः—हे पुरुषोत्तम ! समित्कुशादिस्थदेवताः यज्ञभूमयः देवमन्दिराणि विप्रस्थानानि पर्वताः वृक्षाः जलाशयाः पक्षिणः सर्पाः सिंहाश्च त्वाम् रक्षन्तु ।

वाच्यान्तरम्—हे नरोत्तम ! समित्कुशपवित्रैः वेदिभिः आयतनैः······सिंहैः च त्वम् रक्ष्यस्व ।

भावार्थः—हे नरोत्तम ! समिधा इत्यादि में रहनेवाले देवगण, यज्ञवेदियाँ,

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

ब्राह्मणस्थान, देवस्थान, वृक्ष, जलाशय, पक्षिगण, सर्पगण तथा सिंहादि मृगगण जंगल में तुम्हारी रक्षा करें ॥ ७ ॥

स्वस्ति साध्याश्च विश्वे च मरुतश्च महर्षिभिः ।
स्वस्ति धाता विधाता च स्वस्ति पूषा भगोऽर्यमा ॥ ८ ॥

पदच्छेदः—स्वस्ति, साध्याः, च, विश्वे, च, मरुतः, च, महर्षिभिः, स्वस्ति, धाता, विधाता, च, स्वस्ति, पूषा, भगः, अर्यमा ।

अन्वयः—साध्याः, च, विश्वे, च, महर्षिभिः, मरुतः, च, स्वस्ति, धाता, विधाता, च, स्वस्ति, पूषा, भगः, अर्यमा, च, स्वस्ति ।

व्याख्या—साध्याः (देवविशेषाः) च (पुनः) विश्वे च (विश्वेदेवाः) महर्षिभिः (महामुनिभिः) सह, मरुतः (वायुदेवताः) च स्वस्ति (कल्याणम्) कुर्वन्तु इति अग्रिमेणाऽन्वयः । धाता (विराट्) विधाता (सृष्टिविधायकः) च स्वस्ति (कल्याणम् कुर्वन्तु) पूषा (सूर्यविशेषः) भगः (रविविशेषः) अर्यमा च (सूर्यविशेषः) स्वस्ति (कल्याणं कुर्वन्तु) ।

व्युत्पत्तिः—महान्तः च ऋषयः तैः (कर्मधारयः) ।

संस्कृतार्थः—साध्याः विश्वेदेवा वायुदेवताः धाता, विधाता, सूर्यादयः च ते कल्याणं कुर्वन्तु ।

वाच्यान्तरम्—साध्यैः मरुद्भिः……धात्रा विधात्रा सूर्यादिभिः कल्याणं क्रियताम् ।

भावार्थः—साध्यादिदेव, वायुदेव, विश्वेदेव, सूर्यादिदेव तुम्हारा कल्याण करें ।

लोकपालाश्च ते सर्वे वासवप्रमुखास्तथा ।
ऋतवः षट् च ते सर्वे मासाः संवत्सराः क्षपाः ॥ ९ ॥

पदच्छेदः—लोकपालाः, च, ते, सर्वे, वासवप्रमुखाः, तथा, ऋतवः, षट्, च, ते, सर्वे, मासाः, संवत्सराः, क्षपाः ।

अन्वयः—तथा, ते, सर्वे, च, लोकपालाः, वासवप्रमुखाः, ते, च, षट्, ऋतवः, सर्वे, मासाः, संवत्सराः, क्षपाः (स्वस्ति कुर्वन्तु, इति अग्रिमेण सम्बन्धः) ।

व्याख्या—तथा ते सर्वे (प्रोक्ताः च) लोकपालाः (लोकपाः) वासवप्रमुखाः (इन्द्रादयः) ते च (सर्वे) षट् (षट्संख्याकाः) ऋतवः (हेमन्तादयः)

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

सर्वे (निखिलाः) मासाः (चैत्रादयः) संवत्सराः (वर्षाणि) क्षपाः (रात्रयः) तव स्वस्ति कुर्वन्तु ।

व्युत्पत्तिः—लोकान् पालयन्ते इति लोकपालाः (तत्पु०) । वासवः प्रमुखः येषां ते (बहु०) ।

संस्कृतार्थः—सर्वे इन्द्रादयः लोकेशाः ऋतवः मासाः अब्दाः रात्रयश्च तव कल्याणं कुर्वन्तु ।

वाच्यान्तरम्—लोकपालैः वासवप्रमुखैः……संवत्सरैः क्षपाभिः तव कल्याणं क्रियताम् ।

भावार्थः—इन्द्रादि समस्त लोकपाल, छहों ऋतु, सभी मास, वर्ष तथा सभी रात्रियाँ तुम्हारा कल्याण करें ॥ ९ ॥

दिनानि च मुहूर्ताश्च स्वस्ति कुर्वन्तु ते सदा ।
श्रुतिः स्मृतिश्च धर्मश्च पातु त्वाम् पुत्र ! सर्वतः ॥ १० ॥

पदच्छेदः—दिनानि, च, मुहूर्त्ताः, च, स्वस्ति, कुर्वन्तु, ते, सदा, श्रुतिः, स्मृतिः, च, धर्मः, च, पातु, त्वाम् , पुत्र, सर्वतः ।

अन्वयः – हे पुत्र !, दिनानि, च, मुहूर्त्ताः, च, ते, स्वस्ति, कुर्वन्तु । श्रुतिः, स्मृतिः, च, धर्मः, च, सदा, सर्वतः, त्वाम् , पातु ।

व्याख्या—हे पुत्र ! (हे सुत !) दिनानि, च (दिवसाः) मुहूर्त्ताः, (घट्यादयः) च (पुनः) ते (तव) स्वस्ति (कल्याणम्) कुर्वन्तु । श्रुतिः (वेदाः) स्मृतिः (मन्वादिः) च (पुनः) धर्मः (सनातनः) च सदा (सर्वदा) सर्वतः (परितः) त्वाम् (रामम्) पातु (रक्षतु) ।

व्युत्पत्तिः—सर्वाभ्यः इति सर्वतः इति सर्वशब्दात् पञ्चम्यास्तसिल् ।

संस्कृतार्थः—हे राम ! दिवसमुहूर्त्तादयः ते कल्याणं कुर्वन्तु । श्रुतिस्मृत्यादयः त्वां सर्वतः रक्षन्तु ।

वाच्यान्तरम्—दिनैः मुहूर्त्तैः……ते कल्याणं क्रियताम् । श्रुत्या स्मृत्या च धर्मेण त्वं सदा पीयताम् ।

भावार्थः—हे राम ! दिन, मुहूर्त्त, धर्म आदि तुम्हारा कल्याण करें । वेद, स्मृतियाँ तथा धर्म तुम्हारी रक्षा करें ॥ १० ॥

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

स्कन्दश्च भगवान् देवः सोमश्च सबृहस्पतिः ।
सप्तर्षयो नारदश्च ते त्वां रक्षन्तु सर्वतः ॥ ११ ॥

पदच्छेदः—स्कन्दः चः, भगवान्, देवः, सोमः, च, सबृहस्पतिः, सप्तर्षयः, नारदः, च, ते, त्वाम्, रक्षन्तु, सर्वतः ।

अन्वयः—भगवान्, स्कन्दः, देवः, च, सबृहस्पतिः, सोमः, च, सप्तर्षयः, च, नारदः, च, ते, त्वाम्, सर्वतः, रक्षन्तु ।

व्याख्या—भगवान् स्कन्दः (तदाख्यः) देवः च, (पुनः) सबृहस्पतिः (बृहस्पतिसहितः) सोमः (चन्द्रः) च (पुनः) सप्तर्षयः (ऋषिसप्तकम्) च (पुनः) नारदः (तन्नामकः महामुनिः) च ते (सर्वे) त्वाम् (रामम्) सर्वतः (अभितः) रक्षन्तु (पालयन्तु) ।

व्युत्पत्तिः—बृहस्पतिना सहितः (तत्पुरु०) । सप्त च ते ऋषयः (तत्पु०) ।

संस्कृतार्थः—बृहस्पतिसहितः भगवान् स्कन्दः, सप्तर्षिसहितः नारदः च त्वां सर्वतः रक्षन्तु ।

वाच्यान्तरम्—भगवता स्कन्देन'''सप्तर्षिभिः नारदेन च त्वं रक्ष्यस्व ।

भावार्थः—बृहस्पतिसहित भगवान् श्रीस्कन्द, सप्तर्षिसहित महामुनि नारद तुम्हारी रक्षा करें ॥ ११ ॥

ते चापि सर्वतः सिद्धा दिशश्च सदिगीश्वराः ।
स्तुता मया वने तस्मिन् पान्तु त्वां पुत्र ! नित्यशः ॥ १२ ॥

पदच्छेदः—ते, च, अपि, सर्वतः, सिद्धाः, दिशः, च, सदिगीश्वराः, स्तुताः, मया, वने, तस्मिन्, पान्तु, त्वाम्, पुत्र, नित्यशः ।

अन्वयः—हे पुत्र !, ते, च, अपि, सिद्धाः, सदिगीश्वराः, दिशः, च, मया, स्तुताः, तस्मिन्, वने, नित्यशः, सर्वतः, त्वाम्, पान्तु ।

व्याख्या—हे पुत्र (हे सुत !) ते च अपि (सर्वे) सिद्धाः सदिगीश्वराः (दिक्पालसहिताः) दिशः (काष्ठाः) च (पुनः) मया (कौशल्यया) स्तुताः (पूजिताः) तस्मिन् (त्वयाऽध्युष्यमाणे) वने (कानने) नित्यशः (नित्यम्) सर्वतः (परितः) त्वाम् (रामम्) पान्तु (रक्षन्तु) ।

व्युत्पत्तिः—दिशामीश्वराः दिगीश्वराः तैः सहिताः (तत्पु० गर्भः) ।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

संस्कृतार्थः—हे पुत्र ! सर्वे सिद्धा दिक्पालसहिताः दिशः च मया सम्पूजिताः वने यत्र त्वं वत्स्यसि सर्वथा त्वाम् रक्षन्तु ।

वाच्यान्तरम्—सिद्धैः सदिगीश्वराभिः दिग्भिः त्वां नित्यशः पीयस्व ।

भावार्थः—हे पुत्र ! दश दिक्पालों सहित दिशायें तथा सिद्ध लोग हमसे पूजित होकर उस जङ्गल में सदा तुम्हारी रक्षा करें जहाँ तुम रहो ॥ १२ ॥

शैलाः सर्वे समुद्राश्च राजा वरुण एव च ।
द्यौरन्तरिक्षम् पृथिवी वायुश्च सचराऽचरः ॥ १३ ॥

पदच्छेदः—शैलाः, सर्वे, समुद्राः, च, राजा, वरुणः, एव, च, द्यौः, अन्तरिक्षम् , पृथिवी, वायुः, च, सचराचरः ।

अन्वयः—सर्वे, शैलाः, च, समुद्राः, राजा, वरुणः, एव, च, द्यौः, अन्तरिक्षम्, पृथिवी, सचराचरः, वायुः, च (त्वाम् पान्तु इत्यग्रिमेण समन्वयः) ।

व्याख्या—सर्वे (निखिलाः) शैलाः (पर्वताः) च (पुनः) समुद्राः (अम्भोधयः) राजा (महाराजः) वरुणः (जलाधिष्ठातृदेवः) एव (अपि) च द्यौः (आकाशम्) अन्तरिक्षम् (अन्तरिक्षलोकः) पृथिवी (भूः) स-चराचरः (स्थावरजङ्गमादिसहितः) वायुः (वायुदेवः) च त्वाम् पान्तु वनमाश्रितम् ।

व्युत्पत्तिः—चराश्च अचराश्च तैः सहितः सचराचरः (तत्पुरु० गर्भः) । प्रचेता वरुणः पाशी यादसांपतिरप्पतिः, इत्यमरः ।

संस्कृतार्थः—हे पुत्र ! सर्वे समुद्राः, पर्वताः, राजा वरुणः, वायुदेवताः, आकाशम्, अन्तरिक्षलोकः, भूलोकः किमुत सर्वे चराचराः वनमाश्रितम् त्वाम् रक्षन्तु ।

वाच्यान्तरम्—सर्वैः शैलैः समुद्रैः राज्ञा वरुणेन…वायुना (त्वं पीयस्व) ।

भावार्थः—हे पुत्र ! सभी पर्वत, समुद्र, राजा वरुण, भूलोक, अन्तरिक्षलोक आदि, वायुदेव तथा समस्त चर अचर जंगल में तुम्हारी रक्षा करें ॥ १३ ॥

नक्षत्राणि च सर्वाणि ग्रहाश्च सह दैवतैः ।
अहोरात्रे तथा सन्ध्ये पान्तु त्वां वनमाश्रितम् ॥ १४ ॥

पदच्छेदः—नक्षत्राणि, च, सर्वाणि, ग्रहाः, च, सह, दैवतैः, अहोरात्रे, तथा, सन्ध्ये, पान्तु, त्वाम्, वनम्, आश्रितम् ।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अन्वयः—सर्वाणि, च, नक्षत्राणि, दैवतैः, च, सह, ग्रहाः, अहोरात्रे, तथा, सन्ध्ये, वनम्, आश्रितम्, त्वाम्, पान्तु ।

व्याख्या—सर्वाणि (निखिलानि) नक्षत्राणि (रेवत्यादिनक्षत्राणि) दैवतैः (स्वस्वाधिष्ठातृदेवैः) सह च, ग्रहाः (सूर्यादयः) अहोरात्रे (दिननिशे) तथा सन्ध्ये (द्वे) वनम् (काननम्) आश्रितम् (अधिष्ठितम्) त्वाम् (रामम्) पान्तु (रक्षन्तु) ।

व्युत्पत्तिः—अहश्च रात्रिश्चेति द्वन्द्वः ।

संस्कृतार्थः—हे पुत्र ! सर्वाणि नक्षत्राणि, तद्देवताः, ग्रहाः, अहोरात्रे, द्वे सन्ध्ये च वने त्वाम् रक्षन्तु ।

वाच्यान्तरम्—सर्वैः नक्षत्रैः ग्रहैः...सन्ध्याभ्यां त्वम् पीयस्व ।

भावार्थः—हे पुत्र ! सभी नक्षत्र, उनके देवता, ग्रहगण, रात व दिन, दोनों सन्ध्यायें बन में तुम्हारी रक्षा करें ॥१४॥

ऋतवश्चापि षट् चान्ये मासाः संवत्सरास्तथा ।
कलाश्च काष्ठाश्च तथा तव शर्म दिशन्तु ते ॥ १५ ॥

पदच्छेदः—ऋतवः, च, अपि, षट्, च, अन्ये, मासाः, संवत्सराः, तथा, कलाः, च, काष्ठाः, च, तथा, तव, शर्म, दिशन्तु, ते ।

अन्वयः—षट्, अपि, च, ऋतवः, अन्ये, मासाः, तथा, संवत्सराः, कलाः, च, तथा, काष्ठाः, च, ते सर्वे, तव, शर्म, दिशन्तु ।

व्याख्या—षट् (षट्संख्याकाः) अपि च ऋतवः (हेमन्तादयः) अन्ये (अपरे) मासाः (चैत्रादयः) तथा संवत्सराः (विकार्यादयः) कलाः (चतुष्पष्टिसंख्याकाः) च (पुनः) तथा काष्ठाः (दिशः) च ते (पूर्वोक्ताः सर्वे) तव (रामस्य) शर्म (कल्याणम्) दिशन्तु (ददतु) ।

व्युत्पत्तिः—दिशस्तु ककुभः काष्ठा इति कोशः ।

संस्कृतार्थः—हे राम ! सर्वे ऋतवः, मासाः, वत्सराः, कलाः, दिशश्च तव कल्याणं कुर्वन्तु ।

वाच्यान्तरम्—षड्भिः ऋतुभिः···काष्ठाभिः तव शर्म दिश्यताम् ।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

भावार्थः—हे राम ! सभी ऋतु, मास, वर्ष, कला तथा दिशाएँ तुम्हारा कल्याण करें ॥ १५ ॥

महावनेऽपि चरतो मुनिवेषस्य धीमतः ।
तथा देवाश्च दैत्याश्च भवन्तु सुखदाः सदा ॥ १६ ॥

पदच्छेदः—महावने, अपि, चरतः, मुनिवेषस्य, धीमतः, तथा, देवाः, च, दैत्याः, च, भवन्तु, सुखदाः, सदा ।

अन्वयः—महावने, अपि, चरतः, मुनिवेषस्य, धीमतः, (तव) देवाः, च, तथा, दैत्याः, च, सदा, सुखदाः, भवन्तु ।

व्याख्या—महावने (महाकानने) अपि चरतः (विचरतः) मुनिवेषस्य (मुनिवेषधारिणः) धीमतः (बुद्धिमतः) तव देवाः (त्रिदशाः) च (पुनः) तथा दैत्याः (दितिजाः) च सदा (सर्वदा) सुखदाः (कल्याणप्रदाः) भवन्तु (सन्तु) ।

व्युत्पत्तिः—महत् वनम् महावनं तस्मिन् (कर्मधा०) । मुनेः वेषः इव वेषो यस्य तस्य । धीः अस्ति अस्येति धीमान् तस्य । सुखं ददति इति सुखदाः ।

संस्कृतार्थः—हे राम ! मुनिवेषस्य बुद्धिमतः काननचारिणः ते सर्वे देवा दैत्याश्च सुखकारका भवन्तु ।

वाच्यान्तरम्—सर्वैः देवैः दैत्यैः च सुखदैः भूयताम् ।

भावार्थः—हे राम ! मुनि का वेष धारणकर वन में विचरने वाले तुम्हारे सभी देवगण तथा दैत्य लोग सुखदायक हों ॥ १६ ॥

राक्षसानाम् पिशाचानां रौद्राणां क्रूरकर्मणाम् ।
क्रव्यादानां च सर्वेषाम् माभूत् पुत्रक ! ते भयम् ॥ १७ ॥

पदच्छेदः—राक्षसानाम्, पिशाचानाम्, रौद्राणाम्, क्रूरकर्मणाम्, क्रव्यादानाम्, च, सर्वेषाम्, माभूत्, पुत्रक, ते, भयम् ।

अन्वयः—हे पुत्रक !, सर्वेषाम्, राक्षसानाम्, रौद्राणाम्, पिशाचानाम्, क्रूरकर्मणाम्, क्रव्यादानाम्, च, ते, भयम्, माभूत् ।

व्याख्या—हे पुत्रक ! (हे सुत !) सर्वेषाम् (समेषाम्) राक्षसानाम् (निशाचराणाम्) रौद्राणाम् (भयङ्कराणाम्) पिशाचानाम् क्रूरकर्मणाम् (नृशंसकृत्या-

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

नाम्) क्रव्यादानाम् (असृपाणाम्) च (पुनः) ते (तव) भयम् (भीतिः) माभूत् (न भूयात्)

व्युत्पत्तिः—क्रूरं कर्म येषां तेषाम् (बहु०) । क्रव्यम् अपक्वमांसं अदन्तीति क्रव्यादाः तेषाम् ।

संस्कृतार्थः—हे पुत्र ! सर्वेषाम् राक्षसपिशाचक्रव्यादानाम् ते भयम् माभूत् ।

वाच्यान्तरम्—सर्वेषाम् पिशाचानाम्'''भयेन मा भूयताम् ।

भावार्थः—हे पुत्र ! सभी राक्षस पिशाच आदि का भय तुम्हें न हो ॥१७॥

प्लवगा वृश्चिका दंशा मशकाश्चैव कानने ।
सरीसृपाश्च कीटाश्च माभूवन् गहने तव ॥१८॥

पदच्छेदः—प्लवगाः, वृश्चिकाः, दंशाः, मशकाः, च, एव, कानने, सरीसृपाः, च, कीटाः, च, माभूवन्, गहने, तव ।

अन्वयः—हे पुत्र !, प्लवगाः, वृश्चिकाः, दंशाः, मशकाः, च, एव, सरीसृपाः, च, कीटाः, च, कानने, तव, गहने, माभूवन् ।

व्याख्या—हे पुत्र !, प्लवगाः (वानराः) वृश्चिकाः (दंशकजन्तुविशेषाः) मशकाः च एव (पुनः) सरीसृपाः (सर्पाः) च (पुनः) कीटाः (कृमयः) दंशाः (वनमक्षिकाः) न, कानने (वने) तव (रामस्य) गहने (दुःखे) माभूवन् (मा भवन्तु) अर्थात् सुखदाः स्युः ।

व्युत्पत्तिः—प्लवं गच्छन्तीति प्लवगाः ।

संस्कृतार्थः—हे पुत्र ! वानराः सर्पादयो दंशकाः मशकाः च कानने तव दुःखदा न स्युः ।

वाच्यान्तरम्—वानरैः वृश्चिकैः सरीसृपैः मशकैः च तव गहने मा भूयताम् ।

भावार्थः—हे पुत्र ! बानर, बिच्छू, सर्प, मच्छर, तथा, दंश इत्यादि काटने वाले जानवर तुम्हें वन में दुःख न दें ॥१८॥

महाद्विपाश्च सिंहाश्च व्याघ्रा ऋक्षाश्च दंष्ट्रिणः ।
महिषाः शृङ्गिणो रौद्रा न ते द्रुह्यन्तु पुत्रक ! ॥१९॥

पदच्छेदः—महाद्विपाः, च, सिंहाः, च, व्याघ्राः, ऋक्षाः, च, दंष्ट्रिणः, महिषाः, शृङ्गिणः, रौद्राः, न, ते, द्रुह्यन्तु, पुत्रक ।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अन्वयः—हे पुत्रक !, महाद्विपाः, च, सिंहाः, च, व्याघ्राः, ऋक्षाः, च, दंष्ट्रिणः, महिषाः, रौद्राः, शृङ्गिणः, च, ते, न, द्रुह्यन्तु ।

व्याख्या—हे पुत्रक ! (हे सुत !) महाद्विपाः (महाव्याघ्राः) सिंहाः (शार्दूलाः) च व्याघ्राः (लघुजातीयाः) ऋक्षाः (भल्लूकाः) च (पुनः) दंष्ट्रिणः (दन्तावलाः सूकरादयो वा) महिषाः (वन्यमहिषाः) रौद्राः (भयङ्कराः) शृङ्गिणः (हरिणादयः) च (पुनः) ते (तुभ्यम्) न, द्रुह्यन्तु (द्रोहं कुर्वन्तु)।

व्युत्पत्तिः—महान्तः द्विपाः (कर्मधा०) । ते इति चतुर्थ्यन्तम् (क्रुधद्रुहेति)। सिंहो मृगेन्द्रः पञ्चास्यः, इत्यमरः ।

संस्कृतार्थः—हे पुत्र ! व्याघ्रादयः, ऋक्षाः, महिषाः सूकरादयश्च त्वां रक्षन्तु।

वाच्यान्तरम्—महाद्विपैः व्याघ्रैः········महिषैः ते न द्रुह्यताम् ।

भावार्थः—हे पुत्र ! बाघ, शेर, सूकर, भालू, भैंसे आदि भयङ्कर जङ्गली जानवर तुमसे द्वेष न करें, अर्थात् तुम्हें कष्ट न दें ॥१९॥

नृमांसभोजना रौद्रा ये चाऽन्ये सर्वजातियाः ।
मा च त्वां हिंसिषुः पुत्र ! मया सम्पूजितास्त्विह॥२०॥

पदच्छेदः—नृमांसभोजनाः, रौद्राः, ये, च, अन्ये, सर्वजातियाः, मा, च, त्वाम्, हिंसिषुः, पुत्र, मया, सम्पूजिताः, तु, इह ।

अन्वयः—हे पुत्र !; ये, नृमांसभोजनाः, रौद्राः, अन्ये, च, सर्वजातियाः, इह, मया, सम्पूजिताः, तु, त्वाम्, मा, हिंसिषुः ।

व्याख्या - हे पुत्र ! (हे सुत !) ये (जन्तुविशेषाः) नृमांसभोजनाः (मनुष्यमांसाशनाः) रौद्राः (भयङ्कराः) अन्ये (अपरे) च सर्वजातियाः (सर्वजातीयाः) ते (सर्वे) इह (अत्र) मया (कौशल्यया) सम्पूजिताः (आराधिताः) तु त्वाम् (रामम्) मा हिंसिषुः (न घ्नन्तु) ।

व्युत्पत्तिः—नृणां मांसं भुञ्जते इति नृमांसभोजनाः (तत्पु०) । सर्वासु जातिषु भवन्तीति सर्वजातियाः ।

संस्कृतार्थः—हे पुत्र ! ये अन्ये मनुष्यमांसखादका जन्तवः ते सर्वे मया आराधिताः त्वां न हन्युः ।

वाच्यान्तरम्—नृमांसभोजनैः सर्वजातियैः त्वम् मा हिंस्यस्व ।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

भावार्थः—हे पुत्र ! मनुष्यों के ही मांस खानेवाले तथा अन्य प्रकार के जो जन्तु हैं वे हमसे पूजित होकर तुमसे विरोध न करें ॥ २० ॥

आगमास्ते शिवाः सन्तु सिध्यन्तु च पराक्रमाः ।
सर्वसम्पत्तयो राम ! स्वस्तिमान् गच्छ पुत्रक ! ॥२१॥

पदच्छेदः—आगमाः, ते, शिवाः, सन्तु, सिध्यन्तु, च, पराक्रमाः, सर्वसम्पत्तयः, राम, स्वस्तिमान्, गच्छ, पुत्रक ।

अन्वयः—हे पुत्रक !, ते, आगमाः, शिवाः, सन्तु, पराक्रमाः, च, सर्वसम्पत्तयः, सिध्यन्तु, हे राम !, स्वस्तिमान्, गच्छ ।

व्याख्या—हे पुत्रक ! (हे पुत्र !) ते (तव) आगमाः (मार्गाः) शिवाः (कल्याणाः) सन्तु (जायन्ताम्) पराक्रमाः (पुरुषार्थाः) च (पुनः) सर्वसम्पत्तयः (सर्वसमृद्धयः, वनवासापेक्षिताः फलमूलादिरूपाः) सिध्यन्तु (सम्पद्यन्ताम्) हे राम ! (हे रामचन्द्र !) स्वस्तिमान् (कल्याणवान्) गच्छ (व्रज) ।

व्युत्पत्तिः—सर्वाः सम्पत्तयः (कर्मधा०) । आ समन्तात् गम्यते एषु इति आगमाः ।

संस्कृतार्थः— हे राम ! तव मार्गाः कल्याणकराः सन्तु । पराक्रमाः फलमूलादिसम्पत्तयः च सिध्यन्तु, त्वं कल्याणवान् वनं व्रज ।

वाच्यान्तरम्—ते आगमैः शिवैः भूयताम् , पराक्रमैः सिध्यताम्'''स्वस्तिमता वनं गम्यताम् ।

भावार्थः—हे रामचन्द्र ! तुम्हारे जाने के रास्ते कल्याणकर हों, पराक्रम तथा सम्पत्तियाँ सिद्ध हों, तुम कल्याणयुक्त वन को जाओ ॥ २१ ॥

स्वस्ति तेऽस्त्वान्तरिक्षेभ्यः पार्थिवेभ्यः पुनः पुनः ।
सर्वेभ्यश्चैव देवेभ्यो ये च ते परिपन्थिनः ॥ २२ ॥

पदच्छेदः—स्वस्ति, ते, अस्तु, आन्तरिक्षेभ्यः, पार्थिवेभ्यः, पुनः, पुनः, सर्वेभ्यः, च, एव, देवेभ्यः, ये, च, ते, परिपन्थिनः ।

अन्वयः—ते, आन्तरिक्षेभ्यः, स्वस्ति, अस्तु, पुनः सर्वेभ्यः, पार्थिवेभ्यः, पुनः, च, एव, ये च, ते, परिपन्थिनः (तेभ्यः) सर्वेभ्यः देवेभ्यः (स्वस्ति) ।

व्याख्या—ते (तुभ्यम्) आन्तरिक्षेभ्यः (अन्तरिक्षलोकवासिभ्यः) स्वस्ति

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

(कल्याणम्) अस्तु (जायताम्) पुनः (भूयः) सर्वेभ्यः (निखिलेभ्यः) पार्थिवेभ्यः (पृथ्वीनिवासिभ्यः) पुनः च (भूयः च) एव (अपि) ये च (अन्ये) ते (तव) परिपन्थिनः (बाधकाः) तेभ्यः सर्वेभ्यः देवेभ्यः (त्रिदशेभ्यः) स्वस्ति ।

व्युत्पत्तिः—अन्तरिक्षे भवाः आन्तरिक्षाः तेभ्यः । स्वस्तियोगे "नमः स्वस्ति" इति चतुर्थी ।

संस्कृतार्थः—हे राम ! अन्तरिक्षलोकभवेभ्यः, पार्थिवेभ्यः, अन्येभ्यश्च देवेभ्यः स्वस्ति अस्तु, ते स्वस्ति अस्तु, ते स्वस्ति दिशन्तु ।

वाच्यान्तरम्—आन्तरिक्षेभ्यः···स्वस्ति भूयताम् ।

भावार्थः—हे राम ! सभी अन्तरिक्षलोक वासी, पृथ्वीवासी तथा जो तुम्हारे विरोधी देव हों सबके लिये स्वस्ति हो ॥ २२ ॥

शुक्रः सोमश्च सूर्यश्च धनदोऽथ यमस्तथा ।
पान्तु त्वामर्चिता राम ! दण्डकारण्यवासिनम् ॥ २३ ॥

पदच्छेदः—शुक्रः, सोमः, च, सूर्यः, च, धनदः, अथ, यमः, तथा, पान्तु, त्वाम्, अर्चिताः, राम, दण्डकारण्यवासिनम् ।

अन्वयः—हे राम !, शुक्रः, सोमः, च, सूर्यः, च, तथा, धनदः, अथ, अर्चिताः, दण्डकारण्यवासिनम् , त्वाम् , पान्तु ।

व्याख्या—हे राम ! (हे रामचन्द्रः !) शुक्रः (भार्गवः) सोमः (चन्द्रः) च (पुनः) सूर्यः (रविः) अथ (अनन्तरम्) एते सर्वे अर्चिताः (मया पूजिताः) दण्डकारण्यवासिनम् (दण्डकवननिवासिनम्) त्वाम् (रामम्) पान्तु (रक्षन्तु) ।

व्युत्पत्तिः—दण्डक इति अरण्यं तत्र वसति इति दण्डकारण्यवासी तम् ।

संस्कृतार्थः—हे राम ! शुक्रसूर्यादयः सर्वे ग्रहाः मया पूजिताः त्वाम् दण्डकवने रक्षन्तु ।

वाच्यान्तरम्—शुक्रेण सोमेन सूर्येण अर्चितैः त्वम् पीयस्व ।

भावार्थः—हे राम ! शुक्र सूर्यादि ग्रहगण हमसे पूजित होकर दण्डकवन में तुम्हारी रक्षा करें ॥ २३ ॥

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अग्निर्वायुस्तथा धूमो मन्त्राश्चर्षिमुखच्युताः ।
उपस्पर्शनकाले तु पान्तु त्वां रघुनन्दन ! ॥ २४ ॥

पदच्छेदः—अग्निः, वायुः, तथा, धूमः, मन्त्राः, च, ऋषिमुखच्युताः, उपस्पर्शनकाले, तु, पान्तु, त्वाम् , रघुनन्दन ।

अन्वयः—हे रघुनन्दन !, अग्निः, वायुः, तथा, धूमः, ऋषिमुखच्युताः, मन्त्राः, च, उपस्पर्शनकाले, त्वाम् , पान्तु ।

व्याख्या—हे रघुनन्दन ! (हे रघूत्तम !) अग्निः (वैश्वानरः) वायुः (मरुत्) तथा धूमः (आहुतिजः) ऋषिमुखच्युताः (ऋषिमुखनिर्गताः त्वया गृहीताश्च) मन्त्राः (वेदमन्त्राः) च उपस्पर्शनकाले (उचितवेलायाम्) त्वाम् (रामम्) पान्तु (रक्षन्तु) ।

व्युत्पत्तिः—रघून् नन्दयतीति तत्सम्बुद्धौ । ऋषीणां मुखानि तेभ्यः च्युताः । उपस्पर्शनस्य कालः तस्मिन् । सर्वत्र तत्पु० ।

संस्कृतार्थः—हे राम ! अग्निवायुधूमाः वैदिकाः मन्त्राश्च उचिते काले त्वाम् रक्षन्तु ।

वाच्यान्तरम्—अग्निना, वायुना, धूमेन, मन्त्रैः···त्वम् पीयस्व ।
भावार्थः—हे राम ! अग्नि, वायु, धूम तथा मन्त्र तुम्हारी रक्षा करें ॥२४॥

सर्वलोकप्रभुर्ब्रह्मा भूतकर्तृ तथर्षयः ।
ये च शेषाः सुरास्ते तु रक्षन्तु वनवासिनम् ॥२५॥

पदच्छेदः—सर्वलोकप्रभुः, ब्रह्मा, भूतकर्तृ, तथा, ऋषयः, ये, च, शेषाः, सुराः, ते, तु, रक्षन्तु, वनवासिनम् ।

अन्वयः—सर्वलोकप्रभुः, ब्रह्मा, भूतकर्तृ, तथा, ऋषयः, ये, च, शेषाः, सुराः, ते, तु, वनवासिनम् , त्वाम् , रक्षन्तु ।

व्याख्या—सर्वलोकप्रभुः (निखिलभुवनकर्त्ता) ब्रह्मा (विधाता) भूतकर्तृ (जगत्कारणं ब्रह्म) तथा ऋषयः (ऋषिगणाः) ये च (अपरे) शेषाः (अवशिष्टाः) सुराः (देवाः) ते (सर्वे) तु (अपि) वनवासिनम् (काननिवासिनम्) त्वाम् (रामम्) रक्षन्तु (पान्तु) ।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

व्युत्पत्ति:—सर्वे च ते लोकाः तेषाम् प्रभुः (कर्मधा०गर्भः तत्पु०)। भूतानां कर्तृ (ष० त०)। वने वसतीति शीलः तम् (तत्पु०)।

संस्कृतार्थ:—हे राम ! समस्तलोकपालः ब्रह्मा, जगत्कारणं ब्रह्म, शेषा देवाः ऋषयः च त्वाम् रक्षन्तु।

वाच्यान्तरम्—सर्वलोकप्रभुणा ब्रह्मणा'''सुरैः त्वं रक्ष्यस्व।

भावार्थ:—सम्पूर्णलोकेश्वर ब्रह्माजी तथा जगत्कारण ब्रह्म, ऋषिगण तथा बोलने में भूल से छूटे हुए जो देवगण वे तुम्हारी रक्षा करें ॥२५॥

इति माल्यैः सुरगणान् गन्धैश्चापि यशस्विनी।
स्तुतिभिश्चानुरूपाभिरानर्चायतलोचना ॥२६॥

पदच्छेद:—इति, माल्यैः, सुरगणान्, गन्धैः, च, अपि, यशस्विनी, स्तुतिभिः, च, अनुरूपाभिः, आनर्च, आयतलोचना।

अन्वय:—इति, आयतलोचना, यशस्विनी, माल्यैः, गन्धैः, अनुरूपाभिः, स्तुतिभिः, च, अपि, सुरगणान्, आनर्च।

व्याख्या—इति (पूर्वोक्तप्रकारेण) आयतलोचना (विशालनेत्रा) यशस्विनी (कीर्तिमती) माता कौशल्या माल्यैः (मालाभिः) गन्धै (चन्दनादिभिः) अनुरूपाभिः (अनुकूलाभिः) स्तुतिभिः (स्तवैः) च (पुनः) अपि सुरगणान् (देवगणान्) आनर्च (अर्चयामास)।

व्युत्पत्ति:—आयते लोचने यस्याः सा (बहु०)। अनुगतं रूपं यासां ताभिः। सुराणां गणाः सुरगणाः तान् (ष० त०)।

संस्कृतार्थ:—विशालनेत्रा कीर्तिमती माता कौशल्या गन्धमालादिभिः देवान् पूजयामास।

वाच्यान्तरम्—आयतलोचनया यशस्विन्या सुरगणाः पुपूजिरे।

भावार्थ:—माता कौशल्या ने गन्धपुष्प आदि से देवों की पूजा की ॥२६॥

ज्वलनं समुपादाय ब्राह्मणेन महात्मना।
हावयामास विधिना राममङ्गलकारणात् ॥२७॥

पदच्छेद:—ज्वलनम्, समुपादाय, ब्राह्मणेन, महात्मना, हावयामास, विधिना, राममङ्गलकारणात्।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अन्वयः—राममङ्गलकारणात्, ज्वलनम्, समुपादाय, महात्मना, ब्राह्मणेन, विधिना, हावयामास ।

व्याख्या—राममङ्गलकारणात् (रामस्य मङ्गलाय) ज्वलनम् (वह्निम्) समुपादाय (आदाय) महात्मना (साधुना) ब्राह्मणेन (विदुषा द्विजेन) विधिना (विधिपूर्वकम्) हावयामास (हवनं कारयामास) ।

व्युत्पत्तिः—रामस्य मङ्गलमेव कारणम् तस्मात् (तत्पु०) । महान् आत्मा यस्य तेन (बहु०) ।

संस्कृतार्थः—माता कौशल्या रामस्य मङ्गलाय अग्निमादाय महात्मना विप्रेण हवनं कारयामास ।

वाच्यान्तरम्—राममङ्गल···ब्राह्मणेन हावयामासे ।

भावार्थः—माता कौशल्या ने राम के मङ्गल के लिए उत्तम ब्राह्मण से हवन कराया ॥ २७ ॥

घृतं श्वेतानि माल्यानि समिधश्चैव सर्षपान् ।
उपसम्पादयामास कौसल्या परमाङ्गना ॥२८॥

पदच्छेदः—घृतम्, श्वेतानि, माल्यानि, समिधः, च, एव, सर्षपान्, उपसम्पादयामास, कौसल्या, परमाङ्गना ।

अन्वयः—परमाङ्गना, कौसल्या, घृतम्, श्वेतानि, माल्यानि, समिधः, सर्षपान्, च, एव, उपसम्पादयामास ।

व्याख्या—परमाङ्गना (उत्तमस्त्री) कौसल्या (तन्नाम्नी) घृतम् (आज्यम्) श्वेतानि (शुभ्राणि) माल्यानि (स्रजः) समिधः (पलाशाम्रादिकाष्ठम्) सर्षपान् च (पुनः) एव (अपि) उपसम्पादयामास (होमाय एकत्रयामास) ।

व्युत्पत्तिः—परमा अङ्गना (कर्मधारयः) ।

संस्कृतार्थः—आदर्शमहिला कौसल्या हवनाय श्वेतमालाः समिधः, आज्यम्, सर्षपान् च, एकत्रीकारयामास ।

वाच्यान्तरम्—परमाङ्गनया कौसल्यया घृतम्···उपसम्पादयामासे ।

भावार्थः—नारीशिरोमणि माता कौशल्या ने हवन के लिए सफेद माला, सरसो, घी, पलाशादि सामग्री इकट्ठा किया ॥ २८ ॥

४

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

उपाध्यायः स विधिना हुत्वा शान्तिमनामयम् ।
हुतहव्यावशेषेण बाह्यं बलिमकल्पयत् ॥२९॥

पदच्छेदः—उपाध्यायः, सः, विधिना, हुत्वा, शान्तिम्, अनामयम्, हुतहव्यावशेषेण, बाह्यम्, बलिम्, अकल्पयत् ।

अन्वयः—सः, उपाध्यायः, विधिना, अनामयम्, शान्तिम्, हुत्वा, हुतहव्यावशेषेण, बाह्यम्, बलिम्, अकल्पयत् ।

व्याख्या—सः (रामकुलमान्यः) उपाध्यायः (हवनकर्त्ता) विधिना (विधिपूर्वकम्) अनामयम् (आरोग्यम्) शान्तिम् हुत्वा (हवनं कृत्वा) हुतहव्यावशेषेण (शिष्टहवनीयद्रव्येण) बाह्यम् (होमस्थानाद् बहिर्भूतम्) बलिम् (लोकपालबलिम्) अकल्पयत् (कल्पयामास) ।

व्युत्पत्तिः—हुतहव्यस्याऽवशेषः तेन (ष० त०) ।

संस्कृतार्थः—हवनकर्त्ता ब्राह्मणः विधिपूर्वकम् आरोग्याय हुत्वा शिष्टेन हवनीयद्रव्येण लोकपालादिबलिम् चकार ।

वाच्यान्तरम्—तेन उपाध्यायेन······बलिः अकल्पि ।

भावार्थः—हवन करनेवाले उपाध्याय महाशय ने आरोग्य हवन को करने के बाद बची हुई सामग्री से लोकपाल क्षेत्रपालादि की बलि अर्पित की ॥२९॥

मधुदध्यक्षतघृतैः स्वस्तिवाच्यं द्विजाँस्ततः ।
वाचयामास रामस्य वने स्वस्त्ययनक्रियाम् ॥३०॥

पदच्छेदः—मधुदध्यक्षतघृतैः, स्वतिवाच्यम्, द्विजान्, ततः, वाचयामास, रामस्य, वने, स्वस्त्ययनक्रियाम् ।

अन्वयः—ततः, स्वस्तिवाच्यम्, मधुदध्यक्षतघृतैः, द्विजान्, रामस्य, वने, स्वस्त्ययनक्रियाम्, वाचयामास ।

व्याख्या—ततः (तदनन्तरम्) स्वस्तिवाच्यम् (स्वस्तिवाचनम्) उद्दिश्य मधुदध्यक्षतघृतैः (मधुदधिशुभाज्याक्षतैः) उपलक्षितान् द्विजान् (ब्राह्मणान्) कृत्वा रामस्य (रामचन्द्रस्य) वने (कानने) स्वस्त्ययनक्रियाम् (स्वस्ति अस्तु इति रूपाम्) वाचयामास (वादयामास) ।

व्युत्पत्तिः—स्वस्ति इति वाच्यम् स्वस्तिवाच्यम् । मधु च दधि च अक्षताश्च

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

घृतं च इति मधुदध्यक्षतघृतानि तैः (इतरेतरयोगः) । स्वस्त्ययनस्य क्रिया ताम् (ष० तत्पु०) ।

संस्कृतार्थः—तदनन्तरम् ब्राह्मणान् मध्वादिभिः पूजयित्वा कानने रामस्य भद्राय स्वस्तिवाचनं कारयामास ।

वाच्यान्तरम्—ततः'''''द्विजैः वने स्वस्त्ययनक्रिया वाचयामासे ।

भावार्थः—इसके बाद माता कौशल्या ने ब्राह्मणों को दधि घृत आदि से पूजा कर जङ्गल में राम सुखी रहें इस दृष्टि से स्वस्तिवाचन कराया ॥३०॥

ततस्तस्मै द्विजेन्द्राय राममाता यशस्विनी ।
दक्षिणाम् प्रददौ काम्यां राघवं चेदमब्रवीत् ॥३१॥

पदच्छेदः—ततः, तस्मै, द्विजेन्द्राय, राममाता, यशस्विनी, दक्षिणाम्, प्रददौ, काम्याम्, राघवम्; च, इदम्, अब्रवीत् ।

अन्वयः—ततः, यशस्विनी, राममाता, तस्मै, द्विजेन्द्राय, काम्याम्, दक्षिणाम्, प्रददौ, राघवम्, च, इदम्, अब्रवीत् ।

व्याख्या—ततः (तदनन्तरम्) यशस्विनी (कीर्त्तिमती) राममाता (कौशल्या) तस्मै (होमे) द्विजेन्द्राय (ब्राह्मणाय) काम्याम् (अभीष्टाम्) दक्षिणाम् (द्रव्यादिकम्) प्रददौ (अदात्) राघवम् (रामम्) च (पुनः) इदम् (एतत्) अब्रवीत् (उवाच) ।

व्युत्पत्तिः—रामस्य माता राममाता (ष०त०) । द्विजेषु इन्द्र इव (तत्पु०)।

संस्कृतार्थः—तदनन्तरम् कौशल्या ब्राह्मणं दक्षिणया सन्तोष्य राममुवाच ।

वाच्यान्तरम्—यशस्विन्या राममात्रा''''''राघव ऊचे ।

भावार्थः—इसके बाद माता कौशल्या ने ब्राह्मण को दक्षिणा देकर राम से कहा ॥३१॥

यन्मङ्गलं सहस्राक्षे सर्वदेवनमस्कृते ।
वृत्रनाशे समभवत् तत्ते भवतु मङ्गलम् ॥३२॥

पदच्छेदः—यत्, मङ्गलम्, सहस्राक्षे, सर्वदेवनमस्कृते, वृत्रनाशे, समभवत्, तत्, ते, भवतु, मङ्गलम् ।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अन्वय:--सर्वदेवनमस्कृते, सहस्राक्षे, वृत्रनाशे, यत्, मङ्गलम्, समभवत्, ते, तत्, मङ्गलं, भवतु।

व्याख्या--सर्वदेवनमस्कृते (निखिलसुरवन्दनीये) सहस्राक्षे (इन्द्रे) वृत्रनाशे (वृत्रासुरवधे) यत् (यादृशम्) मङ्गलम्, समभवत् (अभूत्) ते (रामस्य) तत् (तादृशम्) मङ्गलम् भवतु (जायताम्)।

व्युत्पत्ति:—सर्वे देवाः सर्वदेवाः तैः नमस्कृतः तस्मिन् (तत्पु०) ! सहस्रम् अक्षीणि यस्य तस्मिन्। वृत्रस्य नाशः तस्मिन् (ष० त०)।

संस्कृतार्थ:—हे राम ! वृत्रासुरवधे इन्द्रस्य यत् मङ्गलम् अभूत् तत् कानन-वासे तवापि स्यात्।

वाच्यान्तरम्—सर्वदेवनमस्कृते…येन मङ्गलेन अभावि तेन ते भूयताम्।

भावार्थ:—हे राम ! वृत्रासुर के मारने के समय देवाधिदेव इन्द्र के लिए जो मङ्गल हुआ था वही वनवास के समय तुम्हारे लिए हो ॥३२॥

यन्मङ्गलं सुपर्णस्य विनताकल्पयत् पुरा।
अमृतम् प्रार्थयानस्य तत्ते भवतु मङ्गलम् ॥ ३३ ॥

पदच्छेद:—यत्, मङ्गलम्, सुपर्णस्य, विनता, अकल्पयत्, पुरा, अमृतम्, प्रार्थयानस्य, तत्, ते, भवतु, मङ्गलम्।

अन्वय:—अमृतम्, प्रार्थयानस्य, सुपर्णस्य, विनता, यत्, मङ्गलम्, अकल्पयत्, तत्, ते, मङ्गलम्, भवतु।

व्याख्या—अमृतम् (सुधाम्) प्रार्थयानस्य (याचमानस्य) सुपर्णस्य (गरुडस्य) विनता (तन्माता) यत् (यादृशम्) मङ्गलम् (शिवम्) अकल्पयत् (कल्पयामास) तत् (तादृशम्) ते (तव) मङ्गलम् (भवतु) (जायताम्)।

व्युत्पत्ति:--प्रार्थयते इति प्रार्थयानः तस्य।

संस्कृतार्थ:--अमृताय प्रयत्नशीलस्य गरुडस्य कृते तन्माता विनता यत् मङ्गलम् कल्पयामास तत् ते मङ्गलम् भवतु।

वाच्यान्तरम्—अमृतम् प्रार्थयानस्य सुपर्णस्य विनतया……अकल्पि तेन ते मङ्गलेन भूयताम्।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

भावार्थः—कौशल्या ने कहा कि अमृत के लिए प्रार्थना करने को तत्पर गरुड़ के लिए विनता ने जो मंगल किया था वही जंगल में तुम्हारे लिए भी हो ॥ ३३ ॥

अमृतोत्पादने दैत्यान् घ्नतो वज्रधरस्य यत् ।
अदितिर्मङ्गलं प्रादात् तत्ते भवतु मङ्गलम् ॥ ३४ ॥

पदच्छेदः—अमृतोत्पादने, दैत्यान्, घ्नतः, वज्रधरस्य, यत्, अदितिः, मङ्गलम्, प्रादात्, तत्, ते, भवतु, मङ्गलम् ।

अन्वयः—अमृतोत्पादने, दैत्यान्, घ्नतः, वज्रधरस्य, अदितिः, यत्, मङ्गलम्, प्रादात्, तत्, ते, मङ्गलम्, भवतु ।

व्याख्या—अमृतोत्पादने (सुधोत्पत्तिकाले) दैत्यान् (दितिजान्) घ्नतः (नाशयतः) वज्रधरस्य (इन्द्रस्य) अदितिः यत् (यादृशम्) मङ्गलम् प्रादात् (ददौ) तत् (तादृशम्) ते (तव) मङ्गलम् भवतु (जायताम्) ।

व्युत्पत्तिः—अमृतस्य उत्पादनं तस्मिन् । वज्रस्य धरः तस्य (ष० त०) ।

संस्कृतार्थः—हे पुत्र ! अमृतोत्पत्तिकाले दैत्यान् नाशयते इन्द्राय अदितिः यत् मङ्गलम् कल्पितवती तत् तवापि काननेऽस्तु ।

वाच्यान्तरम्—अदित्या यदकल्पि तेन मङ्गलेन ते भूयताम् ।

भावार्थः—हे राम ! अमृत उत्पन्न करते समय वज्रपाणि इन्द्र के लिए अदिति ने जो मङ्गल किया था वही कानन में तुम्हारे लिए हो ॥ ३४ ॥

त्रिविक्रमान् प्रक्रमतो विष्णोरतुलतेजसः ।
यदासीत् मङ्गलं राम ! तत्ते भवतु मङ्गलम् ॥ ३५ ॥

पदच्छेदः—त्रिविक्रमान्, प्रक्रमतः, विष्णोः, अतुलतेजसः, यत्, आसीत्, मङ्गलम्, राम, तत्, ते, भवतु, मङ्गलम् ।

अन्वयः—हे राम !, त्रिविक्रमात्, प्रक्रमतः, अतुलतेजसः, विष्णोः, यत्, मङ्गलम्, आसीत्, तत्, ते, मङ्गलम्, भवतु ।

व्याख्या—हे राम ! (हे पुत्र !) त्रिविक्रमात् (पादविक्षेपत्रयीम्) प्रक्रमतः (सम्पादयतः) अतुलतेजसः (निरुपमपराक्रमस्य) विष्णोः (भगवतः) यत् (यादृक्) मङ्गलम् आसीत् (अभूत्) तत् (तादृशम्) ते (तव) मङ्गलम् भवतु (जायताम्) ।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

व्युत्पत्तिः—त्रयः विक्रमाः तान् । अतुलं तेजो यस्य तस्य (बहु०) ।

संस्कृतार्थः—हे राम ! बलिछलने भगवतो वामनस्य पादविक्षेपत्रयीसम्पादने यत् मङ्गलम् अभवत् कानने तवापि तद् भवेत् ।

वाच्यान्तरम्—हे राम ! त्रिविक्रमान् प्रक्रमतः विष्णोः येन मङ्गलेन अभावि तेन ते भूयताम् ।

भावार्थः—हे रामचन्द्र ! बलि के छलने के समय जो मङ्गल वामन भगवान् को हुआ था वह वन में तुम्हारे लिए भी हो ॥ ३५ ॥

ऋषयः सागरा द्वीपा वेदा लोका दिशश्च ताः ।
मङ्गलानि महाबाहो ! दिशन्तु शुभमङ्गलम् ॥ ३६ ॥

पदच्छेदः—ऋषयः, सागराः, द्वीपाः, वेदाः, लोकाः, दिशः, च, ताः, मङ्गलानि, महाबाहो, दिशन्तु, शुभमङ्गलम् ।

अन्वयः—हे महाबाहो !, ऋषयः, सागराः, द्वीपाः, वेदाः, लोकाः, ताः, दिशः, च, शुभमङ्गलम् , दिशन्तु ।

व्याख्या—हे महाबाहो ! (हे वीर !) ऋषयः (सर्वे महर्षयः) सागराः (समुद्राः) द्वीपाः (सप्त) वेदाः (ऋगादयः) लोकाः (त्रयः) ताः (सर्वाः) दिशः (काष्ठाः) च (पुनः) शुभमङ्गलम् (मङ्गलानामपि मङ्गलम्) दिशन्तु (ददतु) ।

व्युत्पत्तिः—महान्तौ बाहू यस्य तत्सम्बुद्धौ (बहु०) ।

संस्कृतार्थः—हे महावीर ! सर्वे ऋषयः समुद्राः द्वीपाः लोकाः दिशश्च ते सर्वोच्चम् मङ्गलम् प्रददतु ।

वाच्यान्तरम्—ऋषिभिः सागरैः द्वीपैः···काष्ठाभिः शुभमङ्गलम् दिश्यताम् ।

भावार्थः—हे पुत्र ! सभी ऋषि, समुद्र, द्वीप, वेद, लोक तथा दिशायें तुम्हें शुभमङ्गल प्रदान करें ॥ ३६ ॥

इति पुत्रस्य शेषाश्च कृत्वा शिरसि भामिनी ।
गन्धैश्चापि समालभ्य राममायतलोचना ॥ ३७ ॥

पदच्छेदः—इति, पुत्रस्य, शेषाः, च, कृत्वा, शिरसि, भामिनी, गन्धैः, च, अपि, समालभ्य, रामम् , आयतलोचना ।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अन्वयः—इति, आयतलोचना, भामिनी, पुत्रस्य, शिरसि, शेषाः, च, कृत्वा, गन्धैः, च, अपि, रामम् , समालभ्य (रक्षां चकार इत्युत्तरेणाऽन्वयः) ।

व्याख्या—इति (उक्त्वा) आयतलोचना (विशालनयना) भामिनी (कौशल्या) पुत्रस्य (रामस्य) शिरसि (मस्तके) शेषाः (अक्षतान्) च (पुनः) कृत्वा (विधाय) गन्धैः (चन्दनादिभिः) च अपि समालभ्य (विलेप्य) रक्षां चकार ।

व्युत्पत्तिः—आयते लोचने यस्याः सा (बहुव्रीहिः)। शेषा अक्षताः कतकोक्तेन ।

संस्कृतार्थः—विशालनेत्रा माता कौशल्या रामस्य मस्तके अक्षतादिकम् दत्त्वा गन्धादिना विलेप्य रक्षां चकार ।

वाच्यान्तरम्—आयतलोचनया भामिन्या···गन्धैः समालभ्य रक्षा चक्रे ।

भावार्थः—विशाल नेत्रों वाली कौशल्या ने राम के मस्तक पर अक्षत वगैरह देकर चन्दन से उनके मुँह में विलेप कर रक्षा किया ॥ ३७ ॥

औषधीं च सुसिद्धार्थां विशल्यकरणीं शुभाम् ।
चकार रक्षां कौसल्या मन्त्रैरभिजजाप च ॥ ३८ ॥

पदच्छेदः—औषधीम् , च, सुसिद्धार्थाम् , विशल्यकरणीम् , शुभाम्, चकार, रक्षाम् , कौसल्या, मन्त्रैः, अभिजजाप, च ।

अन्वयः—कौसल्या, सुसिद्धार्थाम् , शुभाम् , विशल्यकरणीम् , औषधीम्, च (गुलकीकृत्य) रक्षाम् , चकार, च, अभिजजाप ।

व्याख्या—कौसल्या (राममाता) सुसिद्धार्थाम् (इष्टवीर्याम्) शुभाम् (उत्तमाम्) विशल्यकरणीम् (तन्नामिकाम्) औषधीम् (ओषधिम्) च गुलकीकृत्य रक्षाम् (रक्षणम्) चकार (अकार्षीत्) मन्त्रैः तां रक्षाम् अतिशयिताम् कर्त्तुम् अभिजजाप (अजपत्) च ।

व्युत्पत्तिः—सुसिद्धः अर्थः यस्याः सा ताम् (बहु०) । विशल्यः क्रियतेऽनया ताम् ।

संस्कृतार्थः—कौशल्या अमितवीर्याम् विशल्यकरणीम् औषधीम् गुलकीकृत्य रक्षां सम्पाद्य मन्त्रैः अपि जपं कृत्वा तां तेजयामास ।

वाच्यान्तरम्—कौशल्यया···रक्षा चक्रे ।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

भावार्थः—माता कौशल्या ने ख्यातविक्रमा विशल्यकरणी नाम की औषधी की गोली बनाकर रक्षा किया। साथही मन्त्र भी रक्षा के जपे ॥३८॥

उवाचापि प्रहृष्टेव सा दुःखवशवर्त्तिनी।
वाङ्मात्रेण न भावेन वाचा संसज्जमानया ॥ ३९ ॥

पदच्छेदः—उवाच, अपि, प्रहृष्टा, इव, सा, दुःखवशवर्त्तिनी, वाङ्मात्रेण, न, भावेन, वाचा, संसज्जमानया।

अन्वयः—दुःखवशवर्त्तिनी, सा, भावेन, प्रहृष्टा, इव, वाङ्मात्रेण, उवाच, अपि, संसज्जमानया, वाचा, न।

व्याख्या—दुःखवशवर्त्तिनी (मोहपरतन्त्रा) सा (कौसल्या) भावेन प्रहृष्टा (प्रसन्ना) इव (यथा) वाङ्मात्रेण (वचनमात्रेण) उवाच (अवादीत्) अपि संसज्जमानया (अन्तःखेदया) वाचा (वाण्या) न।

व्युत्पत्तिः—दुःखस्य वशे वर्त्तते या सा (तत्पु०)। वागेव वाङ्मात्रम् तेन।

संस्कृतार्थः—मोहपरतन्त्रा माता अन्तःखिन्ना अपि बहिः प्रसन्नतां व्यञ्जयन्ती वचः प्रोवाच।

वाच्यान्तरम्—दुःखवशवर्तिन्या··ऊचे।

भावार्थः—यद्यपि माता कौशल्या पुत्रमोह के कारण भीतर से दुःखी थीं परन्तु बाहर प्रसन्नता-सी व्यक्त करती हुई बोलीं ॥ ३९ ॥

आनम्य मूर्ध्नि चाघ्राय परिष्वज्य यशस्विनी।
अवदत् पुत्रमिष्टार्थो गच्छ राम! यथासुखम् ॥४०॥

पदच्छेदः—आनम्य, मूर्ध्नि, च, आघ्राय, परिष्वज्य, यशस्विनी, अवदत्, पुत्रम्, इष्टार्थः, गच्छ, राम, यथासुखम्।

अन्वयः—यशस्विनी, आनम्य, मूर्ध्नि, च, आघ्राय, परिष्वज्य, च, पुत्रम्, अवदत्, हे पुत्र!, इष्टार्थः, यथासुखम्, गच्छ।

व्याख्या—यशस्विनी (कीर्तिमती) माता कौशल्या आनम्य (ईषत् नत्वा) पुत्रस्य उच्चत्वात्, मूर्ध्नि (शिरसि) च आघ्राय (घ्रिघित्वा) परिष्वज्य (आलिङ्ग्य) च (पुनः) पुत्रम् (रामम्) अवदत् (अगादीत्) हे पुत्र! (हे सुत!) इष्टार्थः (अभीष्टार्थः) यथासुखम् (सुखमनतिक्रम्य) गच्छ (वनं व्रज)।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

व्युत्पत्तिः—इष्टमर्थयते इतीष्टार्थः । सुखमनतिक्रम्य यथासुखम् (अव्ययीभावः) ।

संस्कृतार्थः—माता कौशल्या ईषत् नत्वा पुत्रस्य शिरः शिंघित्वा तमालिङ्ग्य उवाच । हे पुत्र ! सानन्दम् वनं व्रज ।

वाच्यान्तरम्—यशस्विन्या···पुत्रः अवोचि, इष्टार्थेन यथासुखं गम्यताम् ।

भावार्थः—माता कौशल्या ने राम का शिर सूँघकर, आलिङ्गन कर कहा कि हे पुत्र ! सुखपूर्वक जङ्गल जाओ ॥ ४० ॥

अरोगं सर्वसिद्धार्थमयोध्यां पुनरागतम् ।
पश्यामि त्वां सुखं वत्स ! सन्धितं राजवर्त्मसु ॥ ४१ ॥

पदच्छेदः—अरोगम्, सर्वसिद्धार्थम्, अयोध्याम्, पुनः, आगतम्, पश्यामि, त्वाम्, सुखम्, वत्स, सन्धितम्, राजवर्त्मसु ।

अन्वयः—हे वत्स !, अरोगम्, सर्वसिद्धार्थम्, पुनः, अयोध्याम्, आगतम्, राजवर्त्मसु, सन्धितम्, त्वाम्, सुखम्, पश्यामि ।

व्याख्या—हे वत्स ! (हे पुत्र !) अरोगम् (नीरोगम्) सर्वसिद्धार्थम् (कृतकृत्यम्) पुनः (भूयः) अयोध्याम् (कोशलपुरीम्) आगतम् (प्रत्यागतम्) राजवर्त्मसु (राजपथेषु) सन्धितम् (प्राप्तराज्यम्) त्वाम् (रामम्) सुखम् (सानन्दम्) पश्यामि (अवलोकयिष्यामि) ।

व्युत्पत्तिः—नास्ति रोगो यस्य तम् (बहु०) । सर्वः सिद्धः अर्थो यस्य तम् (बहु०) । राज्ञां वर्त्मानि तेषु (ष० त०) ।

संस्कृतार्थ—हे पुत्र ! नीरोगं साधितार्थम् त्वाम् पुनः अयोध्याम् प्रत्यागतम् सानन्दम् द्रक्ष्यामि ।

वाच्यान्तरम्—अरोगः सर्वसिद्धार्थः···मया द्रक्ष्यसे ।

भावार्थः—हे पुत्र ! स्वस्थ, अपने लक्ष्य को पूर्ण किए हुए तुम्हें सानन्द अयोध्या वापस आने पर देखूँगी ॥ ४१ ॥

मङ्गलैरुपसम्पन्नो वनवासादिहागतः ।
वध्वाश्च मम नित्यं त्वं कामान् संवर्द्ध याहि भोः ॥४२॥

पदच्छेदः—मङ्गलैः, उपसम्पन्नः, वनवासात्, इह, आगतः, वध्वाः, च, मम, नित्यम्, त्वम्, कामान्, संवर्द्ध, याहि, भोः ।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अन्वयः—भोः !, मङ्गलैः, उपसम्पन्नः, बनवासात्, इह, आगतः, त्वम्, मम, वध्वाः, च, कामान्, संवर्द्ध, याहि।

व्याख्या—भोः पुत्र ! मङ्गलैः (राजोचितवस्त्राभरणैः) उपसम्पन्नः (युक्तः) वनवासात् (काननिवासात्) इह (अयोध्याम्) आगतः (प्रत्यागतः) त्वम् (रामः) मम (कौसल्यायाः) वध्वाः (सीतायाः) च कामान् (अभीष्टान्) संवर्द्ध (संवर्द्धय) याहि (गच्छ)।

व्युत्पत्तिः—वने वासः तस्मात् (तत्पुरुषः)। आर्षत्वात् संवर्द्ध इति।

संस्कृतार्थः—हे राम ! राजोचितवस्त्राभरणालङ्कृतः अयोध्यामागतः मातुः स्वपत्न्याः सीतायाः च सौभाग्यं वर्द्धयस्व। इदानीं याहि भोः।

वाच्यान्तरम्—इह आगतेन कामाः संवर्द्धयन्ताम्। त्वया पीयताम्।

भावार्थः—हे पुत्र ! जङ्गल से लौटकर राजवेष से युक्त हो हमारे तथा बहू सीता के अभीष्ट को बढ़ाना। इस समय जा सकते हो॥ ४२॥

मयार्चिता देवगणाः शिवादयो महर्षयो भूतगणाः सुरोरगाः।
अभिप्रयातस्य वनं चिराय ते हितानि काङ्क्षन्तु दिशश्च राघव!॥४३॥

पदच्छेदः—मया, अर्चिताः, देवगणाः, शिवादयः, महर्षयः, भूतगणाः, सुरोरगाः, अभिप्रयातस्य, वनम्, चिराय, ते, हितानि, काङ्क्षन्तु, दिशः, च, राघव।

अन्वयः—हे राघव !, मया, अर्चिताः, शिवादयः, देवगणाः, महर्षयः, भूतगणाः, सुरोरगाः, दिशः, च, वनम्, अभिप्रयातस्य, ते, चिराय, हितानि, काङ्क्षन्तु।

व्याख्या—हे राघव ! (हे राम !) मया (कौशल्यया) अर्चिताः (पूजिताः) शिवादयः (शिवप्रभृतयः) देवगणाः (देवसमूहाः) महर्षयः (महर्षिनिकराः) भूतगणाः (भूतसमूहाः) सुरोरगाः (देवसर्पादयः) दिशः (काष्ठाः) च (पुनः) वनम् (काननम्) अभिप्रयातस्य (प्रस्थितस्य) ते (तव) चिराय (बहुकालम्) हितानि (अभीष्टानि) काङ्क्षन्तु (अभिलषन्तु)।

व्युत्पत्तिः—शिवः आदिः येषां ते (बहु०)। देवानां गणाः, भूतानां गणाः (ष० त०)। महान्तः ऋषयः (कर्म०)। सुराश्च उरगाः (इतरेतरयोगः)।

संस्कृतार्थः—हे राम ! मया पूजिताः शिवादयः, भूताः, महर्षयः, सर्पादयः, दिशश्च वनं प्रस्थितस्य ते हितानि चिरं साधयन्तु।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

वाच्यान्तरम्—मया पूजितैः महर्षिभिः देवगणैः"'काष्ठाभिः ते चिरम् हितम् काङ्क्ष्यताम् ।

भावार्थः—हे राम ! मुझ से पूजित होकर शिवादि देव, भूत, महर्षिगण, सर्पादि तथा दिशायें बन जाते हुए तुम्हारा कल्याण करें ॥४३॥

अतीव चाश्रुप्रतिपूर्णलोचना समाप्य च स्वस्त्ययनं यथाविधि ।
प्रदक्षिणं चापि चकार राघवं पुनः पुनश्चापि निरीक्ष्य सस्वजे ॥४४॥

पदच्छेदः—अतीव, च, अश्रुप्रतिपूर्णलोचना, समाप्य, च, स्वस्त्ययनम्, यथाविधि, प्रदक्षिणम्, च, अपि, चकार, राघवम्, पुनः, पुनः, च, अपि, निरीक्ष्य, सस्वजे ।

अन्वयः—अतीव, च, अश्रुप्रतिपूर्णलोचना, यथाविधि, स्वस्त्ययनम्, समाप्य, प्रदक्षिणम्, अपि, चकार, राघवम्, अपि, च, पुनः, पुनः, निरीक्ष्य, सस्वजे ।

व्याख्या—अतीव (अत्यन्तम्) च अश्रुप्रतिपूर्णलोचना (अश्रुव्याप्तनयना) यथाविधि (विधिपूर्वकम्) स्वस्त्ययनम् (स्वस्तिवाचनम्) समाप्य (सम्पाद्य) प्रदक्षिणम् अपि रक्षार्थम् चकार (विदधे) राघवम् (रामम्) अपि च पुनः पुनः (भूयो भूयः) निरीक्ष्य (अवलोक्य) सस्वजे (आलिलिङ्ग) ।

व्युत्पत्तिः—अश्रुभिः प्रतिपूर्णे लोचने यस्याः सा (बहुव्री०) ।

संस्कृतार्थः—माता कौशल्या वाष्पपूर्णनेत्रा विधिपूर्वकम् स्वस्तिवाचनं सम्पाद्य प्रदक्षिणम् च विधाय भूयो भूयो राममवलोक्य आलिङ्गनं चकार ।

वाच्यान्तरम्—अश्रुप्रतिपूर्णलोचनया'''रामः सस्वजे ।

भावार्थः—माता कौसल्या आँखों में आँसू भरती हुई भी विधिपूर्वक स्वस्तिवाचन करा कर प्रदक्षिणा कर बार बार देखती हुई राम का आलिङ्गन करने लगी ॥४४॥

तया हि देव्या च कृतप्रदक्षिणो निपीड्य मातुश्चरणौ पुनः पुनः ।
जगाम सीतानिलयम् महायशाः स राघवः प्रज्वलितस्तया श्रिया ॥४५॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्येऽयोध्याकाण्डे पञ्चविंशतितमः सर्गः ॥२५॥

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

पदच्छेद:-तया, हि, देव्या, च, कृतप्रदक्षिणः, निपीड्य, मातुः, चरणौ, पुनः, पुनः, जगाम, सीतानिलयम्, महायशाः, सः, राघवः, प्रज्वलितः, तया, श्रिया।

अन्वयः—महायशाः, सः, राघवः, हि, तया, देव्या, च, कृतप्रदक्षिणः, तया, श्रिया, प्रज्वलितः, पुनः, पुनः, मातुः, चरणौ, निपीड्य, सीतानिलयम्, जगाम।

व्याख्या—महायशाः (अधिककीर्तिः) सः राघवः (रामचन्द्रः) हि (यतः) तया (पूर्वोक्तया) देव्या (कौशल्यया) च कृतप्रदक्षिणः (सम्पादितप्रदक्षिणः) तया (शास्त्रसम्पादितया) श्रिया (मङ्गलजशोभया) प्रज्वलितः (दीप्तः) पुनः पुनः (भूयो भूयः) मातुः (कौशल्यायाः) चरणौ (पादौ) निपीड्य (प्रणम्य) सीतानिलयम् (सीतागृहम्) जगाम (वव्राज)।

व्युत्पत्तिः—महत् यशो यस्य सः। कृता प्रदक्षिणा यस्य सः (बहुव्री०)। सीतायाः निलयः तम् (ष० तत्पु०)।

संस्कृतार्थः—महाकीर्त्तिः रामः मात्रा कृतप्रदक्षिणः मङ्गलजशोभया जाताधिकतेजाः मातरम् भूयोभूयः प्रणम्य सीतावासम् अगमत्।

वाच्यान्तरम्—महायशा तेन कृतप्रदक्षिणेन......सीतानिलयः जग्मे।

भावार्थः—महाकीर्त्ति रामचन्द्रजी माता द्वारा प्रदक्षिणान्त मङ्गल करने पर अधिक शोभावाले बन माता के चरणों में बार बार प्रणाम कर सीता जी के निवास पर गए ॥ ४५ ॥

इति वाल्मीकीये रामवनगमने आचार्यश्रीराजनारायणशास्त्रिशुक्ल-
रचितायां प्रभाटीकायां द्वितीयः सर्गः ॥२॥

अथ तृतीयः सर्गः।

अभिवाद्य तु कौसल्यां रामः सम्प्रस्थितो वनम्।
कृतस्वस्त्ययनो मात्रा धर्मिष्ठे वर्त्मनि स्थितः॥ १ ॥

पदच्छेद:—अभिवाद्य, तु, कौसल्याम्, रामः, सम्प्रस्थितः, वनम्, कृतस्वस्त्ययनः, मात्रा, धर्मिष्ठे, वर्त्मनि, स्थितः।

अन्वयः—मात्रा, कृतस्वस्त्ययनः, रामः, तु, कौसल्याम्, अभिवाद्य, धर्मिष्ठे, वर्त्मनि, स्थितः, वनम्, सम्प्रस्थितः।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

व्याख्या--मात्रा (जनन्या) कृतस्वस्त्ययनः (सम्पादितस्वस्तिवाचनः) रामः (रामचन्द्रः) तु कौसल्याम् (स्वमातरम्) अभिवाद्य (नमस्कृत्य) धर्मिष्ठे (अतिशयेन धर्मवति) वर्त्मनि (मार्गे) स्थितः (वर्त्तमानः) वनम् (काननम्) सम्प्रस्थितः (प्रातिष्ठत्) ।

व्युत्पत्तिः--कृतं स्वस्त्ययनं अस्य सः (बहुव्री०) ।

संस्कृतार्थः—मात्रा सम्पादितस्वस्तिवाचनः रामः ताम् प्रणम्य वनम् प्रास्थात् ।

वाच्यान्तरम्—कृतस्वस्त्ययनेन रामेण वनम् सम्प्रस्थितम् ।

भावार्थः—माता के द्वारा स्वस्तिवाचन समाप्त होने पर रामचन्द्रजी ने उन्हें प्रणाम कर अतीव धार्मिक मार्ग पर स्थित हो जङ्गल के लिए प्रस्थान किया ॥१॥

विराजयन् राजसुतो राजमार्गं नरैर्वृतम् ।
हृदयान्याममन्थेव जनस्य गुणवत्तया ॥ २ ॥

पदच्छेदः—विराजयन्, राजसुतः, राजमार्गम्, नरैः, वृतम्, हृदयानि, आममन्थ, इव, जनस्य, गुणवत्तया ।

अन्वयः–राजसुतः, नरैः, वृतम्, राजमार्गम्, विराजयन्, गुणवत्तया, जनस्य, हृदयानि, आममन्थ, इव ।

व्याख्या—राजसुतः (राजपुत्रः रामः) नरैः (जनैः) वृतम् (सङ्कीर्णम्) राजमार्गम् (सरकम्) विराजयन् (शोभयन्) गुणवत्तया (प्रशस्तगुणवत्त्वेन) जनस्य (लोकस्य) हृदयानि (चेतांसि) आममन्थ (क्षोभयामास) इव (यथा) ।

व्युत्पत्तिः—राज्ञः सुतः । राज्ञः मार्गम् (उभयत्र तत्पु०) ।

संस्कृतार्थः—राजपुत्रो रामः लोकाच्छन्नं राजमार्गम् शोभयन् लोकोत्तरगुणतया जनानाम् हृदयम् क्षोभयतिस्म इव ।

वाच्यान्तरम्—राजसुतेन······हृदयानि आममन्थिरे ।

भावार्थः—राजपुत्र राम उस सड़क को जहाँ पर लोगों की भीड़ लगी है–शोभित करते हुए, लोकोत्तर गुणों के कारण लोगों का हृदय दहला-सा दिये अर्थात् सभी का हृदय दुःखी हुआ ॥ २ ॥

वैदेही चापि तत् सर्वं न शुश्राव तपस्विनी ।
तदेव हृदि तस्याश्च यौवराज्योभिषेचनम् ॥ ३ ॥

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

पदच्छेद:—वैदेही, च, अपि, तत्, सर्वम्, न, शुश्राव, तपस्विनी, तत्, एव, हृदि, तस्याः, च, यौवराज्याभिषेचनम्।

अन्वय:—तपस्विनी, वैदेही, अपि, च, तत्, सर्वम्, न, शुश्राव, तस्याः, हृदि, च, तत्, एव, यौवराज्याभिषेचनम्, आसीदिति।

व्याख्या—तपस्विनी (पतिव्रता) वैदेही (सीता) अपि च (तु) तत् सर्वम् (वनगमनवृत्तान्तम्) न, शुश्राव (नाऽश्रृणोत्) तस्याः (सीतायाः) हृदि (हृदये) च (तु) तत् एव (सर्वाभिमतमेव) यौवराज्याभिषेचनम् (युवराजपदलाभः एव) स्थितमासीदिति शेषः।

व्युत्पत्ति:—युवा राजा युवराजः तस्यः भावः यौवराज्यम् तत्र अभिषेचनम् (तत्पु०)।

संस्कृतार्थ:—सीता तु वनगमनं तावता न श्रुतवती, किन्तु तस्याः मनसि राज्याभिषेक एव स्थितः आसीत्।

वाच्यान्तरम्—तपस्विनी वैदेह्या……न शुश्रुवे……यौवराज्याभिषेचनेन स्थितम्।

भावार्थ:—तपस्विनी सीता को इस वनयात्रा का पता भी न था वह तो "मेरे पतिदेव युवराज बनेंगे" इसी आशा में थी ॥ ३ ॥

देवकार्यं स्म सा कृत्वा कृतज्ञा हृष्टचेतना।
अभिज्ञा राजधर्माणां राजपुत्री प्रतीक्षती ॥ ४ ॥

पदच्छेद:—देवकार्यम्, स्म, सा, कृत्वा, कृतज्ञा, हृष्टचेतना, अभिज्ञा, राजधर्माणाम्, राजपुत्री, प्रतीक्षती।

अन्वय:—कृतज्ञा, हृष्टचेतना, राजधर्माणाम्, अभिज्ञा, सा, राजपुत्री, देवकार्यम्, कृत्वा, प्रतीक्षती (आसीदिति शेषः)।

व्याख्या—कृतज्ञा हृष्टचेतना (प्रसन्नचित्ता) राजधर्माणाम् (नृपधर्माणाम्) अभिज्ञा (ज्ञात्री) सा राजपुत्री (सीता) देवकार्यम् (देवपूजनम्) कृत्वा (विधाय) अभिषेकसमयम् प्रतीक्षती (प्रतीक्षमाणा) आसीत्।

व्युत्पत्ति:—कृतं जानाति इति कृतज्ञा। हृष्टं चेतनं यस्याः सा (बहु०) राज्ञः धर्माः तेषाम्, राज्ञः पुत्री, देवानां कार्यम् (सर्वत्र तत्पु०)।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust, Funding by MoE-IKS

संस्कृतार्थः—प्रसन्नचित्ता नृपधर्माणाम् ज्ञात्री सीता देवपूजादिकं कृत्वा अभिषेकसमयम् प्रतीक्षमाणा आसीत् ।

वाच्यान्तरम्—कृतज्ञया हृष्टचेतनया तया……अस्थायि ।

भावार्थः—किये हुए को माननेवाली, राजधर्मों की जानकार, राजपुत्री सीता देवपूजा आदि करके अभिषेक के समय की प्रतीक्षा कर रही थीं ॥ ४ ॥

प्रविवेशाऽथ रामस्तु स्ववेश्म सुविभूषितम् ।
प्रहृष्टजनसम्पूर्णं ह्रिया किञ्चिदवाङ्मुखः ॥ ५ ॥

पदच्छेदः—प्रविवेश, अथ, रामः, तु, स्ववेश्म, सुविभूषितम्, प्रहृष्टजन-सम्पूर्णम्, ह्रिया, किञ्चित्, अवाङ्मुखः ।

अन्वयः—अथ, रामः, तु, ह्रिया, किञ्चित्, अवाङ्मुखः, प्रहृष्टजन-सम्पूर्णम्, सुविभूषितम्, स्ववेश्म, प्रविवेश ।

व्याख्या—अथ (अनन्तरम्) रामः (रामचन्द्रः) तु ह्रिया (लज्जया) इदं मातापितृकृतं अन्याय्यम् कथं वदिष्यामि इति किञ्चित् (ईषत्) अवाङ्मुखः (अधोमुखः) प्रहृष्टजनसम्पूणम् (प्रसन्नजनाच्छन्नम्) सुविभूषितम् (सुसंस्कृतम्) स्ववेश्म (स्वगृहम्) प्रविवेश (प्राविशत्) ।

व्युत्पत्तिः—अवाङ्मुखं यस्य सः (बहु०) । प्रहृष्टा जनाः तैः सम्पूर्णम् (तृ० तत्पु०) सुष्ठु विभूषितम् (विशेषणसमासः) स्वस्य वेश्म (ष० त०) ।

संस्कृतार्थः—मातापितृकृतं इदमन्याय्यम् वनगमनं कथं वदिष्यामि इति लज्जया ईषत् अधोमुखः रामः प्रसन्नजनाच्छन्नं स्वलंकृतम् स्वगृहम् प्राविशत् ।

वाच्यान्तरम्—अवाङ्मुखेन रामेण…स्वगृहम् प्राविवेशे ।

भावार्थः—माता पिता से आदिष्ट इस वनगमन को सीता से कैसे सुनाऊँगा इसी लज्जा से सर नीचे किये हुए रामचन्द्र सुन्दर सजे हुए अपने घर में घुसे ॥५॥

अथ सीता समुत्पत्य वेपमाना च तम् पतिम् ।
अपश्यच्छोकसन्तप्तम् चिन्ताव्याकुलितेन्द्रियम् ॥ ६ ॥

पदच्छेदः—अथ, सीता, समुत्पत्य, वेपमाना, च, तम्, पतिम्, अपश्यत्, शोकसन्तप्तम्, चिन्ताव्याकुलितेन्द्रियम् ।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अन्वयः—अथ, सीता, समुत्पत्य, वेपमाना, शोकसन्तप्तम्, चिन्ताव्याकुलितेन्द्रियम्, च, तम्, पतिम्, अपश्यत्।

व्याख्या—अथ (अनन्तरम्) सीता (वैदेही) समुत्पत्य (प्रकस्य) भर्तुः विगतहर्षत्वावाङ्मुखत्वादिदर्शनेन वेपमाना (कम्पमाना) शोकसन्तप्तम् (शोकव्याकुलम्) चिन्ताव्याकुलितेन्द्रियम् (चिन्ताव्याकुलमानसम्) च तम् पतिम् (रामम्) अपश्यत् (अद्राक्षीत्)।

व्युत्पत्तिः—शोकेन सन्तप्तः तम् (तृ० त०)। चिन्तया व्याकुलितानि इन्द्रियाणि यस्य तम् (बहु०)।

संस्कृतार्थः—अनन्तरम् सीता प्रकटीभूय अत्यन्तचिन्तितम् रामम् अद्राक्षीत्।

वाच्यान्तरम्—वेपमानया सीतया शोकसन्तप्तः पतिः ददृशे।

भावार्थः—इसके बाद काँपती हुई सीता ने अत्यन्त चिन्तित अपने पति राम को देखा॥ ६॥

तां दृष्ट्वा स हि धर्मात्मा न शशाक मनोगतम्।
तं शोकं राघवः सोढुं ततो विवृततां गतः॥ ७॥

पदच्छेदः—ताम्, दृष्ट्वा, सः, हि, धर्मात्मा, न, शशाक, मनोगतम्, तम्, शोकम्, राघवः, सोढुम्, ततः, विवृतताम्, गतः।

अन्वयः—हि, धर्मात्मा, सः, राघवः, ताम्, दृष्ट्वा, मनोगतम्, तम्, शोकम्, सोढुम्, न, शशाक, ततः, विवृतताम्, गतः।

व्याख्या—हि (यतः) धर्मात्मा (धार्मिकः) सः (प्रसिद्धः) राघवः (रामः) ताम् (सीताम्) दृष्ट्वा (अवलोक्य) मनोगतम् (मनसि स्थितम्) तम् (पूर्वोक्तम्) शोकम्, सोढुम् (गोप्तुम्) न शशाक (समर्थः बभूव) ततः (तदनन्तरम्) स शोकः विवृतताम् (प्रकटताम्) गतः (जातः)।

व्युत्पत्तिः—धर्मः आत्मा स्वरूपं यस्य सः (बहु०)। मनसि गतम् (तत्पु०)।

संस्कृतार्थः—धर्मात्मा रामः तं शोकं सीताया अग्रे गत्वा गोप्तुम् न शशाक, किन्तु सः प्रकटीबभूव।

वाच्यान्तरम्—धर्मात्मना राघवेण स शोकः सोढुं न शेके।

भावार्थः—धर्मात्मा राम सीताजी के सामने उस शोक को छिपा न सके किन्तु वह खुल कर बाहर हो गया॥ ७॥

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

विवर्णवदनं दृष्ट्वा तं प्रस्विन्नममर्षणम् ।
आह दुःखाभिसन्तप्ता किमिदानीमिदं प्रभो ! ॥ ८ ॥

पदच्छेदः—विवर्णवदनम्, दृष्ट्वा, तम्, प्रस्विन्नम्, अमर्षणम्, आह, दुःखाभिसन्तप्ता, किम्, इदानीम्, इदम्, प्रभो ।

अन्वयः—विवर्णवदनम्, प्रस्विन्नम्, अमर्षणम्, तम्, दृष्ट्वा, दुःखाभिसन्तप्ता, हे प्रभो !, इदानीम्, इदम्, किम्, (इति) आह ।

व्याख्या—विवर्णवदनम् (दुःखिताननम्) प्रस्विन्नम् (प्राप्तदुःखजं स्वेदम्) अमर्षणम् (शोकासहिष्णुम्) तम् (रामम्) दृष्ट्वा (अवलोक्य) दुःखाभिसन्तप्ता (अत्यन्तदुःखवती) सीता, हे प्रभो ! (हे स्वामिन् !) इदानीम् (अस्मिन् समये) इदम् (एतत्) किम् (किमस्ति) इति (एवम्) आह (उवाच) ।

व्युत्पत्तिः—विवर्णं वदनं यस्य तम् (बहु०) । न मर्षयते इति अमर्षणः तम् । दुःखैः अभिसन्तप्ता (तत्पुरुषः) ।

संस्कृतार्थः—अत्यन्तदुःखिता जानकी शोकासहिष्णुं रामम् ऊचे, हे प्रभो ! अधुना इदं किम् अस्ति ?, आश्चर्यकरम् ।

वाच्यान्तरम्—दुःखाभिसन्तप्तया राम ऊचे ।

भावार्थः—अत्यन्त दुःखिनी सीता ने पति की ऐसी दशा देखकर कहा कि हे प्रभो ! यह कैसी बात है, समझ में नहीं आती ॥ ८ ॥

अद्य बार्हस्पतः श्रीमान् युक्तः पुष्येण राघव ! ।
प्रोच्यते ब्राह्मणैः प्राज्ञैः केन त्वमसि दुर्मनाः ॥ ९ ॥

पदच्छेदः—अद्य, बार्हस्पतः, श्रीमान्, युक्तः, पुष्येण, राघव, प्रोच्यते, ब्राह्मणैः, प्राज्ञैः, केन, त्वम्, असि, दुर्मनाः ।

अन्वयः—हे राघव !, अद्य, प्राज्ञैः, ब्राह्मणैः, श्रीमान्, पुष्येण, युक्तः, बार्हस्पतः, प्रोच्यते, त्वम्, दुर्मनाः, केन, असि ।

व्याख्या—हे राघव ! (हे रामचन्द्र !) अद्य (अस्मिन् दिने) प्राज्ञैः (विद्वद्भिः) ब्राह्मणैः, (द्विजैः) श्रीमान् (भवान्) पुष्येण युक्तः (चन्द्रेण युक्तः) बार्हस्पतः (बृहस्पतिदेवताकः) अभिषेकः, प्रोच्यते (कथ्यते) त्वम् (भवान्) दुर्मनाः (दुःखितमानसः) केन (कारणेन) असि (वर्तसे) ।

५

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

व्युत्पत्तिः—प्रज्ञा एव प्राज्ञाः तैः। दुःखितं मनो यस्य सः (बहु०)।

संस्कृतार्थः—हे स्वामिन् रामचन्द्र ! अद्य ब्राह्मणैः पुष्येण युक्तः राज्याभिषेकः उच्यते, इदानीं भवान् दुःखितचित्तः कथं लक्ष्यते, महदाश्चर्यम्।

वाच्यान्तरम्—त्वया दुर्मनसा किम् भूयते ?।

भावार्थः—हे रामचन्द्रजी महाराज! आज तो ब्राह्मणों द्वारा आपका राज्याभिषेक सुना है आपको प्रसन्न होना चाहिए, परन्तु आप दुःखी क्यों हैं ?॥ ९ ॥

न ते शतशलाकेन जलफेननिभेन च।
आवृतं वदनं वल्गु छत्रेणाभिविराजते॥१०॥

पदच्छेदः—न, ते, शतशलाकेन, जलफेननिभेन, च, आवृतम्, वदनम्, वल्गु, छत्रेण, अभिविराजते।

अन्वयः—ते, वल्गु, वदनम्, शतशलाकेन, जलफेननिभेन, च, छत्रेण, आवृतम्, न, अभिविराजते।

व्याख्या—ते (तव) वल्गु (सुन्दरम्) वदनम् (मुखम्) शतशलाकेन (शलाकाशतकवता) जलफेननिभेन (पयःफेनोपमेन) छत्रेण (श्वेतातपत्रेण) आवृतम् (आच्छन्नम्) न (नैव) अभिविराजते (शोभते)।

व्युत्पत्तिः—शतं शलाकाः यस्मिन् तेन (बहु०)। जलस्य फेन इव निभातीति जलफेननिभं तेन (तत्पु०)।

संस्कृतार्थः—हे पतिदेव ! तव सुन्दरमाननं राजोचितश्वेतच्छत्रेण कथमद्य न विराजते ?।

वाच्यान्तरम्—तव सुन्दरेण वदनेन कथं नाभिविराज्यते।

भावार्थः—हे पतिदेव! आज तो आपका राज्याभिषेक का दिन है, राजाओं का चिह्न श्वेतछत्र होता है, वह भी तुम्हारे सर पर नहीं देखती हूँ। यह कैसी बात है ?॥ १० ॥

व्यजनाभ्यां च मुख्याभ्यां शतपत्रनिभेक्षणम्।
चन्द्रहासप्रकाशाभ्यां वीज्यते न तवाननम्॥११॥

पदच्छेदः—व्यजनाभ्याम्, च, मुख्याभ्याम्, शतपत्रनिभेक्षणम्, चन्द्रहासप्रकाशाभ्याम्, वीज्यते, न, तव, आननम्।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अन्वयः—शतपत्रनिभेक्षणम्, तव, आननम्, मुख्याभ्याम्, चन्द्रहासप्रकाशाभ्याम्, व्यजनाभ्याम्, न, वीज्यते ।

व्याख्या—शतपत्रनिभेक्षणम् (कमलोपमनेत्रम्) तव (रामस्य) आननम्, (मुखम्) मुख्याभ्याम् (प्रधानाभ्याम्) चन्द्रहासप्रकाशाभ्याम् (उज्ज्वलदीप्तिभ्याम्) व्यजनाभ्याम् (बालव्यजनाभ्याम्) न (नैव) वीज्यते (न सहकृतं दृश्यते) ।

व्युत्पत्तिः—शतपत्रेण निभे ईक्षणे यस्मिन् तत् । चन्द्रहास इव प्रकाशः ययोः ताभ्याम् (बहु०) ।

संस्कृतार्थः—हे पतिदेव ! तव पङ्कजाक्षं मुखम् अद्य बालव्यजनाभ्यां (राजचिह्नविशेषाभ्यां) सहकृतं न दृश्यते कथम् ? ।

वाच्यान्तरम्—शतपत्रनिभेक्षणेन तवाननेन……कथं न वीज्यते ।

भावार्थः—हे महाराज ! आज यह तुम्हारा कमलाक्षमुख राजचिह्नविशेष जो बालव्यजन है उनसे शोभित नहीं है ? ॥११॥

वाग्मिनो वन्दिनश्चापि प्रहृष्टास्त्वां नरर्षभ ! ।
स्तुवन्तो नाद्य दृश्यन्ते मङ्गलैः सूतमागधाः ॥१२॥

पदच्छेदः—वाग्मिनः, वन्दिनः, च, अपि, प्रहृष्टाः, त्वाम्, नरर्षभ, स्तुवन्तः, न, अद्य, दृश्यन्ते, मङ्गलैः, सूतमागधाः ।

अन्वयः—हे नरर्षभ !, अद्य, वाग्मिनः, वन्दिनः, अपि, च, प्रहृष्टाः, मङ्गलैः, त्वाम्, स्तुवन्तः, न, दृश्यन्ते ।

व्याख्या—हे नरर्षभ ! (हे नरोत्तम !) अद्य (अस्मिन् दिने) वाग्मिनः (सुवक्तारः) वन्दिनः (भट्टाः) अपि च सर्वे प्रहृष्टाः (प्रसन्नचेतसः) मङ्गलैः (मङ्गलगायनैः) त्वाम् (रामम्) स्तुवन्तः (उपतिष्ठन्तः) न (नैव) दृश्यन्ते (अवलोक्यन्ते) ।

व्युत्पत्तिः—नरेषु ऋषभः तत्सम्बुद्धौ (तत्पु०) ।

संस्कृतार्थः—हे मर्यादा पुरुषोत्तम ! यथा दिनान्तरे भट्टादयः त्वां स्तुवन्ति स्म तथा अद्य न स्तुवन्ति इति विचित्रमवलोकये ।

वाच्यान्तरम्—वाग्मिनः प्रहृष्टान्……स्तुवतः न पश्यामि ।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

भावार्थः—हे मर्यादापुरुषोत्तम राम ! पहले दिनों की तरह भक्त लोग, सुन्दर स्तुतियों से तुम्हारी स्तुति करते हुए नहीं दिखाई पड़ रहे हैं। इसका क्या कारण है ? ॥ १२ ॥

न ते क्षौद्रं च दधि च ब्राह्मणा वेदपारगाः ।
मूर्ध्नि मूर्द्धाभिषिक्तस्य ददतिस्म विधानतः ॥१३॥

पदच्छेदः—न, ते, क्षौद्रम्, च, दधि, च, ब्राह्मणाः, वेदपारगाः, मूर्ध्नि, मूर्द्धाभिषिक्तस्य, ददतिस्म, विधानतः ।

अन्वयः—वेदपारगाः, ब्राह्मणाः, मूर्द्धाभिषिक्तस्य, ते, मूर्ध्नि, विधानतः क्षौद्रम्, च, दधि, च, न, ददतिस्म ।

व्याख्या—वेदपारगाः (उत्तमवैदिकाः) ब्राह्मणाः (द्विजाः) मूर्द्धाभिषिक्तस्य (शिरःस्नातस्य) ते (तव) मूर्ध्नि (शिरसि) विधानतः (विधिपूर्वकम्) क्षौद्रम् (मधु) च (पुनः) दधि, च न ददतिस्म (न अदुः) ।

व्युत्पत्तिः—वेदानां पारं गच्छन्तीति वेदपारगाः (तत्पु०) मूर्द्धा अभिषिक्तो यस्य तस्य (बहु०) ।

संस्कृतार्थः—हे भगवन् ! अद्य शिरःस्नातस्य ते शिरसि उत्तमवैदिकाः ब्राह्मणाः दध्यक्षतादिमङ्गलसूचकं वस्तु न ददतिस्म ? ।

वाच्यान्तरम्—वेदपारगैः द्विजैः···दधि न दीयते ।

भावार्थः—हे रामचन्द्र ! महाराज ! आज आपके मस्तक पर उत्तम वेदपाठियों ने दधि, शहद इत्यादि मङ्गल की वस्तु नहीं लगाया, क्या कारण ? ॥१३॥

न त्वाम् प्रकृतयः सर्वाः श्रेणीमुख्याश्च भूषिताः ।
अनुव्रजितुमिच्छन्ति पौरजानपदास्तदा ॥१४॥

पदच्छेदः—न, त्वाम्, प्रकृतयः, सर्वाः, श्रेणीमुख्याः, च, भूषिताः, अनुव्रजितुम्, इच्छन्ति, पौरजानपदाः, तदा ।

अन्वयः—सर्वाः, श्रेणीमुख्याः, च, भूषिताः, प्रकृतयः, त्वाम्, अनुव्रजितुम्, न, इच्छन्ति, तदा, पौरजानपदाः (किम् ?) ।

व्याख्या—सर्वाः (निखिलाः) श्रेणीमुख्याः (परिषन्मुख्याः) च (पुनः) भूषिताः (अलङ्कृताः) प्रकृतयः (प्रजाः) त्वाम् (रामम्) न (नैव) अनु-

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

व्रजितुम् (अनुगन्तुम्) इच्छन्ति (अभिलषन्ति) तदा (तदानीम्) पौरजानपदाः (सर्वा पुरप्रकृतयः) किम् ? ।

व्युत्पत्तिः—श्रेणीषु मुख्याः (तत्पु०) । पौराश्च ते जानपदाः (कर्मधा०) ।

संस्कृतार्थः—हे राम ! ये खलु परिषन्मुख्याः जनाः तेऽपि त्वाम् नानुगन्तुमिच्छन्ति सर्वाः प्रजाः किमुत ? ।

वाच्यान्तरम्—श्रेणीमुख्याभिः न अनुव्रजितुम् इष्यसे··· ।

भावार्थः—हे मर्यादापुरुषोत्तम राम ! आज मुख्यराजसमिति के लोग ही तुम्हारे पीछे चलने की इच्छा नहीं कर रहे हैं शेष प्रजा की तो बातही क्या ? ॥१४॥

चतुर्भिर्वेगसम्पन्नैर्हयैः काञ्चनभूषणैः ।
मुख्यपुष्परथो युक्तः किं न गच्छति तेऽग्रतः ॥१५॥

पदच्छेदः—चतुर्भिः, वेगसम्पन्नैः, हयैः, काञ्चनभूषणैः, मुख्यपुष्परथः, युक्तः, किम् , न, गच्छति, ते, अग्रतः ।

अन्वयः—वेगसम्पन्नैः, काञ्चनभूषणैः, चतुर्भिः, हयैः, युक्तः, मुख्यपुष्परथः, ते, अग्रतः, किम् , न गच्छति ? ।

व्याख्या—वेगसम्पन्नैः (अतिवेगैः) काञ्चनभूषणैः (सुवर्णभूषणैः) चतुर्भिः (चतुस्संख्याकैः) हयैः (अश्वैः) युक्तः (संयुक्तः) मुख्यपुष्परथः (लीलागमनप्रयोजनो रथः) ते (तव) अग्रतः (अग्रे) न (नैव) गच्छति (व्रजति) ।

व्युत्पत्तिः—वेगैः सम्पन्नाः तैः (तृ० त०) । काञ्चनानि भूषणानि तैः मुख्यः पुष्परथः (उभयत्र विशेषणसमासः) ।

संस्कृतार्थः—हे भगवन् ! सुवर्णालङ्कारयुक्ताश्वचतुष्टयेन विराजितः लीलारथः तव अग्रे न गच्छति इति किम् ? ।

वाच्यान्तरम्—हयैः युक्तेन मुख्यपुष्परथेन न गम्यते ? ।

भावार्थः—हे राजन् ! आज वह चार सफेद घोड़ों से युक्त लीलारथ भी तुम्हारे आगे जाता हुआ नहीं दिखाई देता, क्या कारण है ? ॥१५॥

न हस्ती चाग्रतः श्रीमान् सर्वलक्षणपूजितः ।
प्रायेण लक्ष्यते वीर ! कृष्णमेघगिरिप्रभः ॥१६॥

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

पदच्छेदः—न, हस्ती, च, अग्रतः, श्रीमान्, सर्वलक्षणपूजितः, प्रायेण, लक्ष्यते, वीर, कृष्णमेघगिरिप्रभः।

अन्वयः—हे वीर!, अग्रतः, श्रीमान्, सर्वलक्षणपूजितः, कृष्णमेघगिरिप्रभः, हस्ती, च, प्रायेण, न, लक्ष्यते।

व्याख्या—हे वीर! (हे शूर!) अग्रतः (अग्रे) श्रीमान् (शोभान्वितः) सर्वलक्षणपूजितः (सर्वशुभलक्षणः) कृष्णमेघगिरिप्रभः (कृष्णमेघकान्तिः, गिरिशोभश्च) हस्ती (गजः) च (पुनः) प्रायेण (प्रायशः) न (नैव) लक्ष्यते (दृश्यते)।

व्युत्पत्तिः—सर्वाणि लक्षणानि तैः पूजितः (तृ० त०)। कृष्णमेघस्य गिरेश्च प्रभा इव प्रभा यस्य सः (कर्मधारयगर्भः)।

संस्कृतार्थः—हे वीर! अद्य तव अग्रे गच्छन् कृष्णजलदोपमः कृष्णगिरिप्रभश्च सर्वलक्षणान्वितः गजोऽपि न लक्ष्यते।

वाच्यान्तरम्—सर्वलक्षणपूजितेन हस्तिना···च न लक्ष्यते।

भावार्थः—हे वीर! समस्त उत्तमलक्षणों से युक्त, काले मेघ तथा पर्वत की तरह शोभायमान हाथी भी आज आपके आगे नहीं दिखाई पड़ रहा है ॥१६॥

न च काञ्चनचित्रं ते पश्यामि प्रियदर्शन!।
भद्रासनं पुरस्कृत्य यान्तं वीर! पुरस्सरम् ॥ १७ ॥

पदच्छेदः—न, च, काञ्चनचित्रम्, ते, पश्यामि, प्रियदर्शन, भद्रासनम्, पुरस्कृत्य, यान्तम्, वीर, पुरस्सरम्।

अन्वयः—हे वीर!, हे प्रियदर्शन!, भद्रासनम्, पुरस्कृत्य, यान्तम्, ते, पुरस्सरम्, काञ्चनचित्रम्, च, न, पश्यामि।

व्याख्या—हे वीर! (हे शूर!) हे प्रियदर्शन! (हे सुन्दरालोक!) भद्रासनम् पुरस्कृत्य पूजायुक्तं यथा भवति तथा गृहीत्वा यान्तम् (गच्छन्तम्) ते (तव) पुरस्सरम् (अग्रगम्) सेवकं काञ्चनचित्रम् च (पुनः) न पश्यामि (नावलोकयामि)।

व्युत्पत्तिः—भद्रमासनम् भद्रासनम् (कर्मधा०)। प्रियं दर्शनं यस्य तत् सम्बुद्धौ (बहु०)।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

संस्कृतार्थः—हे वीर ! तव अग्रेसरम् काञ्चनचित्रं च न पश्यामि ।

वाच्यान्तरम्—हे वीर ! तव पुरस्सरः काञ्चनचित्रः न दृश्यते ।

भावार्थः—हे शूराग्रगण्य ! आज तुम्हारे आगे जाता हुआ वह काञ्चनचित्र भी नहीं दिखलाई देता ॥१७॥

अभिषेको यदा सज्जः किमिदानीमिदं तव ।
अपूर्वो मुखवर्णश्च न प्रहर्षश्च लक्ष्यते ॥ १८ ॥

पदच्छेदः—अभिषेकः, यदा, सज्जः, किम्, इदानीम्, इदम्, तव, अपूर्वः, मुखवर्णः, च, न, प्रहर्षः, च, लक्ष्यते ।

अन्वयः—यदा, अभिषेकः, सज्जः, इदानीम्, इदम्, किम्, तव, मुखवर्णः, च, अपूर्वः, एवम्, प्रहर्षः, च, न, लक्ष्यते ।

व्याख्या—यदा (यस्मिन् काले) अभिषेकः (राज्याभिषेकः) सज्जः (सन्नद्धः) इदानीम् (एतस्मिन् एव काले) इदम् (एतत्) किम् (किमस्ति) तव (रामस्य) मुखवर्णः (मुखप्रभावः) च (पुनः) अपूर्वः (विलक्षणः) एवम् प्रहर्षः (प्रसादः) च (पुनः) न (नैव) लक्ष्यते (अवलोक्यते) ।

व्युत्पत्तिः—मुखस्य वर्णः (ष० त०) । न पूर्वः अपूर्वः (नञ्समा०) प्रकर्षेण हर्षः (कर्म०) ।

संस्कृतार्थः—हे पतिदेव ! यस्मिन्नेव काले अभिषेकः सन्नद्धः तदानीमेवेदानीम् तव मुखाकृतिः कीदृशी जाता, मुखप्रसादोऽपि दूरं गतः इदं किम् ? ।

वाच्यान्तरम्—मुखवर्णेन अपूर्वेण प्रहर्षेण च न लक्ष्यते ।

भावार्थः—हे पतिदेव ! जिस समय अभिषेक की तैयारी हो उसी समय आज तुम्हारे मुख की यह कान्ति कैसी ? वह मृदुहास कहाँ गया ? इसका क्या कारण ? ॥१८॥

इतीव विलपन्तीं ताम् प्रोवाच रघुनन्दनः ।
सीते ! तत्रभवाँस्तातः प्रव्राजयति मां वनम् ॥ १९ ॥

पदच्छेदः—इति, इव, विलपन्तीम्, ताम्, प्रोवाच, रघुनन्दनः, सीते !, तत्रभवान्, तातः, प्रव्राजयति, माम्, वनम् ।

अन्वयः—रघुनन्दनः, इति, इव, विलपन्तीम्, ताम्, प्रोवाच, हे सीते !, तत्रभवान्, तातः, माम्, वनम्, प्रव्राजयति ।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

 Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

व्याख्या—रघुनन्दनः (रघुवंशशिरोमणिः) इति (एवम्) इव (यथा) विलपन्तीम् (रुदतीम्) ताम् (सीताम्) प्रोवाच (अवोचत्) हे सीते ! (हे जानकि !) तत्रभवान् (पूजनीयः) तातः (पिता) माम् (रामम्) वनम् (काननम्) प्रव्राजयति (गमयति) ।

व्युत्पत्तिः—रघून् नन्दयतीति रघुनन्दनः । विलपति इति विलपन्ती ताम् ।

संस्कृतार्थः—रामचन्द्रः सीतां तथा विलपन्तीम् अवोचत् यत् हे सीते ! राजा दशरथः माम् वनाय प्रेषयति इति ।

वाच्यान्तरम्—तत्रभवता तातेन अहं वनम् प्रव्राज्ये ।

भावार्थः—रामचन्द्रजी ने सीता को इस तरह विलखते देख कहा कि हे वैदेही ! पिता दशरथजी हमें वन भेज रहे हैं ॥ १९ ॥

कुले महति संभूते धर्मज्ञे धर्मचारिणि ! ।
शृणु जानकि ! येनेदं क्रमेणाद्यागतं मम ॥ २० ॥

पदच्छेदः—कुले, महति, संभूते, धर्मज्ञे, धर्मचारिणि, शृणु, जानकि, येन, इदम् , क्रमेण, अद्य, आगतम् , मम ।

अन्वयः—महति, कुले, संभूते, धर्मज्ञे, धर्मचारिणि, हे जानकि !, अद्य, येन, मम, इदम् , आगतम् , क्रमेण, शृणु, ।

व्याख्या - महति (उत्तमे) कुले (अन्ववाये) संभूते (समुत्पन्ने) धर्मज्ञे (धर्मविज्ञे) धर्मचारिणि (धर्माचरणे) हे जानकि ! (हे सीते !) अद्य (अधुना) येन (कारणेन) मम (रामस्य) इदम् (एतद् वनगमनम्) आगतम् (उपस्थितम्) क्रमेण (क्रमतः) तत् शृणु (आकर्णय) ।

व्युत्पत्तिः—धर्मं जानातीति धर्मज्ञा तत्सम्बुद्धौ हे धर्मज्ञे ! । धर्मं चरति धर्मचारिणी तत्सम्बुद्धौ ।

संस्कृतार्थः—हे धर्मज्ञे, धर्माचरणशीले, सत्कुलोत्पन्ने ! हे वैदेहि ! अद्य इदम् वनप्रवाजनम् येन कारणेन उपस्थितम् तच्छृणु ।

वाच्यान्तरम्—हे जानकि ! येनेदम् आगतम् तच्छ्रूयताम् ।

भावार्थः—हे धर्म की जाननेवाली, धर्म पर आचरण करनेवाली, अच्छे

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

कुल में जन्मी हुई वैदेही ! आज जिस कारण से जङ्गल जाने की बात आई क्रम से उसे सुनो ॥ २० ॥

राज्ञा सत्यप्रतिज्ञेन पित्रा दशरथेन वै ।
कैकेय्यै मम मात्रे तु पुरा दत्तौ महावरौ ॥२१॥

पदच्छेदः—राज्ञा, सत्यप्रतिज्ञेन, पित्रा, दशरथेन, वै, कैकेय्यै, मम, मात्रे, तु, पुरा, दत्तौ, महावरौ ।

अन्वयः—सत्यप्रतिज्ञेन, राज्ञा, पित्रा, दशरथेन, वै, मम, मात्रे, कैकेय्यै, तु, पुरा, महावरौ, दत्तौ ।

व्याख्या—सत्यप्रतिज्ञेन (सत्यवचनेन) राज्ञा (नृपेण) पित्रा (जनकेन) दशरथेन (तन्नामकेन) वै, मम (रामस्य) मात्रे (जनन्यै) कैकेय्यै (तन्नाम्न्यै) तु, पुरा (पूर्वकाले, कदाचित्) महावरौ (प्रतिष्ठितवरौ) दत्तौ (वितीर्णौ) ।

व्युत्पत्तिः—सत्या प्रतिज्ञा यस्य सः तेन (बहु०) । महान्तौ वरौ महावरौ (कर्मधा०) ।

संस्कृतार्थः—हे जानकि ! सत्यवक्त्रा मम पित्रा दशरथेन कदाचित् मम मात्रे कैकेय्यै द्वौ वरौ वितीर्णौ ।

वाच्यान्तरम्—सत्यप्रतिज्ञः राजा दशरथः द्वौ वरौ अदात् ।

भावार्थः—हे सीते ! सत्यवादी मेरे पिता राजा दशरथ जी ने किसी समय माता कैकेयी को दो वर दिये थे ॥ २१ ॥

तयाऽद्य मम सज्जेऽस्मिन्नभिषेके नृपोद्यते ।
प्रचोदितः स समयो धर्मेण प्रतिनिर्जितः ॥२२॥

पदच्छेदः—तया, अद्य, मम, सज्जे, अस्मिन्, अभिषेके, नृपोद्यते, प्रचोदितः, सः, समयः, धर्मेण, प्रतिनिर्जितः ।

अन्वयः—अद्य, नृपोद्यते, मम, अभिषेके, सज्जे, तया, सः, समयः, प्रचोदितः, धर्मेण, प्रतिनिर्जितः ।

व्याख्या—अद्य (अस्मिन् समये) नृपोद्यते (राजप्रस्ताविते) मम (रामस्य) अभिषेके (राज्याभिषेके) सज्जे (सन्नद्धे) तया (कैकेय्या) सः

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

(पूर्वोक्तः) समयः (वरकालः) प्रचोदितः (प्रवर्त्तितः) इति राजा धर्मेण (धर्ममार्गेण) प्रतिनिर्जितः (स्ववशः कृतः) ।

व्युत्पत्तिः—नृपेण उद्यतः तस्मिन् (तृती० त०) ।

संस्कृतार्थः—अद्य राज्ञाऽभिषेकप्रस्तावे जाते कैकेय्या स एव वरसंकेतः कृतः इति धर्मपरतन्त्रः राजा तया वशीकृतः ।

वाच्यान्तरम्—सा तम् समयम् प्राचोदयत्··· ।

भावार्थः—आज महाराज दशरथ ने जब मेरे अभिषेक का प्रस्ताव किया तब कैकेयी ने अपने वेही दो वर माँगे । धर्मपरवश राजा उसके वश हो गए॥२२॥

चतुर्दश हि वर्षाणि वस्तव्यं दण्डके मया ।
पित्रा मे भरतश्चापि यौवराज्ये नियोजितः ॥२३॥

पदच्छेदः—चतुर्दश, हि, वर्षाणि, वस्तव्यम्, दण्डके, मया, पित्रा, मे, भरतः, च अपि, यौवराज्ये, नियोजितः ।

अन्वयः—हि, चतुर्दश, वर्षाणि, मया, दण्डके, वस्तव्यम्, मे, पित्रा, भरतः, अपि, च, यौवराज्ये, नियोजितः ।

व्याख्या—हि (यतः) चतुर्दश (द्विगुणसप्त) वर्षाणि (हायनानि) मया (रामेण) दण्डके (वनविशेषे) वस्तव्यम् (निवासनीयम्) मे (मम) पित्रा (दशरथेन) भरतः (तन्नामा कैकेय्याः पुत्रः) अपि च यौवराज्ये (युवराजपदे) नियोजितः (संयोजितः) ।

व्युत्पत्तिः—चतुरधिका दश चतुर्दश । युवा राजा युवराजः तस्य भावः कर्म वा यौवराज्यम् तस्मिन् ।

संस्कृतार्थः—मया चतुर्दश वर्षाणि काननवासः कर्तव्यः भरतश्च तावता युवराजः निर्धारितः ।

वाच्यान्तरम्—पिता भरतं यौवराजे न्ययोजयत् ।

भावार्थः—वचनविवश हो मेरे पिता जी ने मुझे १४ वर्ष वनवास तथा भरत को युवराज बनाया है ॥२३॥

सोऽहं त्वामागतो द्रष्टुम् प्रस्थितो विजनं वनम् ।
भरतस्य समीपे ते नाऽहं कत्थ्यः कदाचन ॥२४॥

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

पदच्छेदः—सः, अहम्, त्वाम्, आगतः, द्रष्टुम्, प्रस्थितः, विजनम्, बनम्, भरतस्य, समीपे, ते, न, अहम्, कत्थ्यः, कदाचन ।

अन्वयः—सः, अहम्, विजनम्, बनम्, प्रस्थितः, त्वाम्, द्रष्टुम्, आगतः, अहम्, भरतस्य, समीपे, ते, कदाचन, न, कत्थ्यः ।

व्याख्या—सः (बनाय नियोजितः) अहम् (रामः) विजनम् (निर्जनम्) बनम् (काननम्) प्रस्थितः (प्रतिष्ठमानः) त्वाम् (स्वधर्मपत्नीम्) द्रष्टुम् (अवलोकयितुम्) आगतः (समायातः) अहम् (रामः) भरतस्य (राज्ञः) समीपे, ते (त्वया) कदाचन (कदापि) न कत्थ्यः (न श्लाघनीयः) ।

व्युत्पत्तिः—विगताजनाः यस्मात् तद् विजनम् (बहुव्री०) ।

संस्कृतार्थः—हे सीते ! सोऽहं रामचन्द्रः वनम् प्रस्थितः त्वया मिलितुमागतः । मम गमनानन्तरम् त्वया मद्विषये भरतः कदाचिदपि न वाच्यः ।

वाच्यान्तरम्—तेन मया विजनम् वनम् प्रास्थायि ।

भावार्थः—हे सीते ! वह मैं निर्जन वन जा रहा हूँ तुमसे मिलने आया हूँ । विशेष बात यह है कि तुम मेरे विषय में भरत से कभी भी चर्चा नहीं करना ॥ २४ ॥

ऋद्धियुक्ता हि पुरुषा न सहन्ते परस्तवम् ।
तस्मान्न ते गुणाः कत्थ्या भरतस्याग्रतो मम ॥२५॥

पदच्छेदः—ऋद्धियुक्ताः, हि, पुरुषाः, न, सहन्ते, परस्तवम्, तस्मात्, न, ते, गुणाः, कत्थ्याः, भरतस्य, अग्रतः, मम ।

अन्वयः—हि, ऋद्धियुक्ताः, पुरुषाः, परस्तवम्, न, सहन्ते, तस्मात्, भरतस्य, अग्रतः, ते, मम, गुणाः, न, कत्थ्याः ।

व्याख्या—हि (यतः) ऋद्धियुक्ताः (समृद्धाः) पुरुषाः (मनुष्याः) परस्तवम् (परप्रशंसाम्) न सहन्ते (न तितिक्षन्ति) तस्मात् (ततः कारणात्) भरतस्य (नवराजस्य) अग्रतः (पुरतः) ते (प्रसिद्धाः) मम (रामस्य) गुणाः (शौर्यादयः) न कत्थ्याः (न वक्तव्याः) न प्रशंसनीयाः इति यावत् ।

व्युत्पत्तिः—ऋद्धया युक्ताः ऋद्धियुक्ताः (तृ० त०) । परस्य स्तवः तम् (ष० त०) ।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

संस्कृतार्थः—समृद्धाः जनाः स्वभावादेव प्रशंसाम् परस्य न श्रोतुमीहन्ते, अतः नवराजस्य भरतस्य अग्रे त्वया मम गुणाः कदापि न प्रशंसनीयाः ।

वाच्यान्तरम्—ऋद्धियुक्तैः परस्तवः न सह्यते ।

भावार्थः—सम्पन्न लोग किसी दूसरे की प्रशंसा से जलते हैं । अतः तुम कभी भी मेरे गुणों की प्रशंसा नवतम राजा भरत के सामने नहीं करना ॥२५॥

अहं ते नानुवक्तव्यो विशेषेण कदाचन ।
अनुकूलतया शक्यं समीपे तस्य वर्तितुम् ॥२६॥

पदच्छेदः—अहम् , ते, न, अनुवक्तव्यः, विशेषेण, कदाचन, अनुकूलतया, शक्यम् , समीपे, तस्य, वर्तितुम् ।

अन्वयः—अहम् , विशेषेण, कदाचन, ते, न, अनुवक्तव्यः, हि, तस्य, समीपे, अनुकूलतया, वर्त्तितुम् , शक्यम् ।

व्याख्या—अहम् (मत्स्वरूपम्) विशेषेण (विशेषतः) कदाचन (कदापि) ते (त्वया) न (नैव) अनुवक्तव्यः (वार्ताप्रसङ्गसखीभिर्वाच्यः) हि (यतः) तस्य (भरतस्य) समीपे (निकटे) अनुकूलतया (आनुकूल्येन) वर्त्तितुम् (व्यवहर्त्तुम्) शक्यम् (योग्यम्) ।

व्युत्पत्तिः—अनुकूलस्य भावः अनुकूलता तया । मत्स्वरूपवर्णनं तत्प्रतिकूलमतः न वाच्यम् ।

संस्कृतार्थः—भरतस्य निकटे मत्स्वरूपं न वर्णनीयम् यतो हि तस्य तत् प्रतिकूलम् । अतः तस्य समीपे अनुकूलतया वर्त्तितुमुचितम् युवराजस्य सर्वाधिकारत्वात् ।

वाच्यान्तरम्—त्व माम् नानुब्रूहि…… ।

भावार्थः—हे सीते ! भरत के पास तुम मेरे स्वरूप का वर्णन नहीं करना क्योंकि वह इस बात से चिढ़ेगा । उसे अनुकूल रखना ही उचित है क्योंकि युवराज को सर्वाधिकार होता है ॥२६॥

तस्मै दत्तं नृपतिना यौवराज्यं सनातनम् ।
सः प्रसाद्यस्त्वया सीते ! नृपतिश्च विशेषतः ॥२७॥

पदच्छेदः—तस्मै, दत्तम् , नृपतिना, यौवराज्यम् , सनातनम् , सः, प्रसाद्यः, त्वया, सीते, नृपतिः, च, विशेषतः ।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अन्वयः—नृपतिना, तस्मै, सनातनम्, यौवराज्यम्, दत्तम्, हे सीते, त्वया, सः, विशेषतः, च, नृपतिः, प्रसाद्यः ।

व्याख्या—नृपतिना (महाराजेन) तस्मै (भरताय) सनातनम् (शाश्वतम्) यौवराज्यम् (युवराजास्पदम्) दत्तम् (वितीर्णम्) हे सीते ! (हे जानकि !) त्वया (जानक्या) सः (भरतः) विशेषतः (विशेषरूपेण) च (यतः) नृपतिः (राजा) अतः प्रसाद्यः (प्रसादनीयः) ।

व्युत्पत्तिः—नृणाम् पतिः तेन (ष० त०) ।

संस्कृतार्थः—राजा दशरथः राज्यम् भरताय दत्तवान् इति सः राजा त्वया विशेषतः सम्माननीयः ।

वाच्यान्तरम्—राजा दशरथः तस्मै यौवराज्यम् दत्तवान्··· ।

भावार्थः—महाराज दशरथ ने भरत को राज्याधिकारी बनाया है । अतः विशेष रूप से राजा को प्रसन्न रखना उचित है ॥ २७ ॥

अहं चापि प्रतिज्ञां तां गुरोः समनुपालयन् ।
वनमद्यैव यास्यामि स्थिरीभव मनस्विनि ! ॥ २८ ॥

पदच्छेदः—अहम्, च, अपि, प्रतिज्ञाम्, ताम्, गुरोः, समनुपालयन्, वनम्, अद्य, एव, यास्यामि, स्थिरीभव, मनस्विनि ।

अन्वयः—हे मनस्विनि !, अहम्, च, गुरोः, ताम्, प्रतिज्ञाम्, समनुपालयन्, अद्य, एव, वनम्, यास्यामि (त्वम्) स्थिरीभव ।

व्याख्या—हे मनस्विनि ! अहम् (रामः) च (पुनः) गुरोः (पितुः) प्रतिज्ञाम् (प्रतिश्रुतिम्) समनुपालयन् (सम्पादयन्) अद्य (अस्मिन् दिने) एव वनम् (काननम्) यास्यामि (गमिष्यामि) त्वम् स्थिरीभव (अचञ्चला स्याः) ।

व्युत्पत्तिः—प्रतिज्ञायते इति प्रतिज्ञा कर्मणि अङ् ।

संस्कृतार्थः—हे सीते ! अहम् पितुर्वचनानुसारी अद्यैव वनं गच्छामि त्वम् अचञ्चला भव ।

वाच्यान्तरम्—मया गुरोः······समनुपालयता वनं गमिष्यते······ ।

भावार्थः—हे जानकि ! मैं पिताजी की बात पूरी करने के लिए जङ्गल जा रहा हूँ । अतः तुम चञ्चल न होना ॥ २८ ॥

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

याते च मयि कल्याणि ! वनं मुनिनिषेवितम् ।
व्रतोपवासपरया भवितव्यं त्वयानघे ! ॥ २९ ॥

पदच्छेदः—याते, च, मयि, कल्याणि, वनम् , मुनिनिषेवितम् , व्रतोपवास-परया, भवितव्यम् , त्वया, अनघे ।

अन्वयः—हे कल्याणि !, हे अनघे !, मयि, मुनिनिषेवितम्, वनम् , याते, त्वया, व्रतोपवासपरया, भवितव्यम् ।

व्याख्या—हे कल्याणि ! (हे शिवे) हे अनघे ! (हे निष्पापे !) मयि (रामे) मुनिनिषेवितम् (मुनिजनचरितं) वनम् (काननम्) याते (प्रयाते) त्वया (जानक्या) व्रतोपवासपरया (व्रतोपवासादिलग्नया) भवितव्यम् (भूयताम्) ।

व्युत्पत्तिः—नास्ति अघः यस्याः सा अनघा तत्सम्बुद्धौ (बहु०) । मुनिभिः निषेवितम् तम् (तृ० त०) । व्रतं च उपवासश्च व्रतोपवासौ तयोः परा तया (द्वन्द्वगर्भः तत्पु०) ।

संस्कृतार्थः—हे पापशून्ये कल्याणमयि जानकि ! अहं वनं गच्छामि त्वया च मदागमनपर्यन्तम् कायक्लेशेन वर्तितव्यम् ।

वाच्यान्तरम्—त्वम् व्रतोपवासपरा भव ।

भावार्थः—हे जानकि ! मैं जङ्गल जा रहा हूँ, अब तुम मेरे आने तक कायशोषक व्रत, उपवास आदि तपस्या से रहना ॥ २९ ॥

कल्यमुत्थाय देवानां कृत्वा पूजां यथाविधि ।
वन्दितव्यो दशरथः पिता मम जनेश्वरः ॥ ३० ॥

पदच्छेदः—कल्यम् , उत्थाय, देवानाम्, कृत्वा, पूजाम् , यथाविधि, वन्दि-तव्यः, दशरथः, पिता, मम, जनेश्वरः ।

अन्वयः—कल्यम् , उत्थाय, यथाविधि, देवानाम्, पूजाम् , कृत्वा, जने-श्वरः, मम, पिता, वन्दितव्यः ।

व्याख्या—कल्यम्, (उषसि) उत्थाय (शय्याम् परित्यज्य) यथाविधि (विधिपूर्वकम्) देवानाम् (त्रिदशानाम्) पूजाम् (अर्हाम्) कृत्वा (विधाय) जनेश्वरः (लोकनाथः) मम (रामस्य) पिता (दशरथः) वन्दितव्यः (वन्दनीयः) ।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

व्युत्पत्तिः—जनानाम् ईश्वरः जनेश्वरः (ष० त०) । विधिम् अनतिक्रम्य यथाविधि (अव्ययीभावः) ।

संस्कृतार्थः—हे सीते ! प्रातः उत्थाय देवानाम् पूजनं कृत्वा त्वया मम पितुः दशरथस्य वन्दनं कर्त्तव्यम् ।

वाच्यान्तरम्—कल्यमुत्थाय''' मम पितरम् जनेश्वरम् वन्द्याः ।

भावार्थः—हे सीते ! तुम प्रातःकाल उठकर विधिपूर्वक देवताओं की पूजा करके पूज्य महाराज दशरथ को दण्डवत् करना ॥ ३० ॥

माता च मम कौसल्या वृद्धा सन्तापकर्शिता ।
धर्ममेवाग्रतः कृत्वा त्वत्तः सम्मानमर्हति ॥ ३१ ॥

पदच्छेदः—माता, च, मम, कौसल्या, वृद्धा, सन्तापकर्शिता, धर्मम् , एव, अग्रतः, कृत्वा, त्वत्तः, सम्मानम् , अर्हति ।

अन्वयः—मम, वृद्धा, सन्तापकर्शिता, माता, कौशल्या, धर्मम्, एव, अग्रतः, कृत्वा, त्वत्तः, सम्मानम् , अर्हति ।

व्याख्या—मम (रामस्य) वृद्धा (जरठा) सन्तापकर्शिता (पुत्रवियोग-दुःखिता) माता (जननी) कौशल्या (तन्नाम्नी) धर्मम् (स्वधर्मम्) एव अग्रतः (अग्रे) कृत्वा (विधाय) त्वत्तः (सीतातः) सम्मानम् (सत्कारम्) अर्हति (प्राप्तुमीष्टे) ।

व्युत्पत्तिः—सन्तापेन कर्शिता सन्तापकर्शिता (तृ० त०) । त्वत् इति त्वत्तः पञ्चम्यास्तसिल् ।

संस्कृतार्थः—हे सीते ! मम गमनानन्तरं मदीयवियोगदुःखिता मम जननी कौसल्या धर्मप्रभावेण त्वया पूजनीया ।

वाच्यान्तरम्—वृद्धया''' कौसल्यया त्वत्तः सम्मानमर्ह्यते ।

भावार्थः—हे सीते ! मेरे जाने पर मेरे दुःख से दुःखी मेरी वृद्धा माता कौसल्या का धर्मभाव से सम्मान किया करना ॥३१॥

वन्दितव्याश्च ते नित्यं याः शेषा मम मातरः ।
स्नेहप्रणयसम्भोगैः समा हि मम मातरः ॥३२॥

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

पदच्छेदः—वन्दितव्याः, च, ते, नित्यम्, याः, शेषाः, मम, मातरः, स्नेहप्रणयसंभोगैः, समाः, हि, मम, मातरः।

अन्वयः—याः, शेषा, मम, मातरः, ते, च, नित्यम्, वन्दनीयाः, हि, स्नेहप्रणयसम्भोगैः, मम, मातरः, समाः।

व्याख्या—याः (अन्याः) शेषाः (शिष्टाः) मम (मे) मातरः (जनन्यः कैकेय्यादयः) ताः ते (त्वया) नित्यम् (अजस्रम्) वन्दनीयाः (पूजनीयाः) हि (यतः) स्नेहप्रणयसंभोगैः (स्नेहेन मातृत्वप्रयुक्तेन, प्रणयेन अधिकस्नेहेन, संभोगेन सेवया अन्नपानादिदानरूपया) मम मातरः (जनन्यः) समाः (समानाः)।

व्युत्पत्तिः—स्नेहश्च प्रणयश्च संभोगश्च ते, तैः (इतरेतरयोगद्व०)।

संस्कृतार्थः—हे सीते! अन्याः सुमित्रादयः अपि मम मातरः त्वया पूजनीयाः। यतो हि मत्कृते स्नेहादिभिः ताः अपि कौसल्यया समानाः।

वाच्यान्तरम्—मम अन्याः मातः त्वं वन्दस्व, ताभिः समानाभिः भूयते।

भावार्थः—हे सीते! मेरी सुमित्रा इत्यादि अन्य माताओं की भी तुम कौशल्या जैसी ही सेवा करना, क्योंकि वे सभी स्नेह आदि से मेरे लिए समान ही हैं॥३२॥

भ्रातृपुत्रसमौ चापि द्रष्टव्यौ च विशेषतः।
त्वया भरतशत्रुघ्नौ प्राणैः प्रियतरौ मम॥३३॥

पदच्छेदः—भ्रातृपुत्रसमौ, च, अपि, द्रष्टव्यौ, च, विशेषतः, त्वया, भरतशत्रुघ्नौ, प्राणैः, प्रियतरौ, मम।

अन्वयः—त्वया, मम, प्राणैः, प्रियतरौ, भरतशत्रुघ्नौ, अपि, च, विशेषतः, भ्रातृपुत्रसमौ, द्रष्टव्यौ।

व्याख्या—त्वया (सीतया) मम (रामस्य) प्राणैः (प्राणेभ्यः) प्रियतरौ (अतिप्रियौ) भरतशत्रुघ्नौ (एतन्नामानौ) अपि च विशेषतः (विशेषरूपेण) भ्रातृपुत्रसमौ (भ्रात्रा पुत्रेण च समानौ) द्रष्टव्यौ (सत्करणीयौ)।

व्युत्पत्तिः—भरतश्च शत्रुघ्नश्च तौ (द्वन्द्वः)। भ्राता च पुत्रश्चेति भ्रातृपुत्रौ ताभ्यां समौ भ्रातृपुत्रसमौ (तृ० त०)।

संस्कृतार्थः—हे सीते! मम अतीव प्रियौ, भ्रात्रा पुत्रेण च समानौ भरतशत्रुघ्नौ त्वया आदरणीयौ।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

वाच्यान्तरम्—त्वम् भरतशत्रुघ्नौ विशेषतः पश्येः।

भावार्थः—हे सीते ! मेरे प्राणों से भी अधिक प्रिय, भाई अथवा पुत्र के समान भरत तथा शत्रुघ्न इन दोनों का भी यथावत् सम्मान करते रहना ॥३३॥

विप्रियं च न कर्तव्यं भरतस्य कदाचन।
स हि राजा च वैदेहि देशस्य च कुलस्य च ॥३४॥

पदच्छेदः—विप्रियम्, च, न, कर्तव्यम्, भरतस्य, कदाचन, सः, हि, राजा, च, वैदेहि, देशस्य, च, कुलस्य, च।

अन्वयः—हे वैदेहि !, भरतस्य, च, कदाचन, विप्रियम्, न, कर्त्तव्यम्, हि, सः, देशस्य, कुलस्य, च, राजा।

व्याख्या—हे वैदेहि ! (हे सीते !) भरतस्य (तन्नामकस्य) कदाचन (कदापि) विप्रियम् (अनुचितम्) न (नैव) कर्त्तव्यम् (विधेयम्) हि (यतः) सः (भरतः) देशस्य (राष्ट्रस्य) कुलस्य (वंशस्य) च (पुनः) राजा (नृपः)।

व्युत्पत्तिः—विगतम् प्रियं यस्मात् तद् (बहु०)।

संस्कृतार्थः—हे सीते ! भरतस्य प्रतिकूलं किमपि कदापि त्वया न कर्त्तव्यम्, यतो हि सः इदानीम् देशस्य कुलस्य च अधिपतिः जातः।

वाच्यान्तरम्—त्वं भरतस्य विप्रियं कदाचन न कुर्याः।

भावार्थः—हे सीते ! तुम भरत के प्रतिकूल कभी भी कोई काम नहीं करना क्योंकि वह इस समय देश तथा कुल दोनों ही का नायक बनाया गया है ॥३४॥

आराधिता हि शीलेन प्रयत्नैश्चोपसेविताः।
राजानः सम्प्रसीदन्ति प्रकुप्यन्ति विपर्यये ॥३५॥

पदच्छेदः—आराधिताः, हि, शीलेन, प्रयत्नैः, च, उपसेविताः, राजानः, सम्प्रसीदन्ति, प्रकुप्यन्ति, विपर्यये।

अन्वयः—हि, शीलेन, आराधिताः, प्रयत्नैः, च उपसेविताः, राजानः, सम्प्रसीदन्ति, विपर्यये, प्रकुप्यन्ति।

व्याख्या—हि (यतः) शीलेन (शीलाख्यगुणेन) आराधिताः (पूजिताः) प्रयत्नैः (उपायैः) च (पुनः) उपसेविताः (शुश्रूषिताः) राजानः (नृपाः)

६

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

सम्प्रसीदन्ति (प्रसन्नाः भवन्ति) विपर्यये (शीलादिविपर्यये) प्रकुप्यन्ति (क्रुध्यन्ति) च ।

व्युत्पत्तिः—आराध + क्त । प्रकुप् + श्यन् + लट् ।

संस्कृतार्थः—हे सीते ! विनयादिभिः पूजिताः उपायैः सेविताः राजानः प्रसीदन्ति, वैपरीत्ये क्रुध्यन्ति ।

वाच्यान्तरम्—शीलेन आराधितैः राजभिः प्रसद्यते वैपरीत्ये क्रुध्यते ।

भावार्थः—हे सीते ! क्योंकि शीलविनय आदि से आराधना करने पर तथा प्रयत्न पूर्वक सेवा करने पर राजा लोग प्रसन्न रहते हैं इससे विपरीत नाराज होते है, ऐसा स्वभाव है ॥३५॥

औरस्यानपि पुत्रान् हि त्यजन्त्यहितकारिणः ।
समर्थान् सम्प्रगृह्णन्ति जनानपि नराधिपाः ॥ ३६ ॥

पदच्छेदः—औरस्यान् , अपि, पुत्रान् , हि, त्यजन्ति, अहितकारिणः, समर्थान् , सम्प्रगृह्णन्ति, जनान् , अपि, नराधिपाः ।

अन्वयः—नराधिपाः, हि, अहितकारिणः, औरस्यान् , पुत्रान् , अपि, त्यजन्ति, समर्थान् , जनान् , अपि, सम्प्रगृह्णन्ति ।

व्याख्या—नराधिपाः (राजानः) हि (यतः) अहितकारिणः (अनिष्टकारिणः) औरस्यान् (स्वपत्न्यां स्वस्माज्जातान्) पुत्रान् (सुतान्) अपि त्यजन्ति (परित्यजन्ति) समर्थान् (हितेच्छून्) जनान् (साधारणान् सम्बन्धलेशहीनान्) अपि सम्प्रगृह्णन्ति (अनुगृह्णन्ति) ।

व्युत्पत्तिः—नराणामधिपाः ते (ष० त०) । अहितं कुर्वन्तीति तान् (तत्पु०) समर्थयन्ते इष्टम् अनुगच्छन्ति इति समर्थाः तान् ।

संस्कृतार्थः—हे सीते ! राजानः अनिष्टकारिणः पुत्रानपि त्यजन्ति हितकारिणः अन्यानपि गृह्णन्तीति स्वभावः ।

वाच्यान्तरम्—नराधिपैः अहितकारिणः पुत्राः त्यजन्ते, हितकारिणोऽन्येनुगृह्यन्ते ।

भावार्थः—हे सीते ! राजा लोग अपने अहित करने वाले पुत्र को भी छोड़ देते हैं, हित चाहने वाले अपरिचित पर भी अनुग्रह करते हैं ॥ ३६ ॥

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

सा त्वं वसेह कल्याणि ! राज्ञः समनुवर्त्तिनी ।
भरतस्य रता धर्मे सत्यव्रतपरायणा ॥ ३७ ॥

पदच्छेद:—सा, त्वम् , वस, इह, कल्याणि, राज्ञः, समनुवर्त्तिनी, भरतस्य, रता, धर्मे, सत्यव्रतपरायणा ।

अन्वय:—हे कल्याणि !, सा, त्वम् , इह, सत्यव्रतपरायणा, धर्मे, रता, राज्ञः, भरतस्य, समनुवर्त्तिनी, वस ।

व्याख्या—हे कल्याणि ! (हे शिवे !) सा (पूर्वोक्ता) त्वम् (सीता) इह (अयोध्यायाम्) सत्यव्रतपरायणा (सत्यनिरता) धर्मे (सतीधर्मे) रता (संसक्ता) राज्ञः (नृपस्य) भरतस्य (तन्नामकस्य) समनुवर्त्तिनी (अनुचारिणी) वस (निवस) ।

व्युत्पत्ति:—सत्यं व्रतम् सत्यव्रतम् तदेव परमयनं यस्याः सा (बहु०) । समनुवर्तते इति समनुवर्त्तिनी ।

संस्कृतार्थ:—हे सीते ! त्वं सत्यधर्मरता राज्ञः भरतस्य अप्रतिकूलचारिणी इहैव अयोध्यायाम् निवासं कुरु ।

वाच्यान्तरम्—सत्यव्रतपरायणा धर्मे रतया'''समनुवर्त्तिन्या इह उष्यताम् ।

भावार्थ:—हे जानकि ! सत्यपरा, धर्मरता होती हुई राजा भरत की हितकारिणी बनकर तुम अयोध्या में निवास करो ॥ ३७ ॥

अहं गमिष्यामि महावनं प्रिये ! त्वया हि वस्तव्यमिहैव भामिनि ! ।
यथा व्यलीकं कुरुषे न कस्यचित्तथा त्वया कार्यमिदं वचो मम ॥३८॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्येऽयोध्याकाण्डे
षड्विंशः सर्गः ॥ २६ ॥

पदच्छेद:—अहम् , गमिष्यामि, महावनम् , प्रिये, त्वया, हि, वस्तव्यम् , इह, एव, भामिनि, यथा, व्यलीकम् , न, कस्यचित् , तथा, त्वया, कार्यम् , इदम् , वचः, मम ।

अन्वय:—हे प्रिये !, अहम् , महावनम् , गमिष्यामि, हे भामिनि !, हि, त्वया, इह, एव, वस्तव्यम् , यथा, कस्यचित् , व्यलीकम् , न, कुरुषे, तथा, त्वया, मम, इदम् , वचः, कार्यम् ।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

व्याख्या—हे प्रिये ! (हे वल्लभे !) अहम् (रामः) महावनम् (दण्डकारण्यम्) गमिष्यामि (गच्छामि) हि (पुनः) त्वया (सीतया) इह (अयोध्यायाम्) एव वस्तव्यम् (निवसनीयम्) यथा (येन प्रकारेण) कस्यचित् (मद्वचनस्य) व्यलीकम् (अनृतत्वम्) न कुरुषे (न विधत्से) तथा (तेन प्रकारेण) त्वया (सीतया) मम (रामस्य) इदम् (एतदपि) वचः (वाक्यम्) कार्यम् (कर्त्तव्यम्) अनुष्ठेयमिति यावत् ।

व्युत्पत्तिः—महत् वनम् महावनम् (कर्मधा०) । व्यलीकपदं व्यलीकत्वम्, कस्यचिदिति षष्ठ्यनुरोधात् ।

संस्कृतार्थः—हे प्राणप्रिये ! अहं वनं गमिष्यामि त्वमिहैव वस । यथा मम कस्यापि वचनस्य अपालनं न करोषि तथा इदमपि वचः सर्वथा स्वीकुरु ।

वाच्यान्तरम्—मया महावनं गमिष्यते त्वमिहैव वस ।

भावार्थः—हे सीते ! मैं दण्डकवन जा रहा हूँ, तुम मेरे आदेशानुकूल यहीं पर रहो । जैसे मेरी अन्य बातों को तुम ठीक पालन करती हो वैसे ही इस का भी करना ॥३८॥

इति वाल्मीकीये रामवनगमने आचार्यश्रीराजनारायणशास्त्रिशुक्लरचितायां प्रभाटीकायां तृतीयः सर्गः ॥ ३ ॥

अथ चतुर्थः सर्गः ।

एवमुक्ता तु वैदेही प्रियार्हा प्रियवादिनी ।
प्रणयादेव संक्रुद्धा भर्तारमिदमब्रवीत् ॥ १ ॥

पदच्छेदः—एवम्, उक्ता, तु, वैदेही, प्रियार्हा, प्रियवादिनी, प्रणयात्, एव, संक्रुद्धा, भर्त्तारम्, इदम्, अब्रवीत् ।

अन्वयः—एवम्, उक्ता, प्रियार्हा, प्रियवादिनी, वैदेही, प्रणयात्, एव, संक्रुद्धा, भर्तारम्, इदम्, अब्रवीत् ।

व्याख्या—एवम् (अमुना प्रकारेण) उक्ता (कथिता) प्रियार्हा (प्रिययोग्या) प्रियवादिनी (प्रियवचना) वैदेही (सीता) प्रणयात् (स्नेहात्) एव

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

संक्रुद्धा (पतिव्रताम् माम् पृथक् स्थापयतीत्यमर्षवती) भर्त्तारम् (पतिम्) इदम् (वक्ष्यमाणम्) अब्रवीत् (उवाच) ।

व्युत्पत्तिः—प्रियमर्हतीति प्रियार्हा । प्रियं वदतीति प्रियवादिनी (उपपदसमासः) ।

संस्कृतार्थः—भगवता रामेण एवमुक्ता सीता पतिव्रताम् माम् पृथग्वासाय मे पतिः कथमादिशतीत्यमर्षवती प्रोवाच ।

वाच्यान्तरम्—प्रियार्हया प्रियवादिन्या······भर्ता······इदमूचे ।

भावार्थः—भगवान् राम से इस प्रकार कही जाने पर सीताजी ने "यह सोचकर कि मेरे पतिदेव मुझे अपने से अलग रहने का आदेश दे रहे हैं यह क्यों ?" प्रेम से क्रुद्ध हो कहा ॥ १ ॥

किमिदं भाषसे राम ! वाक्यं लघुतया ध्रुवम् ।
त्वया यदपहास्यं मे श्रुत्वा नरवरोत्तम ! ॥ २ ॥

पदच्छेदः—किम्, इदम्, भाषसे, राम, वाक्यम्, लघुतया, ध्रुवम्, त्वया, यत्, अपहास्यम्, मे, श्रुत्वा, नरवरोत्तम ।

अन्वयः—हे राम !, ध्रुवम्, लघुतया, इदम्, वाक्यम्, किम्, भाषसे, हे नरवरोत्तम !, त्वया, यत्, उक्तम्, तत्, श्रुत्वा, मे, अपहास्यम् (जायते) ।

व्याख्या—हे राम !, ध्रुवम् (निश्चयेन) लघुतया (मयि लघुत्वबुद्ध्या) इदम् (एतत् पूर्वोक्तम्) वाक्यम् (वचः) किम् (अनुचितम्) भाषसे (आदिशसि) हे नरवरोत्तम ! (हे पुरुषोत्तम !) त्वया (भवता रामेण) यत् (वचः) उक्तम् तत् श्रुत्वा (आकर्ण्य) मे (मम) अपहास्यम् (हास्यम्) जायते (उत्पद्यते) ।

व्युत्पत्तिः—नराणां वराः तेषु उत्तमः तत्सम्बुद्धौ (तत्पु०) ।

संस्कृतार्थः—हे राम ! माम् अतिक्षुद्रां निश्चित्यैव भवता तथोक्तम्, त्वद्वचनं श्रुत्वा मम हास्यं जायते ।

वाच्यान्तरम्—त्वया किमिदं भाष्यते, मे हास्येन जायताम् ।

भावार्थः—हे पतिदेव ! आपने मुझमें क्षुद्रता का ही निश्चय करके ऐसा कहा । आपकी बातें सुनकर तो हमे हँसी-सी आ रही है ॥ २ ॥

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

वीराणां राजपुत्राणां शस्त्रास्त्रविदुषां नृप ! ।
अनर्हमयशस्यं च न श्रोतव्यं त्वयेरितम् ॥ ३ ॥

पदच्छेद:—वीराणाम्, राजपुत्राणाम्, शस्त्रास्त्रविदुषाम्, नृप, अनर्हम्, अयशस्यम्, च, न, श्रोतव्यम्, त्वया, ईरितम् ।

अन्वय:—हे नृप !, वीराणाम्, शस्त्रास्त्रविदुषाम्, राजपुत्राणाम्, अनर्हम्, अयशस्यम्, च (वचः) त्वया, ईरितम्, न, श्रोतव्यम् ।

व्याख्या—हे नृप ! (हे राजन् !) वीराणाम् (शूराणाम्) शस्त्रास्त्रविदुषाम् (शस्त्रादिविद्याकुशलानाम्) राजपुत्राणाम् (नृपसुतानाम्, क्षत्रियाणाम् इति यावत्) अनर्हम् (अयोग्यम्) अयशस्यम् (अकीर्त्तिकरम्) च त्वया (भवता) ईरितम् (कथितम्) वचः (वाच्यम्) न (नैव) श्रोतव्यम् (आकर्णनीयम्)

व्युत्पत्तिः—शस्त्राणि च अस्त्राणि चेति शस्त्रास्त्राणि विदन्ति इति शस्त्रास्त्रविद्वांसस्तेषाम् (तत्पु०)। राज्ञः पुत्राः तेषाम् (ष० त०)। न अर्हति इति अनर्हम् । न यशस्करम् अयशस्करम् (उभयत्र नञ्समासः)।

संस्कृतार्थः—हे राजन् ! इदं यदुक्तं श्रीमता तत्तु कस्यापि वीरस्य क्षत्रियस्य वार्ता अनुचिता । न कश्चिदीदृशं वक्तुं शक्नुयादिति ।

वाच्यान्तरम्—त्वम् यद् वचः ईरितवान् न तद् यशस्करम्...।

भावार्थः—हे राजन् ! आपने जैसी बातें कही हैं यह तो किसी वीर क्षत्रिय के मुँह से निकलने लायक नहीं । यह तो सुनने लायक भी नहीं है ॥ ३ ॥

आर्यपुत्र ! पिता माता भ्राता पुत्रस्तथा स्नुषा ।
स्वानि पुण्यानि भुञ्जानाः स्वं स्वं भाग्यमुपासते ॥ ४ ॥

पदच्छेद:—आर्यपुत्र, पिता, माता, भ्राता, पुत्रः, तथा, स्नुषा, स्वानि, पुण्यानि, भुञ्जानाः, स्वम्, स्वम्, भाग्यम्, उपासते ।

अन्वय:—आर्यपुत्र, पिता, माता, भ्राता, पुत्रः, तथा, स्नुषा, स्वानि, पुण्यानि, भुञ्जानाः, स्वम्, स्वम्, भाग्यम्, उपासते ।

व्याख्या—हे आर्यपुत्र ! (हे माननीय !) पिता (जनकः) माता (जननी) भ्राता (बन्धुः) पुत्रः (सुतः) तथा स्नुषा (पुत्रवधूः) एते सर्वे स्वानि (स्वकीयानि) पुण्यानि (कर्मफलानि) भुञ्जानाः (अधिगच्छन्तः) स्वम् स्वम्

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

(स्वकीयम् स्वकीयम्) भाग्यम् (अनुष्ठितं कर्म) उपासते (उपजीवन्ति) न पुत्राद्यनुष्ठितमिति यावत् ।

व्युत्पत्तिः—आर्यश्चासौ पुत्रः तत्सम्बुद्धौ (कर्म०) ।

संस्कृतार्थः—हे पतिदेव ! इह संसारे पिता माता भ्राता पुत्र इत्यादिः सर्वोऽपि स्वानुष्ठितकर्मफलम् भुङ्क्ते नाऽन्यः अन्यस्य । अतः का चिन्ता तद्विषये ? ।

वाच्यान्तरम्—पित्रा भ्रात्रा……स्वं स्वं भाग्यम् उपास्यते ।

भावार्थः—हे पूज्यचरण ! इस संसार में पिता माता आदि सभी अपने अपने किए हुए पूर्व कर्मों के फलों को भोगते हैं । कोई किसी का नहीं । फिर इस विषय में सोचना ही क्यों ? ॥ ४ ॥

भर्तुर्भाग्यं तु नार्येका प्राप्नोति पुरुषर्षभ ! ।
अतश्चैवाऽहमादिष्टा वने वस्तव्यमित्यपि ॥ ५ ॥

पदच्छेदः—भर्तुः, भाग्यम्, तु, नारी, एका, प्राप्नोति, पुरुषर्षभ, अतः, च, एव, अहम्, आदिष्टा, वने, वस्तव्यम्, इति, अपि ।

अन्वयः—हे पुरुषर्षभ !, एका, नारी, तु, भर्तुः, भाग्यम्, प्राप्नोति, अतः, च, अहम्, वने, वस्तव्यम्, इति, अपि, आदिष्टा, एव ।

व्याख्या—हे पुरुषर्षभ ! (हे नरश्रेष्ठ !) एका (केवला) नारी (स्त्री) तु, भर्तुः (स्वपतेः) भाग्यम् (कर्मफलम्) प्राप्नोति (अधिगच्छति) अतः (एतस्मात् कारणात्) च (पुनः) स्वपितृभ्याम् अहम् (सीता) अपि वने (कानने) वस्तव्यम् (निवसनीयम्) इति अपि (एतदपि) आदिष्टा (आज्ञप्ता) एव । न तत्र संशयोऽपि ।

व्युत्पत्तिः—पुरुषेषु ऋषभः तत्सम्बुद्धौ (तत्पु०) ।

संस्कृतार्थः—हे नरश्रेष्ठ ! केवलं स्त्री एव स्वपतेः कर्मफलमधिगच्छति । अतः त्वाम् वनगमनाय आदिशद्भ्याम् स्वपितृभ्याम् अहमपि तदर्थमाज्ञप्ता एव । न कश्चिदत्र विचारशेषः ।

वाच्यान्तरम्—एकया नार्या भाग्यम् प्राप्यते…।

भावार्थः—हे पुरुषोत्तम ! केवल स्त्री ही अपने पति के कर्मफल को प्राप्त

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

करने की अधिकारिणी होती है। अतः आप को जब आज्ञा हुई जंगल जाने की, तो मुझे भी साथही हो चुकी ॥ ५ ॥

न पिता नात्मजो नात्मा न माता न सखीजनः।
इह प्रेत्य च नारीणाम् पतिरेको गतिः सदा ॥ ६ ॥

पदच्छेदः—न, पिता, न, आत्मजः न, आत्मा, न, माता, न, सखीजनः, इह, प्रेत्य, च, नारीणाम्, पतिः, एकः, गतिः, सदा।

अन्वयः—पिता, न, आत्मजः, न, आत्मा, न, माता, न, सखीजनः, न, किन्तु, इह, प्रेत्य, च, नारीणाम्, सदा, एकः, पतिः, गतिः।

व्याख्या—पिता (जनकः) न (नैव) आत्मजः (पुत्रः) न, आत्मा, न माता (जननी) न, सखीजनः (सखीसमाजः) अपि न, किन्तु इह (लोके) प्रेत्य (परलोके च) नारीणाम् (योषिताम्) सदा (सर्वदा) एकः (केवलः) पतिः (भर्ता) एव गतिः (शरणम्)।

व्युत्पत्तिः—आत्मना जातः आत्मजः। सखीनाम् जनः सखीजनः (तत्पु०)।

संस्कृतार्थः—अत्र संसारे परलोके च स्त्रीणां गतिः पतिरेव भवति पुत्रादयः वेऽपि न।

वाच्यान्तरम्—पित्रा आत्मजेन···न भूयेत, पत्या गत्या भूयते।

भावार्थः—इस संसार में अथवा परलोक में स्त्रियों के लिए पति ही सर्वस्व होता है, पिता, भाई, पुत्र आदि कोई नहीं ॥ ६ ॥

यदि त्वं प्रस्थितो दुर्गं वनमद्यैव राघव!।
अग्रतस्ते गमिष्यामि मृद्नन्ती कुशकण्टकान् ॥ ७ ॥

पदच्छेदः—यदि, त्वम्, प्रस्थितः, दुर्गम्, वनम्, अद्य, एव, राघव, अग्रतः, ते, गमिष्यामि, मृद्नन्ती, कुशकण्टकान्।

अन्वयः—हे राघव!, यदि, त्वम्, अद्य, एव, दुर्गम्, वनम्, प्रस्थितः (तदा) कुशकण्टकान् मृद्नन्ती, ते, अग्रतः, गमिष्यामि।

व्याख्या—हे राघव! (हे रामचन्द्र!) यदि (चेत्) त्वम् (मे पतिः) अद्य एव (इदानीमेव) दुर्गम् (भयङ्करम्) वनम् (काननम्) प्रस्थितः

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

-(प्रातिष्ठत) तदा कुशकण्टकान् (दर्भकण्टकादीन्) मृद्नन्ती (मार्गाद्दूरीकुर्वन्ती) ते (तव) अग्रतः (पुरतः) गमिष्यामि (व्रजिष्यामि) पद्भ्यामेव, न मदर्थम् वाहनाद्यपेक्षा ।

व्युत्पत्तिः—कुशाश्च कण्टकाश्च तान् (इतरेतरयो० द्व०) ।

संस्कृतार्थः—हे पतिदेव ! यदि त्वम् अद्य वनं गच्छसि तदाऽहमपि सहैव मार्गसंशोधनादिकं सम्पादयन्ती पदातिरेव त्वदग्रतो गन्तुमिच्छामि ।

वाच्यान्तरम्—कुशकण्टकान् मृद्नन्त्या मयाऽपि गमिष्यते ।

भावार्थः—हे पतिदेव ! अगर आप जङ्गल के लिए प्रस्थान करते हैं तो मैं भी आप के आगे आगे कुश-काँटों को साफ करती हुई पैदल ही चलूँगी ॥७॥

ईर्ष्यां रोषम् बहिष्कृत्य भुक्तशेषमिवोदकम् ।
नय मां वीर ! विस्रब्धः पापं मयि न विद्यते ॥ ८ ॥

पदच्छेदः—ईर्ष्याम्, रोषम्, बहिष्कृत्य, भुक्तशेषम्, इव, उदकम्, नय, माम्, वीर, विस्रब्धः, पापम्, मयि, न, विद्यते ।

अन्वयः—हे वीर !, ईर्ष्याम्, रोषम्, च, बहिष्कृत्य, विस्रब्धः, भुक्तशेषम्, उदकम्, इव, माम्, नय, मयि, पापम्, न, विद्यते ।

व्याख्या—हे वीर ! (हे शूर !) ईर्ष्याम् (अक्षान्तिम्) रोषम् (वाक्योल्लङ्घनजन्यम्) बहिष्कृत्य (निस्सार्य) विस्रब्धः (विश्वस्तः) भुक्तशेषम् (पीतशेषम्) उदकम् (जलम्) इव (यथा) माम् (सीताम्) नय (सह नय) मयि (सीतायाम्) पापम् (कलुषम्) न विद्यते (नैव वर्तते) ।

व्युत्पत्तिः—भुक्तात् शेषम् भुक्तशेषम् (तत्पु०) ।

संस्कृतार्थः—हे वीर ! स्त्रिया वनगमनसाहसमनुचितमिति ईर्ष्याम्, मम वचनं न मनुते इति रोषम् च परित्यज्य सर्वथा विश्वस्तः यथा कश्चित् कान्तारप्रस्थी जलं पीत्वा अवशिष्टं कमण्डलौ स्थापयन् याति तथैव भुक्तभोगामपि मां सहैव नय, किञ्चिदपि पापं मयि न वर्त्तते ।

वाच्यान्तरम्—हे वीर···विस्रब्धेन···सह नीयताम्··· ।

भावार्थः—हे वीर पतिदेव ! स्त्री का वनगमन अनुचित है इस ईर्ष्या को,

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

तथा आपकी बात न मान रही हूँ इस पर उत्पन्न हुए रोष को छोड़–सर्वथा मुझ पर विश्वास कर उस तरह साथ ले चलें जैसे कोई जङ्गल जाने वाला जल पीकर भी बचे हुए को कमण्डलु में साथ रखता है। मुझ में कोई पाप नहीं है ॥ ८॥

प्रासादाग्रे विमानैर्वा वैहायसगतेन वा।
सर्वावस्थागता भर्तुः पादच्छाया विशिष्यते ॥ ९ ॥

पदच्छेदः—प्रासादाग्रे, विमानैः, वा, वैहायसगतेन, वा, सर्वावस्थागता, भर्तुः, पादच्छाया, विशिष्यते।

अन्वयः—पदच्छेदवदेव।

व्याख्या—प्रासादाग्रे (महाप्रासादस्थित्यपेक्षया) विमानैः (महाविमान-संचारापेक्षया) वा, वैहायसगतेन (आकाशगमनेन) वा, सर्वावस्थागता (योग्य-पतिलक्षणानाक्रान्ता) अपि भर्तुः (पत्युः) पादच्छाया (चरणच्छायम्) विशिष्यते (श्रेष्ठायते) सर्वथाऽयोग्यस्यापि पत्युः पादच्छायामात्रमपि सकलवैभवादिकं व्यतिशेते इति भावः।

व्युत्पत्तिः—प्रासादस्याग्रम् तस्मिन्। पादस्य छाया (ष० त०)। वैहायसं गतम् तेन (कर्म०)। सर्वावस्थासु गता (तत्पु०)।

संस्कृतार्थः—सकलविश्ववैभवापेक्षया सर्वथाऽकिञ्चित्करस्यापि पत्युः पादच्छायामात्रम् श्रेष्ठम्।

वाच्यान्तरम्—भर्तुः पादच्छायया···विशिष्यते।

भावार्थः—हे पतिदेव! आपकी तो बात ही क्या! एक अकिञ्चन पति के पैरों की छाया भी उसकी स्त्री के लिए विश्व के सकल वैभवों से ऊँची होती है ॥ ९ ॥

अनुशिष्टाऽस्मि मात्रा च पित्रा च विविधाश्रयम्।
नाऽस्मि सम्प्रति वक्तव्या वर्तितव्यं यथा मया ॥१०॥

पदच्छेदः—अनुशिष्टा, अस्मि, मात्रा, च, पित्रा, च, विविधाश्रयम्, न, अस्मि, सम्प्रति, वक्तव्या, वर्तितव्यम्, यथा, मया।

अन्वयः—मात्रा, च, पित्रा, च, विविधाश्रयम्, अनुशिष्टा, अस्मि, सम्प्रति, वक्तव्या, न, अस्मि, यथा, उपदिष्टम्, मया, वर्तितव्यम्।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

व्याख्या—मात्रा (जनन्या) पित्रा (जनकेन च) विविधाश्रयम् (नानाविधावस्थभर्तृनित्याश्रयम्) अनुशिष्टा (उपदिष्टा) अस्मि (वर्ते) सम्प्रति (इदानीम्) वक्तव्या (उपदेष्टव्या) न अस्मि (न योग्या) यतो हि यथा (येन प्रकारेण) पित्रादिभिः उपदिष्टम् तथा मया (सीतया) वर्त्तितव्यम् (पत्यौ चरणीयम्) नान्यथेति भावः ।

व्युत्पत्तिः—विविध आश्रयः यथा स्यात्तथा । क्रियाविशेषणमेतत् ।

संस्कृतार्थः—मम पिता मात्रा च पूर्वं यदुपदिष्टं भर्तरि कथं वर्तितव्यमिति तथैव वर्तिष्ये । इदानीं किमपि नूतनं नोपदेष्टव्यम् ।

वाच्यान्तरम्—माता पिता मामनुशासितवन्तौ तथा अहं वर्त्स्ये ।

भावार्थः—मेरे पिता तथा माता ने विवाह के समय मुझे उपदेश दिया था कि पति के प्रति कैसे व्यवहार करना, बस उसी उपदेश की बातें मैंने आपके सामने रक्खी हैं, उसी के अनुरूप मैं चलूँगी । मुझे नया उपदेश न दें ॥१०॥

अहं दुर्गं गमिष्यामि वनं पुरुषवर्जितम् ।
नानामृगगणाकीर्णं शार्दूलगणसेवितम् ॥ ११ ॥

पदच्छेदः—अहम्, दुर्गम्, गमिष्यामि, वनम्, पुरुषवर्जितम्, नानामृगगणाकीर्णम्, शार्दूलगणसेवितम् ।

अन्वयः—अहम्, पुरुषवर्जितम्, नानामृगगणाकीर्णम्, शार्दूलगणसेवितम्, दुर्गम्, वनम्, गमिष्यामि ।

व्याख्या—अहम् (सीता) पुरुषवर्जितम् (निर्जनम्) नानामृगगणाकीर्णम् (विविधमृगनिकरच्छन्नम्) शार्दूलगणसेवितम् (व्याघ्रनिकरसम्पन्नम्) दुर्गम् (भयङ्करम्) वनम् (काननम्) गमिष्यामि (व्रजिष्यामि) नेह स्थास्यामि ।

व्युत्पत्तिः—पुरुषैः वर्जितम्, नानामृगगणैः आकीर्णम्, शार्दूलगणैः सेवितम् (सर्वत्र तृ० तत्पु०) दुःखेन गम्यते इति दुर्गम् ।

संस्कृतार्थः—अहं निर्जनम् भयङ्करम् व्याघ्रादिव्याप्तमपि काननं भवता सह गमिष्यामि एष एव धर्मः ।

वाच्यान्तरम्—वनम् मया गमिष्यते ।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

भावार्थः—हे पतिदेव ! अत्यन्त भयङ्कर जनशून्य बाघ आदि हिंसक जन्तुओं से पूर्ण वन में मैं भी आपके साथ ही चलूँगी इसमें अन्यथा न होगा ॥११॥

सुखं वने निवत्स्यामि यथैव भवने पितुः ।
अचिन्तयन्ती त्रीँल्लोकान् चिन्तयन्ती पतिव्रतम् ॥ १२ ॥

पदच्छेदः—सुखम्, वने, निवत्स्यामि, यथा, एव, भवने, पितुः, अचिन्तयन्ती, त्रीन् लोकान्, चिन्तयन्ती, पतिव्रतम् ।

अन्वयः—यथा, पितुः, भवने, (तथा) एव, त्रीन्, लोकान्, अचिन्तयन्ती, पतिव्रतम्, चिन्तयन्ती, वने, सुखम्, निवत्स्यामि ।

व्याख्या—यथा (येन प्रकारेण) पितुः (जनकस्य) भवने (गृहे) तथा एव (तेन प्रकारेण एव) त्रीन् (त्रिसंख्याकान्) लोकान् (भुवनानि) अचिन्तयन्ती (अगणयन्ती) पतिव्रतम् (पतिसेवाम्) चिन्तयन्ती (अपेक्षमाणा) वने (कानने) सुखम् (सानन्दम्) निवत्स्यामि (निवासं करिष्यामि) ।

व्युत्पत्तिः—चिन्तयते इति चिन्तयन्ती, न चिन्तयन्ती अचिन्तयन्ती । (नञ्तत्पु०) ।

संस्कृतार्थः—हे पतिदेव ! यथा पितृभवने स्थिताऽहम् त्रैलोक्यस्यापि ऐश्वर्यं न अगणयम् तथैव भवता सहवासरूपसुखस्य पुरतः सकलभुवनवैभवं तुच्छमिति जानाना पातिव्रत्येन सानन्दं वने वत्स्यामि ।

वाच्यान्तरम्—त्रीन् लोकान् अचिन्तयन्त्या मया वनं निवत्स्यते ।

भावार्थः—हे पतिदेव ! जैसे पिता के घर पर रहती हुई मैं तीनों लोकों की विभूतियों को तुच्छ समझती थी वैसे ही आपके चरणों में रहती हुई केवल पतिव्रताधर्म को ही सर्वस्व समझती हुई मैं जङ्गल में ही साथ रहूँगी ॥१२॥

शुश्रूषमाणा ते नित्यं नियता ब्रह्मचारिणी ।
सह रंस्ये त्वया वीर ! वनेषु मधुगन्धिषु ॥ १३ ॥

पदच्छेदः—शुश्रूषमाणा, ते, नित्यम्, नियता, ब्रह्मचारिणी, सह, रंस्ये, त्वया, वीर, वनेषु, मधुगन्धिषु ।

अन्वयः—हे वीर !, नित्यम्, ते, शुश्रूषमाणा, नियता, ब्रह्मचारिणी, मधुगन्धिषु, वनेषु, त्वया, सह, रंस्ये ।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

व्याख्या—हे वीर ! (हे शूर !) नित्यम् (सर्वदैव) ते (त्वाम्) शुश्रूषमाणा (सेवमाना) नियता (नियमवती) ब्रह्मचारिणी (ब्रह्मचर्यव्रते स्थिता) मधुगन्धिषु (मकरन्दसुरभिषु) वनेषु (काननेषु) त्वया (राघवेन्द्रेण) सह रंस्ये (रमणं करिष्ये) ।

व्युत्पत्तिः—ब्रह्म चरति या सा ब्रह्मचारिणी । मधु गन्धः येषां तानि मधुगन्धीनि तेषु (बहु०) ।

संस्कृतार्थः—हे पतिदेव ! नित्यं ब्रह्मचारिणी भवच्चरणसेवापरायणा सुन्दरगन्धयुतेषु वनेषु भवता सह विहरिष्यामि ।

वाच्यान्तरम्—शुश्रूषमाणया ब्रह्मचारिण्या मया'''रंस्यते ।

भावार्थः—हे राघवेन्द्र ! आपके साथ नित्य ब्रह्मचर्य से रह आपके चरणों की सेवा करती हुई नानाप्रकार के सुन्दर गन्धों से युक्त वन में आपके साथ विहार करूँगी ॥ १३ ॥

त्वं हि कर्त्तुं वने शक्तो राम ! सम्परिपालनम् ।
अन्यस्याऽपि जनस्येह किम् पुनर्मम मानद ! ॥१४॥

पदच्छेदः—त्वम्, हि, कर्त्तुम्, वने, शक्तः, राम, सम्परिपालनम्, अन्यस्य, अपि, जनस्य, इह, किम्, पुनः, मम, मानद ।

अन्वयः—हे राम !, हे मानद !, हि, त्वम्, वने, अन्यस्य, अपि, जनस्य, सम्परिपालनम्, कर्त्तुम्, शक्तः, इह, मम, पुनः, किम् ? ।

व्याख्या—हे राम ! (हे राघव !) हे मानद ! (हे मानकर्त्तः !) हि (निश्चयेन) त्वम् (रामः) वने (कानने) अन्यस्य (इतरस्य) अपि जनस्य (लोकस्य) सम्परिपालनम् (भरणम्) कर्त्तुम् (विधातुम्) शक्तः (समर्थः) इह मम (सीतायाः स्वपत्न्याः) पुनः (भूयः) किम् (वक्तव्यम्) मां तु पालयितुं शक्तोष्येवेति भावः ।

व्युत्पत्तिः—सम्यक् परिपालनम् सम्परिपालनम् ।

संस्कृतार्थः—हे राघवेन्द्र राम ! कानने स्थितः अपि त्वम् अन्यस्यापि रक्षां कर्त्तुम् प्रभवसि, मम स्वपत्न्याः चर्चैव का ? ।

वाच्यान्तरम्—त्वया अन्यस्य'''शक्यते ।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

भावार्थः—हे महाराज ! जंगल में रहते हुए भी आप दूसरों का भी पालन करने में समर्थ हैं फिर मेरी क्या बात ! मेरे लिए तो सदैव समर्थ हैं ही ॥१४॥

साऽहं त्वया गमिष्यामि वनमद्य न संशयः ।
नाऽहं शक्या महाभाग ! निवर्तयितुमुद्यता ॥१५॥

पदच्छेदः—सा, अहम्, त्वया, गमिष्यामि, वनम्, अद्य, न, संशयः, न, अहम्, शक्या, महाभाग, निवर्तयितुम्, उद्यता ।

अन्वयः—सा, अहम्, अद्य, त्वया, सह, वनम्, गमिष्यामि, संशयः, न, हे महाभाग !, उद्यता, अहम्, निवर्तयितुम्, न, शक्या ।

व्याख्या—सा (तादृशी) अहम् (सीता) अद्य (अस्मिन् काले) त्वया (स्वपतिना) सह (सार्द्धम्) वनम् (काननम्) गमिष्यामि (व्रजिष्यामि) अत्र संशयः (सभीतिः) न (न कार्यः) हे महाभाग ! (हे महामान्य !) उद्यता (वनं गन्तुमुत्सुका) अहम् (सीता) निवर्तयितुम् (प्रत्यावर्त्तयितुम्) न (नैव) शक्या (समर्था) न्यायप्राप्तानुगमनत्वात् न कोऽपि मां वारयितुं शक्नोति इति भावः ।

व्युत्पत्तिः—महान् भागः यस्य सः तत्सम्बुद्धौ (बहु०) ।

संस्कृतार्थः—हे पूज्यपते ! भवता सहाऽहं वनमद्याऽवश्यं गमिष्यामि नात्र सन्देहलेशोऽपि । वनं गन्तुकामाम् मां कोऽपि न वारयितुं प्रभवति ।

वाच्यान्तरम्—मया वनं गमिष्यते…।

भावार्थः—हे पूज्यपतिदेव ! आज मैं आपके साथ जङ्गल अवश्य चलूँगी, मुझे कोई रोक नहीं सकता क्योंकि मैं न्यायपथ पर हूँ ॥ १५ ॥

फलमूलाशना नित्यं भविष्यामि न संशयः ।
न ते दुखं करिष्यामि निवसन्ती त्वया सदा ॥ १६ ॥

पदच्छेदः—फलमूलाशना, नित्यम् , भविष्यामि, न, संशयः, न, ते, दुःखम् , करिष्यामि, निवसन्ती, त्वया, सदा ।

अन्वयः—नित्यम् , फलमूलाशना, भविष्यामि, सदा, त्वया (सह) निवसन्ती, ते, दुःखम् , न, करिष्यामि, अत्र, संशयः, न ।

व्याख्या—नित्यम् (अजस्रम्) फलमूलाशना (फलमूलाहारा) भविष्यामि (स्थास्यामि) सदा (सर्वदा) त्वया (भवता सह) निवसन्ती (स्थिता) ते (तव)

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

दुःखम् (कष्टम्) न (नैव) करिष्यामि (सम्पादयिष्यामि) अत्र संशयः (सन्देहः) न (न कार्यः) ।

व्युत्पत्तिः—फलानि मूलानि च फलमूलानि अश्नीते इति फलमूलाशना, तत्पुरुषो बहुव्रीहिर्वा । निवसतीति, निवस् + शतृ + ङीप् ।

संस्कृतार्थः—हे राम ! भवता सह कानने फलमूलादिभिरेव भोजनं सम्पाद्य सन्तोषम् करिष्यामि सुन्दरभोजनाय भवते कष्टं न दास्यामि ।

वाच्यान्तरम्—नित्यम् फलमूलाशनया भूत्वा न ते दुःखं दास्यते ।

भावार्थः—हे राम ! मैं जङ्गल में फलमूल से ही भोजन कर आपसे सुन्दर भोजन के लिए न कहूँगी कि आपको कष्ट उठाना पड़े । इस बात पर विश्वास रखिए ॥ १६ ॥

अग्रतस्ते गमिष्यामि भोक्ष्ये भुक्तवति त्वयि ।
इच्छामि परितः शैलान् पल्वलानि सरांसि च ॥ १७ ॥

पदच्छेदः—अग्रतः, ते, गमिष्यामि, भोक्ष्ये, भुक्तवति, त्वयि, इच्छामि, परितः, शैलान् , पल्वलानि, सरांसि, च ।

अन्वयः—ते, अग्रतः, गमिष्यामि, त्वयि, भुक्तवति, भोक्ष्ये, परितः, शैलान् , पल्वलानि, सरांसि, च (द्रष्टुम्) इच्छामि ।

व्याख्या—ते (तव) अग्रतः (पुरतः) गमिष्यामि (व्रजिष्यामि) त्वयि (पत्यौ) भुक्तवति (कृतभोजने) भोक्ष्ये (खादिष्यामि) परितः (अभितः) शैलान् (पर्वतान्) पल्वलानि (लघुगर्तानि) सरांसि (ह्रदान्) च (पुनः) द्रष्टुम् इच्छामि (अभिलषामि) ।

व्युत्पत्तिः—भुज्धातोः क्तवतुः कर्तरि । परितः योगे द्वितीया शैलानित्यादि (अभितः-परितः-समया-निकषा-हा-प्रतियोगेऽपि) ।

संस्कृतार्थः—हे पतिदेव ! अहम् तव अग्रेऽग्रे चलिष्यामि, कृतभोजने त्वयि अत्स्यामि, शैलह्रदादीन् द्रक्ष्यामि ।

वाच्यान्तरम्—तेऽग्रतः गमिष्यते, भुक्तवति भोक्ष्यते पल्वलादीनि......... इष्यन्ते ।

भावार्थः—हे पूज्यवर ! मैं आपके आगे आगे चलूँगी, खा लेने बाद खाऊँगी । पर्वत, जङ्गली तालाब वगैरह देखने की बड़ी इच्छा है ॥१७॥

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

द्रष्टुं सर्वत्र निर्भीता त्वया नाथेन धीमता।
हंसकारण्डवाकीर्णाः पद्मिनीः साधु पुष्पिताः ॥१८॥

पदच्छेदः—द्रष्टुम्, सर्वत्र, निर्भीता, त्वया, नाथेन, धीमता, हंसकारण्डवाकीर्णाः, पद्मिनीः, साधु, पुष्पिताः।

अन्वयः—धीमता, त्वया, नाथेन, निर्भीता, साधु, पुष्पिताः, हंसकारण्डवाकीर्णाः, पद्मिनीः, सर्वत्र, द्रष्टुम् (इच्छामि इति पूर्वेण)।

व्याख्या—धीमता (बुद्धिमता) त्वया (रामेण) नाथेन (स्वपतिना सह) निर्भीता (भीतिरहिता) अहम् साधु पुष्पिताः (साधुविकसिताः) हंसकारण्डवाकीर्णाः (हंसजलकुक्कुटादिव्याप्ताः) पद्मिनीः (वापीः) सर्वत्र (कानने) द्रष्टुम् (अवलोकितुम्) इच्छामि।

व्युत्पत्तिः—साधु यथा स्यात्तथा पुष्पिताः ताः। हंसैः कारण्डवैः च आकीर्णाः ताः (तृ० त०)।

संस्कृतार्थः—हे नाथ! भवता सदाऽहं विकचिताः वापीः हंसादिसनाथाः द्रष्टुम् अभिलषामि।

वाच्यान्तरम्—निर्भीतया साधुपुष्पिताः पद्मिन्यः द्रष्टुम् इष्यन्ते।

भावार्थः—हे नाथ! आपके साथ जङ्गल में मैं हंस आदि से भरी हुई फूलों से सजी बावलियाँ देखूँगी ॥१८॥

इच्छेयं सुखिनी द्रष्टुं त्वया वीरेण संगता।
अभिषेकं करिष्यामि तासु नित्यमनुव्रता ॥१९॥

पदच्छेदः—इच्छेयम्, सुखिनी, द्रष्टुम्, त्वया, वीरेण, संगता, अभिषेकम्, करिष्यामि, तासु, नित्यम्, अनुव्रता।

अन्वयः—वीरेण, त्वया, संगता, सुखिनी, द्रष्टुम्, इच्छेयम्, तासु, नित्यम्, अनुव्रता, अभिषेकं, करिष्यामि।

व्याख्या—वीरेण (शूरेण) त्वया (स्वपतिना) संगता (सहगामिनी) सुखिनी (सानन्दा) वर्णितकाननदृश्यम् द्रष्टुम् (अवलोकितुम्) इच्छेयम् (अभिलषेयम्) तासु (पद्मिनीषु) नित्यम् (अजस्रम्) अनुव्रता (व्रतनिरता) अभिषेकम् (स्नानम्) करिष्यामि (विधास्यामि)।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

व्युत्पत्तिः—सम्यग् गता संगता । अभितः सेकः अभिषेकः तम् ।

संस्कृतार्थः—हे नाथ ! त्वया सह वर्तमाना तासु वापीषु अभिषेकम् विधास्यामि ।

वाच्यान्तरम्—त्वया संगतया तासु अभिषेकः करिष्यते ।

भावार्थः—हे नाथ ! आपके साथ मैं उन बावलियों में स्नान आदि का आनन्द उठाऊँगी ॥१९॥

सह त्वया विशालाक्ष ! रंस्ये परमनन्दिनी ।
एवं वर्षसहस्राणि शतं वापि त्वया सह ॥२०॥

पदच्छेदः—सह, त्वया, विशालाक्ष, रंस्ये, परमनन्दिनी, एवम्, वर्षसहस्राणि, शतम्, वा, अपि, त्वया, सह ।

अन्वयः—हे विशालाक्ष !, त्वया, सह, एवम्, वर्षसहस्राणि, शतम्, अपि, वा, परमनन्दिनी, रंस्ये ।

व्याख्या—हे विशालाक्ष ! (हे विशालनेत्र !) त्वया (भवता) सह (सार्द्धम्) एवम् (उक्त प्रकारेण) वर्षसहस्राणि (सहस्रवर्षाणि यावत्) शतम् वर्षाणि अपि वा परमनन्दिनी (सानन्दा) रंस्ये (रमणं करिष्यामि) किमपि कष्टं न स्यात् इति भावः ।

व्युत्पत्तिः—वर्षाणां सहस्राणि । परमा नन्दिनी (कर्म०) ।

संस्कृतार्थः—हे कमलाक्ष पतिदेव ! एवम् त्वया सार्द्धं निवसन्त्याः मम कदापि कष्टं न भविष्यति किमु वर्षचतुर्दशकेन ।

वाच्यान्तरम्—त्वया सह…मया रंस्यते परमनन्दिन्या ।

भावार्थः—हे नाथ ! इस तरह आपके साथ हजारों वर्ष भी मैं निवास कर सकती हूँ, १४ वर्ष की तो बात ही क्या है ? ॥२०॥

व्यतिक्रमं न वेत्स्यामि स्वर्गोऽपि हि न मे मतः ।
स्वर्गेऽपि च विना वासो भविता यदि राघव ! ।
त्वया विना नरव्याघ्र ! नाऽहं तदपि रोचये ॥२१॥

पदच्छेदः—व्यतिक्रमम्, न, वेत्स्यामि, स्वर्गः, अपि, हि, न, मे, मतः, स्वर्गे, अपि, च, विना, वासः, भविता, यदि, राघव, त्वया, विना, नरव्याघ्र, न, अहम्, तद्, अपि, रोचये ।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अन्वयः—अहम्, व्यतिक्रमम्, न, वेत्स्यामि, हि, मे, स्वर्गः, अपि, न, मतः, हे राघव !, यदि, त्वया, विना, स्वर्गे, अपि, वासः, भविता, हे नरव्याघ्र !, अहम्, तद्, अपि, न रोचये ।

व्याख्या—अहम् वने व्यतिक्रमम् (दुःखम्) न (नैव) वेत्स्यामि (ज्ञास्यामि) हि (निश्चयेन) मे (मम) स्वर्गः (नाकः) अपि न (नैव) मतः (अभीष्टः) हे राघव ! (रघुकुलमणे !) यदि (चेत्) त्वया (रामेण) विना स्वर्गे (नाके) अपि वासः (निवासः) भविता (भविष्यति) हे नरव्याघ्र ! (हे नरसिंह !) तद् (स्वर्गवसनम्) अपि अहम् (सीता) न (नैव) रोचये (अभिलषामि) ।

व्युत्पत्तिः—नरेषु व्याघ्र इवेति नरव्याघ्रः तत्सम्बुद्धौ । उपमितसमासः ।

संस्कृतार्थः—हे पुरुषोत्तम ! कानने त्वया सह स्थिताऽहम् किमपि दुःखं न ज्ञास्यामि । भवता विना साक्षात् स्वर्गनिवासः अपि मे तुच्छ एव ।

वाच्यान्तरम्—व्यतिक्रमो न वेत्स्यते, स्वर्गोऽपि मया न रोच्यते ।

भावार्थः—हे नरोत्तम ! जंगल में आप के साथ रहती हुई मैं कुछ भी दुःख नहीं मानूँगी । आपके विना हमें स्वर्गनिवास तथा स्वर्गप्राप्ति भी अभीष्ट नहीं है ॥ २१ ॥

अहं गमिष्यामि वनं सुदुर्गमं मृगायुतं वानरवारणैश्च ।
वने निवत्स्यामि यथा पितुर्गृहे तवैव पादावुपगृह्य सम्मता ॥२२॥

पदच्छेदः—अहम्, गमिष्यामि, वनम्, सुदुर्गमम्, मृगायुतम्, वानरवारणैः, च, वने, निवत्स्यामि, यथा, पितुः, गृहे, तव, एव, पादौ, उपगृह्य, सम्मता ।

अन्वयः—अहम्, मृगायुतम्, वानरवारणैः, च (युतम्) सुदुर्गमम्, वनम्, गमिष्यामि, यथा, पितुः, गृहे (तथा) तव, एव, पादौ, उपगृह्य, संमता, वने, निवत्स्यामि ।

व्याख्या—अहम् (तव सेविका) मृगायुतम् (मृगनिकरच्छन्नम्) वानरवारणैः (कपिगजैः) च युतम् सुदुर्गमम् (दुष्प्रवेशम्) वनम् (काननम्) गमिष्यामि (व्रजिष्यामि) यथा (येन प्रकारेण) पितुः (विदेहस्य) गृहे (भवने) तथा तव (पत्युः) पादौ (चरणौ) उपगृह्य (निपीड्य) सम्मता (अभीष्टा) वने (कानने) निवत्स्यामि (निवासं करिष्यामि) ।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

व्युत्पत्तिः—मृगैः आ समन्ताद् युतम् (अव्ययीभावगर्भ०तत्पु०)। वानराश्च वारणाश्च तैः (द्वन्द्वः)।

संस्कृतार्थः—अहम् वानरगजादियुक्तं वनं गमिष्यामि। तत्र च भवत्पाद-सेवापरा पितृगृहवत् सुखं वत्स्यामि।

वाच्यान्तरम्—सुदुर्गमम् वनं मया गमिष्यते, सुखं वने निवत्स्यते।

भावार्थः—मैं वानर, हाथी आदि मृगों से युक्त वन में साथ चलूँगी, वहाँ आप की चरण-सेवा में जनकपुर-का-सा आनन्द समझूँगी ॥२२॥

अनन्यभावामनुरक्तचेतसं त्वया वियुक्तां मरणाय निश्चिताम्।
नयस्व मां साधु कुरुष्व याचनां नातो मया ते गुरुता भविष्यति ॥२३॥

पदच्छेदः—अनन्यभावाम्, अनुरक्तचेतसम्, त्वया, वियुक्ताम्, मरणाय, निश्चिताम्, नयस्व, माम्, साधु, कुरुष्व, याचनाम्, न, अतः, मया, ते, गुरुता, भविष्यति।

अन्वयः—अनन्यभावाम्, अनुरक्तचेतसम्, त्वया, वियुक्ताम्, मरणाय, निश्चिताम्, माम्, नयस्व, अतः (मम) याचनाम्, साधु, कुरुष्व, मया, ते गुरुता, न, भविष्यति।

व्याख्या—अनन्यभावाम् (अनन्याम्) अनुरक्तचेतसम् (अनुरक्तचित्ताम्) त्वया (रामेण) वियुक्ताम् (वियोगिनीम्) मरणाय (प्राणत्यागाय) निश्चिताम् (कृतबुद्धिम्) माम् (सीताम्) नयस्व (सार्द्धं नयः) अतः (एतस्मात् हेतोः) मम याचनाम् (प्रार्थनाम्) साधु (सम्यक्) कुरुष्व (सम्पादय) मया (सीतया) ते (तव, गच्छतः) गुरुता (भारः) न (नैव) भविष्यति (सम्पत्स्यते) किन्तु यथास्थितमेव स्थास्यतीति भावः।

व्युत्पत्तिः—न अन्यः भावः यस्याः सा ताम्। अनुरक्तं चेतो यस्याः सा ताम् (बहुव्री०)। एतस्मादिति अतः, एतद् + तसिल् (एतदोऽन्)

संस्कृतार्थः—हे भगवान्! सर्वथा अनन्याम् त्वद्वियोगे कृतमरणप्रतिज्ञाम् मां सहैव नय। मम एताम् प्रार्थनाम् अङ्गीकुरु। त्वया सह मम गमनेन तव भारः न वर्द्धिष्यते।

वाच्यान्तरम्—अनन्यभावा अनुरक्तचेता अहं त्वया नीयताम्, भारेण न भूयते।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

भावार्थः—हे भगवन् ! सर्वथा अनन्यचित्ता तथा आपके वियोग में मरने के लिए सन्नद्ध मुझ सीता को साथ ले चलिए। मेरी इस प्रार्थना को स्वीकार कीजिए। साथ में मेरे रहने से आपका बोझा बढ़ नहीं जायगा ॥२३॥

तथा ब्रुवाणामपि धर्मवत्सलां न च स्म सीतां नृवरो निनीषति।
उवाच चैनां बहु सन्निवर्तने वने निवासस्य च दुःखिताम् प्रति ॥२४॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्येऽयोध्याकाण्डे
सप्तविंशः सर्गः ॥२७॥

पदच्छेदः—तथा, ब्रुवाणाम्, अपि, धर्मवत्सलाम्, न च, स्म, सीताम्, नृवरः, निनीषति, उवाच, च, एनाम्, बहु, सन्निवर्तने, वने, निवासस्य, च, दुःखिताम्, प्रति।

अन्वयः—नृवरः, तथा, ब्रुवाणाम्, धर्मवत्सलाम्, अपि, च, सीताम्, न, निनीषतिस्म, एनाम्, सन्निवर्तने, वने, निवासस्य, च, दुःखिताम्, प्रति, च, बहु, उवाच।

व्याख्या—नृवरः, (पुरुषोत्तमः) तथा (न्यायोचितम्) ब्रुवाणाम् (वदन्तीम्) धर्मवत्सलाम् (धर्मप्रियाम्) अपि च, सीताम् (वैदेहीम्) न (नैव) निनीषतिस्म (नेतुम् ऐच्छत्) एनाम् (सीताम्) सन्निवर्तने (प्रत्यावर्तने) वने (कान्तारे) निवासस्य (वासस्य) च दुःखिताम् (दुःखजनकताम्) प्रति च (पुनः) बहु (अधिकम्) उवाच (अवोचत्)।

व्युत्पत्तिः—नृषु वरः नृवरः, धर्मस्य वत्सला ताम् (तत्पुरुषः)। दुःखमस्त्यस्मिन् इति दुःखितस्य भावः तत्ता ताम्।

संस्कृतार्थः—न्याययुक्तं वदन्तीमपि वैदेहीं रामः सह नेतुं न इच्छति स्म। प्रत्युत ताम् निवर्तयितुं बहु दुःखवर्णनं काननीयं अकरोत्।

वाच्यान्तरम्—तथा वदन्ती नृवरेण न निनीष्यतेस्म, वनवासस्य दुःखिता ऊचे च।

भावार्थः—इस प्रकार न्याययुक्त बातें कहती हुई भी सीता को रामचन्द्रजी साथ ले जाना नहीं चाहे, बल्कि सीता जी को अपने निश्चय से हटाने के लिए जङ्गल के अधिक से अधिक दुःखों का वर्णन किया ॥२४॥

इति वाल्मीकीये रामवनगमने आचार्यश्रीराजनारायणशास्त्रिशुक्ल-
रचितायां प्रभाटीकायां चतुर्थः सर्गः ॥४॥

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अथ पञ्चमः सर्गः ।

स एवं ब्रुवतीं सीतां धर्मज्ञां धर्मवत्सलः ।
न नेतुं कुरुते बुद्धिं वने दुःखानि चिन्तयन् ॥ १ ॥

पदच्छेदः—सः, एवम्, ब्रुवतीम्, सीताम्, धर्मज्ञाम्, धर्मवत्सलः, न, नेतुम्, कुरुते, बुद्धिम्, वने, दुःखानि, चिन्तयन्,

अन्वयः—धर्मवत्सलः, सः, वने, दुःखानि, चिन्तयन्, एवम्, ब्रुवतीम्, धर्मज्ञाम्, सीताम्, नेतुम्, बुद्धिम्, न, कुरुते ।

व्याख्या—धर्मवत्सलः (धर्मप्रियः) सः (प्रसिद्धः रामः) वने (कानने) दुःखानि (कृच्छ्राणि) चिन्तयन् (शोचन्) एवम् (पूर्वोक्तप्रकारेण) ब्रुवतीम् (वदन्तीम्) धर्मज्ञाम् (धर्मविज्ञाम्) सीताम् (जानकीम्) नेतुम् (सहनेतुम्) बुद्धिम् (मनीषाम्) न (नैव) कुरुते (विधत्ते) ।

व्युत्पत्तिः—धर्मस्य वत्सलः (ष० त०) । धर्मं जानातीति धर्मज्ञा ताम् (तत्पु०) ।

संस्कृतार्थः—धर्मप्रियो रामः सीतायास्तादृशानि वचनानि श्रुत्वाऽपि वने दुःखानि चिन्तयन् ताम् सह नेतुम् न इच्छति स्म ।

वाच्यान्तरम्—धर्मवत्सलेन तेन सीताम् नेतुम् बुद्धिः न क्रियते ।

भावार्थः—धर्मप्रिय राम सीताजी की बातें सुनकर भी जङ्गल के भावी दुःखों को स्मरण कर साथ ले जाने का विचार नहीं कर रहे थे ॥ १ ॥

सान्त्वयित्वा ततस्तां तु बाष्पदूषितलोचनाम् ।
निवर्तनार्थे धर्मात्मा वाक्यमेतदुवाच ह ॥ २ ॥

पदच्छेदः—सान्त्वयित्वा, ततः, ताम्, तु, बाष्पदूषितलोचनाम्, निवर्तनार्थे, धर्मात्मा, वाक्यम्, एतत्, उवाच, ह ।

अन्वयः—ततः, तु, धर्मात्मा, बाष्पदूषितलोचनाम्, ताम्, सान्त्वयित्वा, निवर्तनार्थे, एतद्, वाक्यम्, उवाच, ह ।

व्याख्या—ततः (तदनन्तरम्) धर्मात्मा (धर्मस्वरूपः रामः) बाष्पदूषितलोचनाम् (अश्रुयुक्तनेत्राम्) ताम् (सीताम्) सान्त्वयित्वा (शमयित्वा) निवर्त-

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

नार्थें (वनयात्राप्रत्यावर्तनार्थें) एतद् (वक्ष्यमाणम्) वाक्यम् (वचनम्) उवाच ह (अब्रवीत् ह) ।

व्युत्पत्तिः—धर्म आत्मा यस्य । बाष्पैः दूषिते लोचने यस्याः सा ताम् (बहु०) । निवर्तनमर्थः निवर्तनार्थः तस्मिन् ।

संस्कृतार्थः—तदनन्तरम् धर्मप्राणः रामः रुदन्तीम् सीतां शमयित्वा यात्राग्रहं तस्याः परिवर्तयितुं उवाच ।

वाच्यान्तरम्—धर्मात्मना…एतद् ऊचे ।

भावार्थः—तदनन्तर धर्मप्राण रामजी ने रोती हुई सीता को शान्त कर वन-यात्रा वाले उसके आग्रह को बदलने के लिए कहा ॥ २ ॥

सीते ! महाकुलीनासि धर्मे च निरता सदा ।
इहाचरस्व धर्मं त्वं यथा मे मनसः सुखम् ॥ ३ ॥

पदच्छेदः—सीते, महाकुलीना, असि, धर्मे, च, निरता, सदा, इह, आचरस्व, धर्मम् , त्वम् , यथा, मे, मनसः, सुखम् ।

अन्वयः—हे सीते (त्वम्), महाकुलीना, असि, सदा, च, धर्मे, निरता, इह, यथा, मे, मनसः, सुखम् (तथा) धर्मम् , आचरस्व ।

व्याख्या—हे सीते ! (हे जानकि !) त्वम् महाकुलीना (महाकुले जाता) असि (वर्तसे) सदा (सर्वदा) च (पुनः) धर्मे (स्वधर्मे) निरता (लीना) इह (अयोध्यायामेव स्थिता) यथा (येन प्रकारेण) मे (मम) मनसः (चेतसः) सुखम् (आनन्दः) स्यात् तथा धर्मम् (स्वधर्मम्) आचरस्व (समाचर) ।

व्युत्पत्तिः—महाकुले जाता महाकुलीना ।

संस्कृतार्थः—हे जानकी ! त्वं महाकुले जाता धर्मप्राणा चाऽसि, अतः मम मनसः यथा सुखं स्यात् तथा अयोध्यायां स्थित्वैव त्वं धर्मं चरेः ।

वाच्यान्तरम्—इहस्थयैव त्वया धर्मं आचर्यताम् ।

भावार्थः—हे जानकि ! तुम महाकुल में उत्पन्न तथा सदैव धर्म पर चलने वाली हो, अतः अयोध्या में ही रहकर मेरे मन को जैसे भी सुख मिले वैसे तुम धर्म का आचरण करो ॥ ३ ॥

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

सीते ! यथा त्वां वक्ष्यामि त्वया कार्यं तथाबले ! ।
वने दोषा हि बहवो वसतस्तान्निबोध मे ॥ ४ ॥

पदच्छेदः—सीते, यथा, त्वाम्, वक्ष्यामि, त्वया, कार्यम्, तथा, अबले, वने, दोषाः, हि, बहवः, वसतः, तान्, निबोध, मे ।

अन्वयः—हे सीते !, यथा, त्वाम्, वक्ष्यामि, हे अबले !, त्वया, तथा, कार्यम्, हि, वने, वसतः, बहवः, दोषाः, तान्, मे निबोध ।

व्याख्या—हे सीते ! (हे जानकि !) यथा (येन प्रकारेण) त्वाम् वक्ष्यामि (कथयिष्यामि) हे अबले (हे निर्बले !) त्वया (सीतया) तथा (तेन प्रकारेण) कार्यम् (कर्त्तव्यम्) हि (यतः) वने (कानने) वसतः (निवसतः) बहवः (अनेके) दोषाः (दूषणानि) तान् (सर्वान्) मे (मत्तः) निबोध (जानीहि) ।

व्युत्पत्तिः—नास्ति बलं यस्याः सा अबला तत्सम्बुद्धौ (बहु०) ।

संस्कृतार्थः—हे सीते ! त्वां यथाऽहं वदामि तथा त्वया कर्तव्यम्, वने वसतः नाना कष्टानि भवन्ति । तानि शृणु ।

वाच्यान्तरम्—यथा मया वक्ष्यते तथा त्वं कुरु··· ।

भावार्थः—हे सीते ! मैं जैसे कह रहा हूँ वैसे ही तुम करना । क्योंकि जङ्गल में रहने वाले को बहुत से दुःख उठाने पड़ते हैं । उन्हें सुनो ॥ ४ ॥

सीते ! विमुच्यतामेषा वनवासकृता मतिः ।
बहुदोषं हि कान्तारं वनमित्यभिधीयते ॥ ५ ॥

पदच्छेदः—सीते, विमुच्यताम्, एषा, वनवासकृता, मतिः, बहुदोषम्, हि, कान्तारम्, वनम्, इति, अभिधीयते ।

अन्वयः—हे सीते !, एषा, वनवासकृता, मतिः, विमुच्यताम्, हि, बहुदोषम्, कान्तारम्, वनम्, इति, अभिधीयते ।

व्याख्या—हे सीते ! (हे जानकि !) एषा (इयम्) वनवासकृता (वनवासनिमित्ता) मतिः (बुद्धिः) विमुच्यताम् (त्यज्यताम्) हि (यतः) बहुदोषम् (नानादोषपूर्णम्) कान्तारम् वनम् इति (वननाम्ना) अभिधीयते (कथ्यते) ।

व्युत्पत्तिः—वने वासः वनवासः तस्मै कृता (तत्पु०) बहवः दोषाः यस्मिन् तत् (बहु०) ।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

संस्कृतार्थः—हे सीते ! त्वं वनवासाग्रहम् त्यज । यतो हि बहुदोषकान्तारस्यैव वनमिति संज्ञा ।

वाच्यान्तरम्—एतां वनवासकृतां मतिं विमुञ्च। बहुदोषेण वनेन अभिधीयते।

भावार्थः—हे सीते ! तुम अपने इस वन जाने के आग्रह को छोड़ दो। क्योंकि बहुत दोष हों जिसमें उसे ही वन कहते हैं ॥ ५ ॥

हितबुद्ध्या खलु वचो मयैतदभिधीयते ।
सदा सुखं न जानामि दुःखमेव सदा वनम् ॥ ६ ॥

पदच्छेदः—हितबुद्ध्या, खलु, वचः, मया, एतद्, अभिधीयते, सदा, सुखम्, न, जानामि, दुःखम्, एव, सदा, वनम् ।

अन्वयः—मया, खलु, हितबुद्ध्या, एतद्, वचः, अभिधीयते, सदा, सुखम्, न, जानामि, वनम्, सदा, दुःखम्, एव ।

व्याख्या—मया (रामेण) खलु (निश्चयेन) हितबुद्ध्या (हितेच्छया) एतद् (इदम्) वचः (वाक्यम्) अभिधीयते (कथ्यते) सदा (सर्वदा) सुखम् (सुखदम्) न (नैव) जानामि (अवगच्छामि) वनम् (काननम्) सदा (सर्वदा) दुःखम् (दुःखजनकम्) एव (निश्चयेन) ।

व्युत्पत्तिः—हितस्य बुद्धिः हितबुद्धिः तया (तत्पु०) ।

संस्कृतार्थः—हे सीते ! इदम् मया त्वदीयहितेच्छया कथ्यते, वनं सदा दुःखदमेव, न सुखकरमिति ।

वाच्यान्तरम्—अहम् हितबुद्ध्या इदम् अभिदधे। वनेन सदा दुःखेन भूयते।

भावार्थः—हे जानकि ! मैं तुम्हारे हित की दृष्टि से यह कह रहा हूं। वन सदा ही दुःख दिया करता है कभी भी सुख नहीं ॥ ६ ॥

गिरिनिर्झरसम्भूता गिरिनिर्दरिवासिनाम् ।
सिंहानां निनदा दुःखाः श्रोतुं दुःखमतो वनम् ॥ ७ ॥

पदच्छेदः—गिरिनिर्झरसम्भूताः, गिरिनिर्दरिवासिनाम्, सिंहानाम्, निनदाः, दुःखाः, श्रोतुम्, दुःखम्, अतः, वनम् ।

अन्वयः—गिरिनिर्दरिवासिनाम्, सिंहानाम्, गिरिनिर्झरसंभूताः, निनदाः, श्रोतुम्, दुःखाः, अतः, वनम्, दुःखम् ।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

व्याख्या—गिरिनिर्दरिवासिनाम् (पर्वतकन्दरनिवासानाम्) सिंहानाम् (शार्दूलानाम्) गिरिनिर्झरसम्भूताः (पर्वतकन्दरोत्पन्नाः) निनदाः (शब्दाः) श्रोतुम् (आकर्णयितुम्) अपि दुःखाः (दुःखदाः) अतः (एतस्मात् कारणात्) वनम् (काननम्) दुःखम् (दुःखदम्) एव ।

व्युत्पत्तिः—गिरिनिर्दरिषु वसन्तीति गिरिनिर्दरिवासिनः तेषाम् । गिरेः निर्झरेभ्यः सम्भूताः (तत्पुरुषः) । दुःखम् इति दुःखदे लक्षणा ।

संस्कृतार्थः—पर्वतकन्दरवासिसिंहानां निर्झरसंहताः भयङ्कराः शब्दाः श्रवणेनापि दुःखं जनयन्ति । अतः वनम् दुःखदमेव ।

वाच्यान्तरम्—गिरिनिर्झरसम्भूतैः निनदैः वनेन दुःखेन भूयते ।

भावार्थः—पर्वत की कन्दराओं में रहनेवाले सिंहों के भयङ्कर शब्द सुने भी नहीं जा सकते, अतः बन दुःखद है ॥ ७ ॥

क्रीडमानाश्च विस्रब्धा मत्ताः शून्ये तथा मृगाः ।
दृष्ट्वा समभिवर्तन्ते सीते ! दुःखमतो वनम् ॥ ८ ॥

पदच्छेदः—क्रीडमानाः, च, विस्रब्धाः, मत्ताः, शून्ये, तथा, मृगाः, दृष्ट्वा, समभिवर्तन्ते, सीते, दुःखम्, अतः, वनम् ।

अन्वयः—हे सीते !, क्रीडमानाः, च, विस्रब्धाः, तथा, मत्ताः, मृगाः, शून्ये, दृष्ट्वा, समभिवर्तन्ते, अतः, वनम्, दुःखम् ।

व्याख्या—हे सीते ! (हे जानकि !) क्रीडमानाः (खेलन्तः) च (पुनः) विस्रब्धाः (निःशङ्काः) तथा मत्ताः (प्रमत्ताः) मृगाः (वन्यहिंसकाः) शून्ये (शून्यस्थाने) दृष्ट्वा (अवलोक्य) समभिवर्तन्ते (हन्तुं सम्मुखमायान्ति) अतः (एतस्मात् कारणात्) वनम् (काननम्) दुःखम् (दुःखजनकम्) ।

व्युत्पत्तिः—क्रीडन्ते इति क्रीडमानाः ।

संस्कृतार्थः—हे जानकि ! कानने मत्ताः खेलन्तः मृगाः शून्यस्थाने मनुष्यम् दृष्ट्वा हन्तुं धावन्ति । अतः वनं दुःखजनकम् ।

वाच्यान्तरम्—क्रीडमानैः विस्रब्धैः शून्ये समभिवर्त्यते… ।

भावार्थः—हे सीते ! जंगल में बहुत से निर्भय तथा मस्त घूमनेवाले हिंसक

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

जानवर मनुष्य को शून्य स्थान में देखकर मारने के लिए दौड़ते हैं। अतः वन सर्वथा दुःखद है ॥ ८ ॥

सग्राहाः सरितश्चैव पङ्कवत्यस्तु दुस्तराः ।
मत्तैरपि गजैर्नित्यमतो दुःखतरं वनम् ॥ ९ ॥

पदच्छेदः—सग्राहाः, सरितः, च, एव, पङ्कवत्यः, दुस्तराः, मत्तैः, अपि, गजैः, नित्यम्, अतः, दुःखतरम्, वनम् ।

अन्वयः—पङ्कवत्यः, सग्राहाः, च, एव, सरितः, दुस्तराः, मत्तैः, गजैः, अपि, नित्यम्, (युक्तम्) अतः, वनम्, दुःखतरम् ।

व्याख्या—पङ्कवत्यः (पङ्कयुक्ताः) सग्राहाः (ग्राहसंवलिताः) च (पुनः) एव (अतः) दुस्तराः (तर्तुमशक्याः) अथ च मत्तैः (प्रमत्तैः) गजैः (हस्तिभिः) अपि नित्यम् (सर्वथा) युक्तम्, अतः वनम् (काननम्) दुःखतरम् (अतिदुःखजनकम्) ।

व्युत्पत्तिः—ग्राहैः सहिताः सग्राहाः । दुःखेन तीर्यन्ते इति दुस्तराः । अतिशयेन दुःखम् दुःखतरम् ।

संस्कृतार्थः—कानने ग्राहयुक्ताः पङ्किलाः नद्यः अपि दुस्तरा भवन्ति । अथ च वनम् प्रमत्तगजैः अपि सङ्कुलम् भवतीति सर्वथा दुःखदम् ।

वाच्यान्तरम्—पङ्कवतीभिः सग्राहाभिः दुस्तराभिर्भूयते । अतः दुःखतरेण वनेन……।

भावार्थः—जङ्गल की नदियाँ घड़ियालों तथा कीचड़ से पूर्ण होने के कारण पार नहीं की जा सकतीं । साथही बड़े बड़े मतवाले हाथियों से युक्त भी रहता है । अतः वन सर्वथा दुःखदायक है ॥ ९ ॥

लताकण्टकसङ्कीर्णाः कृकवाकूपनादिताः ।
निरपाश्च सुदुःखाश्च मार्गा दुःखमतो वनम् ॥१०॥

पदच्छेदः—लताकण्टकसङ्कीर्णाः, कृकवाकूपनादिताः, निरपाः, च, सुदुःखाः, च, मार्गाः, दुःखम्, अतः, वनम् ।

अन्वयः—लताकण्टकसङ्कीर्णाः, कृकवाकूपनादिताः, निरपाः, च, सुदुःखाः, च, मार्गाः, अतः, वनम्, दुःखम् ।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

व्याख्या—लताकण्टकसङ्कीर्णाः (लताकण्टकादिव्याप्ताः) कृकवाकूपनादिताः, (वनकुक्कुटशब्दिताः) निरपाः (निर्जलाः) च (पुनः) सुदुःखाः (दुःखमयाः) च मार्गाः (पन्थानः) यतः अतः वनम् (काननम्) दुःखम् (दुःखजनकम्) ।

व्युत्पत्तिः—लताश्च कण्टकाश्च तैः सङ्कीर्णाः । कृकवाकुभिः उपनादिताः (तृ० त०) । निर्गताः आपः येभ्यः ते ।

संस्कृतार्थः—वने लताकण्टकादिवृताः वनकुक्कुटशब्दिताः निर्जलाः मार्गा भवन्ति । अतः तत् दुःखजनकम् ।

वाच्यान्तरम्—निरपैः मार्गैः भूयते……अतः…… ।

भावार्थः—जङ्गल के मार्ग लता कण्टक इत्यादि से पूर्ण तथा निर्जल रहते हैं । अतः वन को दुःखद ही जानना चाहिए ॥ १० ॥

सुप्यते पर्णशय्यासु स्वयंभग्नासु भूतले ।
रात्रिषु श्रमखिन्नेन तस्मात् दुःखमतो वनम् ॥ ११ ॥

पदच्छेदः—सुप्यते, पर्णशय्यासु, स्वयम्, भग्नासु, भूतले, रात्रिषु, श्रमखिन्नेन, तस्माद्, दुःखम्, अतः, वनम् ।

अन्वयः—रात्रिषु, श्रमखिन्नेन, भूतले, स्वयम्, भग्नासु, पर्णशय्यासु, सुप्यते, तस्मात्, अतः, वनम्, दुःखम् ।

व्याख्या—रात्रिषु (निशासु) श्रमखिन्नेन (परिश्रमदुःखितेन) भूतले (पृथ्वीतले) स्वयम् (आत्मना) भग्नासु (पतितासु) पर्णशय्यासु (पत्रशयनेषु) सुप्यते (शीयते) तस्मात् (कारणात्) वनम् (काननम्) दुःखम् (दुःखजनकम्) अतः इत्यार्षम् ।

व्युत्पत्तिः—श्रमेण खिन्नः तेन । पर्णानां शय्याः तासु । भुवः तलम् तस्मिन् (सर्वत्र तत्पु०) ।

संस्कृतार्थः—हे प्रिये ! वने शय्यापि नास्ति, श्रान्तः पर्णशय्यासु शेते । अतः वनम् सर्वथा दुःखम् ।

वाच्यान्तरम्—श्रमखिन्नः पर्णशय्यासु शेते……वनेन दुःखेन भूयते ।

भावार्थः—जङ्गल में थका हुआ आदमी पत्तों पर सोता है, अतः जङ्गल दुःखद है ॥ ११ ॥

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अहोरात्रं च सन्तोषः कर्तव्यो नियतात्मना।
फलैर्वृक्षावपतितैः सीते! दुःखमतो वनम्॥ १२॥

पदच्छेदः—अहोरात्रम्, च, सन्तोषः, कर्त्तव्यः, नियतात्मना, फलैः, वृक्षावपतितैः, सीते, दुःखम्, अतः, वनम्।

अन्वयः—हे सीते!, वृक्षावपतितैः, फलैः, नियतात्मना, अहोरात्रम्, च, सन्तोषः, कर्तव्यः, अतः, वनम्, दुःखम्।

व्याख्या—हे सीते! (हे जानकि!) वृक्षावपतितैः (तरुपतितैः) फलैः नियतात्मना (संयतात्मना) अहोरात्रम् (रात्रिन्दिवम्) सन्तोषः (तोषः) कर्तव्यः (करणीयः) अतः (एतस्मात् कारणात् अपि) वनम् (काननम्) दुःखम् (दुःखजनकम्)।

व्युत्पत्तिः—वृक्षेभ्यः अवपतितानि तैः (तत्पु०)। नियतः आत्मा यस्य तेन (बहु०)। रात्रिश्च अहश्च अहोरात्रम् (समाहारः)।

संस्कृतार्थः—हे सीते! वृक्षेभ्यः पतितैः फलैः नियतात्मना अहर्निशम्, सन्तोषः करणीयः भवति। एतस्मात् कारणात् वनम् दुःखजनकम्।

वाच्यान्तरम्—वृक्षावपतितैः फलैः नियतात्मा सन्तोषं कुर्यात्, अतः वनेन दुःखेन।

भावार्थः—पेड़ों से गिरे हुए फलों द्वारा अपनी आत्मा को संयत बनाकर रात दिन सन्तोष करना पड़ता है। अतः वन दुःखद है॥ १२॥

उपवासश्च कर्त्तव्यो यथाप्राणेन मैथिलि।
जटाभारश्च कर्त्तव्यो वल्कलाम्बरधारणात्!॥ १३॥

पदच्छेदः—उपवासः, च, कर्त्तव्यः, यथाप्राणेन, मैथिलि, जटाभारः, च, कर्त्तव्यः, वल्कलाम्बरधारणात्।

अन्वयः—हे मैथिलि!, यथाप्राणेन, उपवासः, च, कर्त्तव्यः, वल्कलाम्बरधारणात्, जटाभारः, च, कर्त्तव्यः।

व्याख्या—हे मैथिलि! (हे जानकि!) यथाप्राणेन (यथाबलानुसारेण) उपवासः (उपोषणम्) च कर्त्तव्यः (विधेयम्) वल्कलाम्बरधारणात् (वल्कलवसनपरिधानात्) जटाभारः (सटास्थापनम्) अपि कर्त्तव्यः (कार्यम्) इति।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

व्युत्पत्तिः—प्राणम् अनतिक्रम्य यथाप्राणम् तेन (अव्य०) । वल्कलाम्बरधारणात् वल्कलान्येव अम्बराणि तेषां धारणम् तस्मात् (तत्पु०) ।

संस्कृतार्थः—हे प्रिये ! बलानुसारेण उपवासकरणम्, वल्कलपरिधानं जटास्थापनञ्च तत्र वने आवश्यकम् भवति । तत्तुभ्यं कथं रोचेत ? ।

वाच्यान्तरम्—यथाप्राणम् उपवासम् कुर्यात्, जटाभारम् कुर्यात् ।

भावार्थः—हे प्रिये ! शक्ति के अनुसार उपवास तथा पेड़ों की छाल पहनना एवं जटा रखाना आवश्यक होता है । कहो तुम्हें कैसे पसन्द आयेगा ? ॥ १३ ॥

देवतानां पितॄणां च कर्तव्यं विधिपूर्वकम् ।
प्राप्तानामतिथीनां च नित्यशः प्रतिपूजनम् ॥ १४ ॥

पदच्छेदः—देवतानाम्, पितृणाम्, च, कर्त्तव्यम्, विधिपूर्वकम्, प्राप्तानाम्, अतिथीनाम्, च, नित्यशः, प्रतिपूजनम् ।

अन्वयः—देवतानाम्, पितृणाम्, प्राप्तानाम्, अतिथीनाम्, च, नित्यशः, विधिपूर्वकम्, प्रतिपूजनम्, कर्त्तव्यम् ।

व्याख्या—देवतानाम् (शिवादीनाम्) पितृणाम् (स्वपूर्वपुरुषाणाम्) प्राप्तानाम् (काले समागतानाम्) अतिथीनाम् (अभ्यागतानाम्) च नित्यशः (सर्वदा) विधिपूर्वकम् (सविधि) प्रतिपूजनम् (स्वागतम्) कर्तव्यम् (विधेयम्) भवति ।

व्युत्पत्तिः—विधिः पूर्वो यस्मिन् तत् (बहु०) ।

संस्कृतार्थः—हे प्रिये ! देवतानाम्, पितृगणानाम्, अतिथीनां च सत्कारः सविधि करणीयः भवति ।

वाच्यान्तरम्—विधिपूर्वकम् देवादीनां पूजनं कुर्यात् ।

भावार्थः—हे प्रिये ! जङ्गल में भी देवगण, पितृगण तथा आए हुए अतिथियों का विधिपूर्वक पूजन करना पड़ता है ॥ १४ ॥

कार्यस्त्रिरभिषेकश्च काले काले च नित्यशः ।
चरतां नियमेनैव तस्माद् दुःखतरं वनम् ॥ १५ ॥

पदच्छेदः—कार्यः, त्रिः, अभिषेकः, च, काले, काले, च, नित्यशः, चरताम्, नियमेन, एव, तस्माद्, दुःखतरम्, वनम् ।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अन्वयः—काले, काले, नियमेन, एव, चरताम्, नित्यशः, त्रिः, अभिषेकः, च, कार्यः, तस्मात्, वनम्, दुःखतरम्।

व्याख्या—काले काले (प्रातःकालादौ) नियमेन एव (नियमतः) चरताम् (कालक्षेपम् कुर्वताम्) नित्यशः (प्रतिदिनम्) त्रिः (त्रिवारम्) अभिषेकः (अभिषेकणम्) च (पुनः) कार्यः (कर्त्तव्यम्) तस्मात् (हेतोः) वनम् (अरण्यम्) दुःखतरम् (अतिदुःखदम्)।

व्युत्पत्तिः—चरन्ति इति चरन्तः तेषाम्। अतिशयेन दुःखम् दुःखतरम्।

संस्कृतार्थः—प्रातःकालादौ नियमेन कालक्षेपं कुर्वतां त्रिवारम् अभिषवणं च कर्त्तव्यम् भवति। अतोऽपि वनं अतिदुःखदम्।

वाच्यान्तरम्—काले काले चरतां त्रिः अभिषेकं कुर्यात्...।

भावार्थः—प्रातः काल आदि समयों में चलनेवालों का तीन अभिषव करना पड़ता है। इसलिए भी वन अति दुःखद है ॥ १५ ॥

उपहारश्च कर्त्तव्यः कुसुमैः स्वयमाहृतैः।
आर्षेण विधिना वेद्यां सीते! दुःखमतो वनम् ॥ १६ ॥

पदच्छेदः—उपहारः, च, कर्त्तव्यः, कुसुमैः, स्वयम्, आहृतैः, आर्षेण, विधिना, वेद्याम्, सीते, दुःखम्, अतः, वनम्।

अन्वयः—हे सीते!, स्वयम्, आहृतैः, कुसुमैः, आर्षेण, विधिना, वेद्याम्, उपहारः, कर्त्तव्यः, अतः, वनम्, दुःखम्।

व्याख्या—हे सीते! (हे जानकि!) स्वयम् (निजेन) आहृतैः (सञ्चितैः) कुसुमैः (पुष्पैः) आर्षेण (उञ्छादिना) विधिना (विधानेन) वेद्याम् (वेदिमध्ये) उपहारः (पूजा) कर्त्तव्यः (कार्या) भवति। अतः (एतस्मात् कारणात्) वनम् (अरण्यम्) दुःखम् (दुःखजनकम्)।

व्युत्पत्तिः—ऋषीणामयमिति आर्षः तेन।

संस्कृतार्थः—हे सीते! स्वयम् कुसुमानि अवचित्य उञ्छादिवृत्त्या वेद्याम् पूजा कार्या भवति। तस्माद् वनं दुःखदम्।

वाच्यान्तरम्—स्वयम्...पूजा कुर्यात्...।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

भावार्थः—हे सीते ! अपने आप फूल तोड़ कर आर्ष विधि से वेदी पर पूजा करनी पड़ती है । इस लिए भी वन दुःखद है ॥ १६ ॥

यथालब्धेन कर्तव्यः सन्तोषस्तेन मैथिलि ! ।
यथाहारैर्वनचरैः सीते ! दुःखमतो वनम् ॥ १७ ॥

पदच्छेदः—यथालब्धेन, कर्त्तव्यः, सन्तोषः, तेन, मैथिलि, यथाहारैः, वनचरैः, सीते, दुःखम् , अतः, वनम् ।

अन्वयः—हे मैथिलि !, यथालब्धेन, तेन, सन्तोषः कर्त्तव्यः, हे सीते, यथाहारैः, वनचरैः, अतः, वनम् , दुखम् ।

व्याख्या—हे मैथिलि ! (हे वैदेहि !) यथालब्धेन (यथाप्राप्तेन) तेन (भोजनेन) सन्तोषः (तृप्तिः) कर्त्तव्यः (कार्या) यथाहारैः (यथालब्धाहारैः) वनचरैः (वनवासिभिः) भवितव्यम् । अतः वनम् दुःखम् ।

व्युत्पत्तिः—लब्धम् अनतिक्रम्य यथालब्धम् तेन । यथालब्धः आहारः येषां ते यथाहाराः तैः (अव्ययी० ग०) । वने चरन्तीति वनचराः तै (तत्पुरुषः) ।

संस्कृतार्थः—हे जानकि ! वनवासिभिः प्राप्तमन्त्रेण भोजनेन सन्तोषः कर्त्तव्यः । अतोऽपि वनं दुःखदमेव ।

वाच्यान्तरम्—यथालब्धेन सन्तोषं कुर्यात्…।

भावार्थः—हे जानकि ! वन के रहने वालों को जितना ही भोजन मिल जाय उतने से ही सन्तोष करना पड़ता है । इस लिए भी वन दुःखद है ॥१७॥

अतीव वातस्तिमिरं बुभुक्षा चास्ति नित्यशः ।
भयानि च महान्त्यत्र अतो दुःखतरं वनम् ॥१८॥

पदच्छेदः—अतीव, वातः, तिमिरम् , बुभुक्षा, च, अस्ति, नित्यशः, भयानि, च, महान्ति, अत्र, अतः, दुःखतरम् , वनम् ।

अन्वयः—अत्र, अतीव, वातः, तिमिरम् , बुभुक्षा, च, नित्यशः, महान्ति, भयानि, च, अतः, वनम् , दुःखतरम् ।

व्याख्या—अत्र (वने) अतीव (अत्यन्तः) वातः (वायुः) तिमिरम् (अन्धकारः) बुभुक्षा (क्षुत्) च (पुनः) नित्यशः (प्रतिक्षणम्) महान्ति

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

(सुहन्ति) भयानि (भीतयः) च (यतः) अतः (एतस्मात् कारणात्) वनम् (काननम्) दुःखतरम् (अतिदुःखदम्) न गन्तव्यं त्वयेति हृदयम् ।

व्युत्पत्तिः–अति इव अतीव (अव्ययी०) । अतिशयेन दुःखम् दुःखतरम् । भोक्तुमिच्छा बुभुक्षा ।

संस्कृतार्थः—हे सीते ! कानने वायुः, बुभुक्षा, रात्रौ अन्धकारः, प्रतिक्षणम् महान्ति भयानि च दुःखदानि सन्ति । अतः कथं त्वया गन्तव्यम् ।

वाच्यान्तरम्—वातेन, तिमिरेण महद्भिर्भयैः च स्थीयते···।

भावार्थः—हे जानकि ! उस जङ्गल में, बड़ी हवा, रात में बड़ा अंधेरा, हर वक्त बड़ा भय रहता है । इसलिए वन अत्यन्त दुःखद है । तुम्हें न जाना चाहिए ॥ १८ ॥

सरीसृपाश्च बहवो बहुरूपाश्च भामिनि ! ।
चरन्ति पथि ते दर्पात्ततो दुःखतरं वनम् ॥१९॥

पदच्छेदः—सरीसृपाः, च, बहवः, बहुरूपाः, च, भामिनि, चरन्ति, पथि, ते, दर्पात्, ततः, दुःखतरम्, वनम् ।

अन्वयः—हे भामिनि !, पथि, बहुरूपाः, बहवः, सरीसृपाः, च, दर्पात्, चरन्ति, ततः, वनम्, दुःखतरम् ।

व्याख्या—हे भामिनि ! (हे जाये !) पथि (काननमार्गे) बहुरूपाः (नानारूपाः) बहवः (बहुसंख्याकाः) सरीसृपाः (सर्पाः) च (पुनः) दर्पात् (मदात्) चरन्ति (गच्छन्ति) ततः (तस्मात्) वनम् (अरण्यम्) दुःखतरम् (अतिदुःखदम्) ।

व्युत्पत्तिः—तस्मात् इति ततः । पञ्चम्यास्तसिल् ।

संस्कृतार्थः—हे सीते ! काननमार्गे नानाविधाः प्रमत्ताः बहवः सर्पाः चलन्ति । अतः वनम् अतिदुःखदम्, न गन्तव्यं त्वयेति ।

वाच्यान्तरम्—बहुरूपैः बहुभिः सरीसृपैः पथि चर्यते···।

भावार्थः—हे सीते ! जङ्गल के रास्तों पर अनेक प्रकार के बहुत से साँप चलते रहते हैं । अतः वहाँ बड़ा ही दुःख है ॥ १९ ॥

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

नदीनिलयनाः सर्पा नदीकुटिलगामिनः ।
तिष्ठन्त्यावृत्य पन्थानमतो दुःखतरं वनम् ॥२०॥

पदच्छेदः—नदीनिलयनाः, सर्पाः, नदीकुटिलगामिनः, तिष्ठन्ति, आवृत्य, पन्थानम्, अतः, दुःखतरम्, वनम् ।

अन्वयः—नदीनिलयनाः, नदीकुटिलगामिनः, सर्पाः, पन्थानम्, आवृत्य, तिष्ठन्ति, अतः, वनम्, दुःखतरम् ।

व्याख्या—नदीनिलयनाः (सरिद्वासाः) नदीकुटिलगामिनः (सरित्कुटिलगतयः) सर्पाः (नागाः) पन्थानम् (मार्गम्) आवृत्य (आच्छाद्य) तिष्ठन्ति (उपविशन्ति) अतः (हेतोः) वनम् (काननम्) दुःखतरम् (अतिदुःखजनकम्) ।

व्युत्पत्तिः—नदीनिलयनं येषां ते (बहु०) । नदीव कुटिलं गच्छन्ति इति (तत्पु०) ।

संस्कृतार्थः—नदीनिवासाः नदीव कुटिलगन्तारः सर्पाः मार्गमावृत्य तिष्ठन्ति । अतः वनमतिदुःखम् ।

वाच्यान्तरम्—नदीनिलयनैः…स्थीयते…।

भावार्थः—हे सीते ! नदी में ही रहने वाले, नदी की तरह टेढ़ी चाल से चलने वाले साँप रास्ते को घेर कर बैठ जाते हैं । अतः वन दुःखद है ॥२०॥

पतङ्गा वृश्चिकाः कीटाः दंशाश्च मशकैः सह ।
बाधन्ते नित्यमबले सर्वं दुःखमतो वनम् ॥२१॥

पदच्छेदः—पतङ्गाः, वृश्चिकाः, कीटाः, दंशाः, च, मशकैः सह, बाधन्ते, नित्यम्, अबले, सर्वम्, दुःखम्, अतः, वनम् ।

अन्वयः—हे अबले !, पतङ्गाः वृश्चिकाः, कीटाः, मशकैः, सह, दंशाः, च, नित्यम्, बाधन्ते, अतः, सर्वम्, वनम्, दुःखम् ।

व्याख्या—हे अबले ! (हे सीते !) पतङ्गाः (पक्षिणः) वृश्चिकाः, कीटाः (कृमयः) मशकैः सह (सार्द्धम्) दंशाः च नित्यम् (प्रत्यहम्) बाधन्ते (दुःखयन्ति) अतः (अस्मात् हेतोः) सर्वम् (निखिलम्) वनम् (काननम्) दुःखम् (दुःखजनकम्) अस्तीति शेषः ।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

व्युत्पत्तिः—नास्ति स्वापन्निवारणार्थं बलं यस्याः सा तत्सम्बुद्धौ (बहु०)।

संस्कृतार्थः—हे सीते ! तत्र पक्षिणः वृश्चिकदंशादयो हिंसकाश्च क्षुद्रा जन्तवः नित्यम् दुःखीकुर्वन्ति । अतः सर्वम् वनम् दुःखपूर्णम् ।

वाच्यान्तरम्—पतङ्गैः वृश्चिकैः मशकैः······नित्यम् बाध्यते··अतः······।

भावार्थः—हे सीते ! वहाँ पर पक्षियाँ, मच्छर, दंश तथा नाना प्रकार के कीड़े काटते रहते हैं। अतः कोई भी वन सुखद नहीं, किन्तु दुःख देनेवाला ही है॥२१॥

द्रुमाः कण्टकिनश्चैव कुशाः काशाश्च भामिनि ! ।
वने व्याकुलशाखाग्रास्तेन दुःखमतो वनम् ॥२२॥

पदच्छेदः—द्रुमाः, कण्टकिनः, च, एव, कुशाः, काशाः, च, भामिनि, वने, व्याकुलशाखाग्राः, तेन, दुःखम् , अतः, वनम् ।

अन्वयः—हे भामिनि !, वने, कण्टकिनः, द्रुमाः, कुशाः, काशाः, च, एव, व्याकुलशाखाग्राः, (तेन) अतः, वनम् , दुःखम् ।

व्याख्या—हे भामिनि ! (हे सीते !) वने (कानने) कण्टकिनः (कण्टकयुताः) द्रुमाः (वृक्षाः) कुशाः (दर्भाः) काशाः च (पुनः) एव व्याकुलशाखाग्राः (व्याकुलशाखाग्रभागाः) सन्ति (तेन) अतः (अस्मात् कारणात्) वनम् (अरण्यम्) दुःखम् (दुःखजनकम्) तेन इति आर्षम् ।

व्युत्पत्तिः—व्याकुलाः शाखाग्राः येषां ते (बहु०) ।

संस्कृतार्थः—हे सीते ! वने कुशकाशादयः तथा अन्ये कण्टकाकीर्णाः वृक्षाः वायुवेगेन कम्पन्ते । अतः वनम् दुःखदमेव ।

वाच्यान्तरम्—द्रुमैः कण्टकिभिः व्याकुलाग्रैः भूयते······।

भावार्थः—हे सीते ! जङ्गल में कुश तथा काँटेदार पेड़ हर समय वायु के झकोरों से हिलते रहते हैं । अतः सर्वथा वहाँ दुःख ही है ॥२२॥

कायक्लेशाश्च बहवो भयानि विविधानि च ।
अरण्यवासे वसतो दुःखमेव सदा वनम् ॥२३॥

पदच्छेदः—कायक्लेशाः, च, बहवः, भयानि, विविधानि, च, अरण्यवासे, वसतः, दुःखम् , एव, सदा, वनम् ।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अन्वयः—हे जानकि !, अरण्यवासे, वसतः, बहवः, कायक्लेशाः, च, विविधानि, भयानि, वनम् , सदा, दुःखम् , एव ।

व्याख्या—हे जानकि ! अरण्यवासे (काननिवासे) वसतः (निवसतः) बहवः (बहुसंख्याः) कायक्लेशाः (शरीरदुःखानि) च (पुनः) विविधानि (नानाप्रकाराणि) भयानि (भीतयः) च अतः (एतस्मात् कारणात्) वनम् (काननम्) सदा (सर्वदा) दुःखम् (दुःखदम्) एव ।

व्युत्पत्तिः—अरण्ये वासः तस्मिन् । कायस्य क्लेशाः (तत्पु०) दुःखम् दुःखजनके लाक्षणिकम् । दुःखमस्ति अस्मिन्निति अर्श आद्यजन्तं वा ।

संस्कृतार्थः—हे जानकि ! कानने निवासिनः नानाशरीरक्लेशाः, नानाभयानि च उत्पद्यन्ते । अतः वनं सदा दुःखदमेव ।

वाच्यान्तरम्—बहुभिः कायक्लेशैः विविधैः भयैः च भूयते··· ।

भावार्थः—हे जानकि ! जंगल में रहनेवाले को नाना प्रकार के शारीरिक दुःख तथा अनेक प्रकार के भय होते हैं । अतः उसे सर्वदा दुःखद जानो ॥२३॥

क्रोधलोभौ विमोक्तव्यौ कर्तव्या तपसे मतिः ।
न भेतव्यं च भेतव्ये दुःखं नित्यमतो वनम् ॥२४॥

पदच्छेदः—क्रोधलोभौ, विमोक्तव्यौ, कर्तव्या, तपसे, मतिः, न, भेतव्यम् , च, भेतव्ये, दुःखम् , नित्यम् , अतः, वनम् ।

अन्वयः—क्रोधलोभौ, विमोक्तव्यौ, तपसे, मतिः, कर्त्तव्या, भेतव्ये, च, न, भेतव्यम् , अतः, वनम् , नित्यम् , दुःखम् ।

व्याख्या—क्रोधलोभौ (अमर्षलिप्से) विमोक्तव्यौ (मोचनीयौ) तपसे (तपस्यायै) मतिः (बुद्धिः) कर्त्तव्या (करणीया) भवति । भेतव्ये (भेतव्यविषये) च (पुनः) न, भेतव्यम् (भयं कर्त्तव्यम्) अतः (अस्मात् कारणात्) वनम् (काननम्) नित्यम् (अजस्रम्) दुःखम् (दुःखदम्) ।

व्युत्पत्तिः—क्रोधश्च लोभश्च क्रोधलोभौ (द्व०)

संस्कृतार्थः—हे भामिनि ! अरण्यं गत्वा क्रोधलोभौ विहाय तपस्यायै बुद्धिर्योजनीया, भयजनकस्थाने च भयं न कर्त्तव्यम् , अतः वनगमनं दुःखमेव ।

वाच्यान्तरम्—तपसे मतिं कुर्यात्··· ।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

भावार्थः—हे सीते ! जंगल जाकर क्रोध तथा लोभ को त्याग कर तपस्या में बुद्धि को लगावे। साथही भय की जगह भय भी न करे। इस लिए जंगल में इतना संयम करना दुःखही है ॥२४॥

तदलं ते वनं गत्वा क्षेमं नहि वनं तव।
विमृशन्निव पश्यामि बहुदोषकरं वनम् ॥२५॥

पदच्छेदः—तत्, अलम्, ते, वनम्, गत्वा, क्षेमम्, न, हि, वनम्, तव, विमृशन्, इव, पश्यामि, बहुदोषकरम्, वनम्।

अन्वयः—तत्, ते, वनम्, गत्वा, अलम्, हि, विमृशन्, इव, वनम्, क्षेमम्, न, पश्यामि, वनम्, बहुदोषकरम्।

व्याख्या—तत् (तस्मात् कारणात्) ते (त्वया) वनम् (अरण्यम्) गत्वा (व्रजित्वा) अलम् (न गन्तव्यमिति भावः) हि (यतः) विमृशन् (विचारयन्) इव वनम् (काननम्) क्षेमम् (कल्याणदम्) न (नैव) पश्यामि (अवलोकये) यतो हि वनम् (अरण्यम्) बहुदोषकरम् (अनेकदोषजनकम्) भवति।

व्युत्पत्तिः—बहवः दोषाः बहुदोषाः तान् करोतीति बहुदोषकरम् (तत्पु०)।

संस्कृतार्थः—हे सीते ! अहं सम्यग् विचार्य वदामि यद् वनयात्रायाः आग्रहं त्यज। यतो हि नानादुःखानि बहवश्च दोषाः वने भवन्ति।

वाच्यान्तरम्—विमृशता क्षेमो न दृश्यते वनेन बहुदोषकरेण भूयते।

भावार्थः—हे सीते ! मैंने बहुत विचार कर देखा है कि वन जाना किसी प्रकार से अच्छा नहीं है। क्योकि वहाँ बहुत से कष्ट तथा दुःख उठाने पड़ेंगे। अतः तुम्हारा वन जाना ठीक नहीं ॥२५॥

वनं तु नेतुं न कृता मतिर्यदा बभूव रामेण तदा महात्मना।
न तस्य सीता वचनं चकार तं ततोऽब्रवीद्राममिदं सुदुःखिता ॥२६॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्येऽयोध्याकाण्डे-
ऽष्टाविंशः सर्गः ॥ २८ ॥

पदच्छेदः—वनम्, तु, नेतुम्, न, कृता, मतिः, यदा, बभूव, रामेण, तदा, महात्मना, न, तस्य, सीता, वचनम्, चकार, तम्, ततः, अब्रवीत्, रामम्, इदम्, सुदुःखिता।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अन्वयः—यदा, महात्मना, रामेण, वनम्, नेतुम्, मतिः, न, कृता, बभूव, तदा, सुदुःखिता, सीता, तस्य, वचनम्, न, चकार, ततः, तम्, (रामम्) इदम्, अब्रवीत् ।

व्याख्या—यदा (यस्मिन् समये) महात्मना (महापुरुषेण) रामेण (रामचन्द्रेण) वनम् (काननम्) नेतुम् (सहनेतुम्) मतिः (बुद्धिः) न (नैव) कृता (स्वीकृता) बभूव (अभूत्) तदा (तदानीम्) सुदुःखिता (अतिदुःखिता) सीता (जानकी) तस्य (रामस्य) वचनम् (वचः) न (नैव) चकार (स्वीचकार) ततः (तस्मात्) तम् (प्रसिद्धम्) रामम् (स्वपतिम्) इदम् (वक्ष्यमाणम्) अब्रवीत् (उवाच) ।

व्युत्पत्तिः—महान् आत्मा यस्य तेन (बहु०) । सुष्ठु दुःखिता सुदुःखिता (कर्म०) ।

संस्कृतार्थः—यदा रामः सीतां वने नेतुं नैच्छत् तदा दुःखवती सीता तम् अवोचत् ।

वाच्यान्तरम्—सुदुःखितया···सीतया···ऊचे ।

भावार्थः—जब महाराज रामचन्द्रजी सीताजी को जङ्गल न ले जाना चाहे तो सीताजी ने उनकी बात न मानी तथा आग्रह कर कहा ॥ २६ ॥

इति वाल्मीकीये रामवनगमने आचार्यश्रीराजनारायणशास्त्रिशुक्लरचितायां प्रभाटीकायां पञ्चमः सर्गः ॥ ५ ॥

——:※:——

अथ षष्ठः सर्गः ।

एतत्तु वचनं श्रुत्वा सीता रामस्य दुःखिता ।
प्रसक्ताश्रुमुखी मन्दमिदं वचनमब्रवीत् ॥ १ ॥

पदच्छेदः—एतत्, तु, वचनम्, श्रुत्वा, सीता, रामस्य, दुःखिता, प्रसक्ताश्रुमुखी, मन्दम्, इदम्, वचनम्, अब्रवीत् ।

अन्वयः—सीता, रामस्य, एतद्, वचनम्, श्रुत्वा, तु, दुःखिता, प्रसक्ताश्रुमुखी, मन्दम्, इदम्, वचनम्, अब्रवीत् ।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

व्याख्या—सीता (जानकी) रामस्य (रामचन्द्रस्य) एतद् (वनगमन-निषेधकम्) वचनम् (वचः) श्रुत्वा (निशम्य) तु दुःखिता (दुःखवती) प्रसक्ताश्रुमुखी (बाष्पनेत्रा) मन्दम् (शनैः) इदम् (वक्ष्यमाणम्) वचनम् (वचः) अब्रवीत् (उवाच) ।

व्युत्पत्तिः—प्रसक्तम् अश्रु यस्मिन् तत् प्रसक्ताश्रु मुखं यस्याः सा (बहु०) ।

संस्कृतार्थः—सीता रामस्य वननिषेधकं वचः निशम्य स-दुःखा रुदती अब्रवीत् ।

वाच्यान्तरम्—सीतया······दुःखितया······ऊचे ।

भावार्थः—सीताजी ने रामजी को वन न चलो ऐसी बातें सुनकर दुःखी हो कहा ॥ १ ॥

ये त्वया कीर्तिता दोषा वने वस्तव्यताम् प्रति ।
गुणानित्येव तान् विद्धि तव स्नेहपुरस्कृता ॥ २ ॥

पदच्छेदः—ये, त्वया, कीर्तिताः, दोषाः, वने, वस्तव्यताम्, प्रति, गुणान्, इति, एव, तान्, विद्धि, तव, स्नेहपुरस्कृता ।

अन्वयः—त्वया, वने, वस्तव्यताम्, प्रति, ये, दोषाः, कीर्तिताः, तान्, गुणान्, इति, एव, विद्धि (यतः) तव, स्नेहपुरस्कृता ।

व्याख्या—त्वया (रामेण) वने (कानने) वस्तव्यताम् (वासिताम्) प्रति ये (सर्वे) दोषाः (दूषणानि) कीर्तिताः (कथिताः) तान् (सर्वान्) गुणान् इति एव (एवमेव) विद्धि (जानीहि) यतः तव (भवतः) स्नेह-पुरस्कृता (प्रेमाग्रेकृता) अस्मि ।

व्युत्पत्तिः—वसतीति वस्तव्यः तस्य भावः वस्तव्यता ताम् । स्नेहेन पुरस्कृता स्नेहपुरस्कृता (तत्पु०) ।

संस्कृतार्थः—हे राम ! भवता वनवासे ये दोषाः वर्णिताः तव स्नेहभाजः मम सर्वे ते गुणाः एव भविष्यन्ति इति जानातु ।

वाच्यान्तरम्—त्वम् वने यान् दोषान् अकीर्तयः ते सर्वे गुणाः······ ।

भावार्थः—हे भगवन् ! आपने वनवास में जो दोष गिनाए हैं वे सभी मेरे लिए गुण का काम करेंगे । क्योंकि मैं तो आपके स्नेह से आगे रहूँगी ॥ २ ॥

मृगाः सिंहा गजाश्चैव शार्दूलाः शरभास्तथा ।
चमराः सृमराश्चैव ये चान्ये वनचारिणः ॥ ३ ॥

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अदृष्टपूर्वरूपत्वात् सर्वे ते तव राघव ! ।
रूपं दृष्ट्वापसर्पेयुस्तव सर्वे हि बिभ्यति ॥ ४ ॥

पदच्छेदः—मृगाः, सिंहाः, गजाः, च, एव, शार्दूलाः, शरभाः, तथा, चमराः, सृमराः, च, एव, ये, च, अन्ये, वनचारिणः, अदृष्टपूर्वरूपत्वात्, सर्वे, ते, तव, राघव, रूपम्, दृष्ट्वा, अपसर्पेयुः, तव, सर्वे, हि, बिभ्यति ।

अन्वयः—हे राघव !, मृगाः, सिंहाः, गजाः, च, एव, शार्दूलाः, तथा, शरभाः, चमराः, च, एव, सृमराः, अन्ये, च, ये, वनचारिणः, ते, सर्वे, अदृष्टपूर्वरूपत्वात्, तव, रूपम्, दृष्ट्वा, अपसर्पेयुः, हि, सर्वे, तव, बिभ्यति ।

व्याख्या—हे राघव ! (हे पतिदेव !) मृगाः (व्याघ्राः) गजाः (मातङ्गाः) च (पुनः) एव शार्दूलाः (द्विपाः) तथा (अथ) शरभाः, चमराः (मृगविशेषाः) च (पुनः) एव सृमराः अन्ये (इतरे) च (पुनः) ये वनचारिणः (वनवासाः जीवाः) ते सर्वे (निखिलाः अपि) अदृष्टपूर्वरूपत्वात् (अनालोचितपूर्वरूपत्वात्) तव (भवतः) रूपम् (शरीरम्) दृष्ट्वा (अवलोक्य) अपसर्पेयुः (पलायेरन्) हि (यतः) सर्वे (निखिलाः) ते (तव) (रामस्य विषये) बिभ्यति (भयमासादयन्ति) ।

व्युत्पत्तिः—वने चरन्तीति वनचारिणः (तत्पु०) । न दृष्टं पूर्वं कदापि रूपं यस्य सः अदृष्टपूर्वरूपः तस्य भावः तत्त्वम् तस्मात् (बहु०) ।

संस्कृतार्थः—हे राम ! गजव्याघ्रादयः एवमन्येऽपि ये वन्याः जन्तवः सन्ति ते सर्वे त्वां दृष्ट्वा पलायनं करिष्यन्ति । यतो हि तैः कदापि ईदृशं रूपं न दृष्टं वर्तते । अथ च त्वत्तः सर्वे भयं गच्छन्ति ।

वाच्यान्तरम्—मृगैः सिंहैः गजैः'''अन्यैः वनचारिभिः अपसर्प्येत''' । सर्वैः भीयते ।

भावार्थः—हे भगवन् ! जङ्गल में हाथी, सिंह, चमर इत्यादि जितने भी जानवर हैं वे आपको देखकर ही भाग जायंगे । क्योंकि ऐसा वीररूप उन सबों ने कभी न देखा होगा । साथही वे सब आप से डरते भी हैं ॥ ३-४ ॥

त्वया च सह गन्तव्यं मया गुरुजनाज्ञया ।
त्वद्वियोगेन मे राम ! त्यक्तव्यमिह जीवितम् ॥ ५ ॥

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

पदच्छेदः—त्वया, च, सह, गन्तव्यम् , मया, गुरुजनाज्ञया, त्वद्वियोगेन, मे, राम, त्यक्तव्यम् , इह, जीवितम् ।

अन्वयः—हे राम !, गुरुजनाज्ञया, मया, च, त्वया, सह, गन्तव्यम् , त्वद्वियोगेन, इह, मे, जीवितम् , त्यक्तव्यम् ।

व्याख्या—हे राम ! (हे राघव !) गुरुजनाज्ञया (गुरुजनादेशेन) मया (सीतया) च (पुनः) त्वया (रामेण) सह (सार्द्धम्) गन्तव्यम् (व्रजनीयम्) अन्यथा त्वद्वियोगेन (तव विरहेण हेतुना) इह (संसारे) मे (मया) जीवितम् (जीवनम्) त्यक्तव्यम् (सर्वथा त्याज्यमेव) प्राणाँस्त्यक्ष्यामीति भावः ।

व्युत्पत्तिः—गुरुजनानाम् आज्ञा तया (ष० त०) । त्वया वियोगः त्वद्वियोगः तेन (तृ० त०) ।

संस्कृतार्थः—हे पतिदेव ! पितृजनादेशेन अहं त्वया सह वनं गमिष्यामि । अन्यथा मरिष्यामि ।

वाच्यान्तरम्—गुरुजनाज्ञया अहं त्वं त्वया सह'''गमिष्यामि ।

भावार्थः—हे राम ! मैं गुरुजनों की आज्ञा लेकर आपके साथ जङ्गल चलूँगी, अन्यथा तुम्हारे विरह में मर जाऊँगी ॥ ५ ॥

नहि मां त्वत्समीपस्थामपि शक्रोऽपि राघव ! ।
सुराणामीश्वरः शक्तः प्रधर्षयितुमोजसा ॥ ६ ॥

पदच्छेदः—न, हि, माम् , त्वत्समीपस्थाम् , अपि, शक्रः, अपि, राघव, सुराणाम् , ईश्वरः, शक्तः, प्रधर्षयितुम् , ओजसा ।

अन्वयः—हे राघव !, हि, माम्, त्वत्समीपस्थाम्, सुराणाम् , ईश्वरः, शक्रः, अपि, ओजसा, प्रधर्षयितुम्, अपि, न, शक्तः ।

व्याख्या—हे राघव ! (हे राम !) हि (यतः) माम् (सीताम्) त्वत्समीपस्थाम् (तव समीपे स्थिताम्) सुराणाम् (देवानाम्) ईश्वरः (स्वामी) शक्रः (इन्द्रः) अपि ओजसा (स्वतेजसा) प्रधर्षयितुम् (भर्त्सयितुम्) अपि न शक्तः (समर्थः) अन्यस्य तु कथैव का ? ।

व्युत्पत्तिः—तव समीपे तिष्ठतीति त्वत्समीपस्था ताम् (तत्पु०) ।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

संस्कृतार्थः—हे राम ! तव समीपे तिष्ठन्तीम् माम् इन्द्रः अपि न भर्त्सयितुं शक्नोति अन्यस्य कस्य शक्तिः ? ।

वाच्यान्तरम्—सुराणाम् ईश्वरेण अपि न प्रधर्ष्ये··· ।

भावार्थः—हे राम ! आपके पास रहती हुई मुझ पर इन्द्र भी कुदृष्टि नहीं कर सकते दूसरे की तो बात ही क्या ! ॥ ६ ॥

पतिहीना तु या नारी न सा शक्ष्यति जीवितुम् ।
काममेवंविधं राम ! त्वया मम निदर्शितम् ॥ ७ ॥

पदच्छेदः—पतिहीना, तु, या, नारी, न, सा, शक्ष्यति, जीवितुम्, कामम्, एवंविधम्, राम, त्वया, मम, निदर्शितम् ।

अन्वयः—हे राम !, या, नारी, पतिहीना, सा, तु, जीवितुम्, न, शक्ष्यति, त्वया, मम, कामम्, एवंविधम्, निदर्शितम् ।

व्याख्या—हे राम ! (हे राघव !) या (कापि) नारी (योषित्) पतिहीना (पतिमुक्ता) सा (तादृशी तु) जीवितुम् (प्राणान् धारयितुम्) न (नैव) शक्ष्यति (शक्ता भविष्यति) त्वया (रामेण) मम (सीताया अग्रतः) कामम् (पर्याप्तम्) एवंविधम् (वनगमने दुःखवर्णनात्मकम्) निदर्शितम् (प्रादर्शि) ।

व्युत्पत्तिः—पत्या हीना पतिहीना (तृ० त०) । एवं विधा यस्मिन् तत् (बहु०) ।

संस्कृतार्थः—हे राम ! यदपि वनं बहुदोषम् भवता वर्णितम् तथापि पतिरहिता नारी कदापि जीवितुं न प्रभवति ।

वाच्यान्तरम्—पतिहीनया नार्या न···शक्ष्यते··· ।

भावार्थः—हे भगवन् ! यद्यपि आपने वनवास के अनेक दुःख वर्णन किये फिर भी पति से अलग रह कर कोई स्त्री जी कैसे सकती है ? अर्थात् कदापि नहीं जी सकती ॥ ७ ॥

अथापि च महाप्राज्ञ ! ब्राह्मणानां मया श्रुतम् ।
पुरा पितृगृहे सत्यं वस्तव्यं किल मे वने ॥ ८ ॥

पदच्छेदः—अथ, अपि, च, महाप्राज्ञ ! ब्राह्मणानाम्, मया, श्रुतम्, पुरा, पितृगृहे, सत्यम्, वस्तव्यम्, किल, मे, वने ।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अन्वयः—अथ, अपि, च हे महाप्राज्ञ ! पुरा, पितृगृहे, ब्राह्मणानाम्, मया, श्रुतम्, अतः मे, वने, सत्यम्, वस्तव्यम्, किल ।

व्याख्या—अथ (अनन्तरम्) अपि, च हे महाप्राज्ञ (महाबुद्धे) पुरा (पूर्वम्) पितृगृहे (मिथिलायाम्) ब्राह्मणानाम् (विदुषाम्) सकाशात् मया (सीतया) श्रुतम् (आकर्णि) अतः मे (मया) वने (कानने) सत्यम् (अवश्यम्) गन्तव्यम् (व्रजनीयम्) न तत्र संशयलेशोऽपि इति भावः ।

व्युत्पत्तिः—महान् प्राज्ञः महाप्राज्ञः तत्सम्बुद्धौ (कर्म०) पितुर्गृहम् पितृगृहम् तस्मिन् (ष० त०) ।

संस्कृतार्थः—हे महाराज ! अहं पूर्वम् मिथिलायाम् ब्राह्मणानाम् मुखाद-श्रौषम् यदियम् कदाचिद् वनमेष्यतीति । अतः वनमवश्यं यास्यामि । कोऽत्र सन्देहः ।

वाच्यान्तरम्—ब्राह्मणानाम् अहम् अश्रौषम्, अतः गमिष्यामि···।

भावार्थः—हे पतिदेव ! हमने जनकपुर में ब्राह्मणों के मुँह से सुना था कि "यह कन्या कभी जंगल भी जायगी" अतः मेरा जंगल जाना अवश्य होगा, इसमें सन्देह नहीं ॥ ८ ॥

लक्षणिभ्यो द्विजातिभ्यः श्रुत्वाहं वचनं गृहे ।
वनवासकृतोत्साहा नित्यमेव महाबल ॥ ९ ॥

पदच्छेदः—लक्षणिभ्यः, द्विजातिभ्यः, श्रुत्वा, अहम्, वचनम्, गृहे, वनवासकृतोत्साहा, नित्यम्, एव, महाबल ! ।

अन्वयः—हे महाबल ! अहम्, गृहे, लक्षणिभ्यः, द्विजातिभ्यः, वचनम्, श्रुत्वा, नित्यम्, एव, वनवासकृतोत्साहा ।

व्याख्या—हे महाबल (हे महाप्रताप) अहम् (सीता) गृहे (जनकभवने) लक्षणिभ्यः (सामुद्रिकलक्षणविद्भ्यः) द्विजातिभ्यः (ब्राह्मणेभ्यः) वचनम् (वचः) श्रुत्वा (आकर्ण्य) नित्यम् एव (सर्वदैव) वनवासकृतोत्साहा (काननवासाय सोत्साहा) आसम् ।

व्युत्पत्तिः—महत् बलं यस्य सः महाबलः तत्सम्बुद्धौ । वनवासे कृतः उत्साहो यया सा (उभयत्र बहुव्रीहिः) ।

संस्कृतार्थः—हे राम ! अहम् ब्राह्मणानां तादृशं वचः श्रुत्वा सदैव वनवासाय सोत्साहा अस्मि ।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

वाच्यान्तरम्—मया वनवासकृतोत्साहया'''अभावि ।

भावार्थः—हे महाराज ! सामुद्रिक जाननेवाले ब्राह्मणों द्वारा मैं सुनकर सदैव वनगमन के लिए उत्साह में थी ॥ ९ ॥

आदेशो वनवासस्य प्राप्तव्यः स मया किल ।
सा त्वया सह भर्त्राहं यास्यामि प्रिय नान्यथा ॥ १० ॥

पदच्छेदः—आदेशः, वनवासस्य, प्राप्तव्यः, सः, मया, किल, सा, त्वया, सह, भर्त्रा, अहम्, यास्यामि, प्रिय, न, अन्यथा ।

अन्वयः—हे प्रिय !, मया, सः, वनवासस्य, आदेशः, प्राप्तव्यः, किल, सा, अहम्, भर्त्रा, त्वया, सह, यास्यामि, अन्यथा, न ।

व्याख्या—हे प्रिय (हे वल्लभ) मया (सीतया) सः (पूर्वगृहीतः) वनवासस्य (वननिवासस्य) आदेशः (आज्ञा) प्राप्तव्यः (लब्धव्या) किल (अवश्यम्) सा (तादृशी) अहम् (सीता) भर्त्रा (स्वामिना) त्वया (रामेण) सह (सार्द्धम्) यास्यामि (वनम् गमिष्यामि) अन्यथा (अतः विपरीतं) न (नैव) स्यात् ।

व्युत्पत्तिः—वने वासः वनवासः तस्य (ष० त०) ।

संस्कृतार्थः—हे प्राणवल्लभ ! वनवासगमनस्य आज्ञां देहि । त्वया सह अहमपि वनं गमिष्यामि, अन्यथा न भविष्यति ।

वाच्यान्तरम्—अहं तम् आदेशम् प्राप्नुयाम् । त्वया सह'''यास्ये ।

भावार्थः—हे प्राणप्रिय ! हमें जङ्गल चलने के लिए आज्ञा अवश्य दीजिए, मैं आपके साथ चलूँगी । इसमें अन्यथा न होगा ॥ १० ॥

कृतादेशा भविष्यामि गमिष्यामि त्वया सह ।
कालश्चायं समुत्पन्नः सत्यवाग् भवतु द्विजः ॥ ११ ॥

पदच्छेदः—कृतादेशा, भविष्यामि, गमिष्यामि, त्वया, सह, कालः, च, अयम्, समुत्पन्नः, सत्यवाग्, भवतु, द्विजः ।

अन्वयः—कृतादेशा, भविष्यामि, त्वया, सह, गमिष्यामि, अयम्, च, कालः, समुत्पन्नः (सः) द्विजः सत्यवाग्, भवतु ।

व्याख्या—कृतादेशा (लब्धादेशा) अहम् भविष्यामि (सम्पत्स्ये) त्वया

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

(पत्या) सह (सार्द्धम्) गमिष्यामि (व्रजिष्यामि) अयम् (एषः) च (पुनः) कालः (समयः) समुत्पन्नः (आगतः) सः द्विजः (ब्राह्मणः) सत्यवाग् (ऋतवचनः) भवतु (जायताम्) ।

व्युत्पत्तिः—कृतः आदेशो यस्यै सा, सत्या वाग् यस्य सः (उभयत्र बहुव्री०)।

संस्कृतार्थः—हे राम ! आशासे मह्यम् आज्ञां दास्यति भवान् । भवता सह च वनं गमिष्यामि इदानीं स एव कालः, यः ब्राह्मणेनोक्तः इति सः सत्यवचनः आस्ताम् ।

वाच्यान्तरम्—कृतादेशया''सम्पत्स्यते तेन द्विजेन सत्यवाचा भूयताम् ।

भावार्थः—हे पतिदेव ! अब हमें आज्ञा दीजिए, मैं साथ चलूँगी । उस ब्राह्मण की भी बात सच हुई, वनगमन का समय आ गया है ॥ ११ ॥

वनवासे हि जानामि दुःखानि बहुधा किल ।
प्राप्यन्ते नियतं वीर पुरुषैरकृतात्मभिः ॥ १२ ॥

पदच्छेदः—वनवासे, हि, जानामि, दुःखानि, बहुधा, किल, प्राप्यन्ते, नियतम् , वीर, पुरुषैः, अकृतात्मभिः ।

अन्वयः—हे वीर ! वनवासे, बहुधा, दुःखानि, सन्ति, इति, नियतम्, जानामि, हि (तानि) अकृतात्मभिः, पुरुषैः, प्राप्यन्ते, किल ।

व्याख्या—हे वीर (हे शूर) वनवासे (काननिवासे) बहुधा (प्रायः) दुःखानि (कष्टानि) सन्ति (भवन्ति) इति (एतत्) नियतम् (निश्चितम्) जानामि (अवगच्छामि) हि (यतः) तानि अकृतात्मभिः (अजितेन्द्रियैः) पुरुषैः (जनैः) प्राप्यन्ते (लभ्यन्ते) नतु पुरुषार्थिभिरिति भावः ।

व्युत्पत्तिः—वने वासः वनवासः तस्मिन् (तत्पु०) न कृतः आत्मा, यैः ते अकृतात्मनः तैः (बहु०) ।

संस्कृतार्थः—हे वीर ! वनवासे दुःखानि सन्ति इति जाने, तानि अकृतात्मानः लभन्ते; न तु पुरुषार्थशीलाः ।

वाच्यान्तरम्—वनवासे दुःखैः भूयते, इति ज्ञायते''अकृतात्मानः लभन्ते ।

भावार्थः—हे वीर ! वनवास में दुःख उठाना पड़ता है इस बात को जान रही हूँ । परन्तु वे दुःख तो आलसियों को ही मिलते हैं, न कि कर्मठ व्यक्तियों को ॥ १२ ॥

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

कन्यया च पितुर्गेहे वनवासः श्रुतो मया ।
भिक्षिण्याः शमवृत्ताया मम मातुरिहाग्रतः ॥ १३ ॥

पदच्छेदः—कन्यया, च, पितुः, गेहे, वनवासः, श्रुतः, मया, भिक्षिण्याः, शमवृत्तायाः, मम, मातुः, इह, अग्रतः ।

अन्वयः—कन्यया, मया, पितुः, गेहे, भिक्षिण्याः, शमवृत्तायाः, मम, मातुः, अग्रतः, च, वनवासः, श्रुतः ।

व्याख्या—कन्यया (बालया) मया (सीतया) पितुः (स्वपितुः) गेहे (गृहे) भिक्षिण्याः (तपस्विन्याः) शमवृत्तायाः (शमवदाचारायाः) कस्याश्चित् मुखात् मम (सीतायाः) मातुः (जनन्याः) अग्रतः (अग्रे) च (पुनः) वनवासः (काननिवासः) श्रुतः (आकर्णितः) इह (उत्तरत्र अन्वेति) ।

व्युत्पत्तिः—शमे वृत्ता शमवृत्ता तस्याः, वने वासः (तत्पु०) ।

संस्कृतार्थः—बाल्यकाले मातुरग्रे कस्याश्चित् तपस्विन्याः मुखादिदम् वनगमनम् अहमश्रौषम्; तत् सत्यमेव ।

वाच्यान्तरम्—अहम्···वनवासम्···अश्रौषम् ।

भावार्थः—हे भगवन् ! मैंने बाल्यकाल में अपनी माता जी के आगे कहती हुई एक तपस्विनी के मुख से इस वनगमन को सुना था, भला वह कैसे असत्य होगा ? ॥ १३ ॥

प्रसादितश्च वै पूर्वं त्वं मे बहुतिथम् प्रभो ।
गमनं वनवासस्य काङ्क्षितं हि सह त्वया ॥१४॥

पदच्छेदः—प्रसादितः, च, वै, पूर्वम्, त्वम्, मे, बहुतिथम्, प्रभो, गमनम्, वनवासस्य, कांक्षितम्, हि, सह, त्वया ।

अन्वयः—हे प्रभो ! इह, पूर्वम्, वै, त्वम्, मे, बहुतिथम्, वनवासस्य, प्रसादितः, अतः त्वया, सह, गमनम्, मे, कांक्षितम्, हि ।

व्याख्या—हे प्रभो (हे स्वामिन्) इह (अस्मिन् गृहे) पूर्वम् एव त्वम् (राम) मे (मया) बहुतिथम् (बहुवारम्) वनवासस्य (वनलीलार्थम्) गमनम् (वनगमनम्) प्रति प्रसादितः (प्रसन्नीकृतः) अतः त्वया (भवता) सह

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

(सार्द्धम्) गमनम् (वनगमनम्) मे (मया) कांक्षितम् (अभिलषितम्) हि (निश्चयेन) जानीहि इति शेषः।

व्युत्पत्तिः—बहुवारमिति बहुतिथम्। वने वासः तस्य (तत्पु०)।

संस्कृतार्थः—हे प्रभो! अत्र अयोध्यायामपि वनगमनानन्दम् सहानुभावय इति बहुवारम् प्रार्थितो भवान् मया। स्वीकृतं च भवतेति अवश्यं वने सह गमनीया।

वाच्यान्तरम्—अहं त्वाम् वनगमनाय बहुवारम् प्रासादयम्...।

भावार्थः—हे प्रभो! हमने अयोध्या में ही कई बार आपसे वनशोभादर्शनार्थं सहगमन की प्रार्थना की तथा आप को उस बात पर प्रसन्न भी कर दिया था, इसलिए आपके साथ वन जाना मेरा निश्चित ही है॥ १४॥

कृतक्षणाहं भद्रं ते गमनं प्रति राघव।
वनवासस्य शूरस्य मम चर्या हि रोचते॥१५॥

पदच्छेदः—कृतक्षणा, अहम्, भद्रम्, ते, गमनम्, प्रति, राघव, वनवासस्य, शूरस्य, मम, चर्या, हि, रोचते।

अन्वयः—हे राघव! ते, भद्रम्, अस्तु, गमनम्, प्रति, अहम्, कृतक्षणा, हि, शूरस्य, वनवासस्य, चर्या, मम, रोचते।

व्याख्या—हे राघव (हे राम) ते (तव) भद्रम् (शिवम्) अस्तु (भवतु) गमनम् (वनगमनम्) प्रति अहम् कृतक्षणा (सन्नद्धाऽस्मि) हि (यतः) शूरस्य (वीरस्य) वनवासस्य (काननिवासिनः) चर्या (सेवा) मम (मह्यम्) रोचते (प्रियायते)।

व्युत्पत्तिः—कृतः क्षणः यया सा, वने वासः यस्य तस्य (उभयत्र बहु०)।

संस्कृतार्थः—हे राम! तव शिवमस्तु। अहं वनवासाज्ञां लब्ध्वा सन्नद्धास्मि। वनवासिनः शूरवरस्य भवतः शुश्रूषा ममात्यन्तकल्याणायेति जानीहि।

वाच्यान्तरम्—...वनवासस्य चर्यया मे रुच्यताम्।

भावार्थः—हे प्रभो! आपकी जय हो, हमने वनगमन की आज्ञा पा ली, तैयार हूं। वनवासी महावीर आप की सेवा हमें अतीव हितकर होगी॥१५॥

शुद्धात्मन् प्रेमभावाद्धि भविष्यामि विकल्मषा।
भर्त्तारमनुगच्छन्ती भर्ता हि परदैवतम्॥१६॥

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

पदच्छेदः— शुद्धात्मन्, प्रेमभावात्, हि, भविष्यामि, विकल्मषा, भर्त्तारम्, अनुगच्छन्ती, भर्ता, हि, परदैवतम् ।

अन्वयः—हे शुद्धात्मन्! हि, प्रेमभावात्, भर्तारम्, अनुगच्छन्ती, विकल्मषा, भविष्यामि, हि, भर्ता, परदैवतम् ।

व्याख्या—हे शुद्धात्मन् (हे शुद्धचेतः) हि (निश्चयेन) प्रेमभावात् (स्नेहात्) भर्तारम् (स्वामिनम्) अनुगच्छन्ती (अनुव्रजन्ती) विकल्मषा (कल्मषहीना) भविष्यामि (सम्पत्स्ये) हि (यतः) भर्ता (पतिः) परदैवतम् (परः देवः) सर्वथा सर्वदाऽर्चनीय इति भावः ।

व्युत्पत्तिः—प्रेम्णः भावः तस्मात् (तत्पु०) । विगतः कल्मषः यस्याः सा (बहु०) परम् दैवतम् परदैवतम् (कर्म०) ।

संस्कृतार्थः—हे पूज्यपते ! प्रेमभावात् त्वया सार्द्धं गच्छन्ती निष्कलङ्का स्थास्यामि । यतो हि स्त्रियाः पतिरेव परमः देवः ।

वाच्यान्तरम्—भर्तारम् अनुगच्छन्त्या विकल्मषया भूयते… ।

भावार्थः—हे रघुपते ! प्रेमभाव से आप के पीछे चलती हुई मैं निष्पाप रहूँगी । क्योंकि पति ही स्त्री के लिए परमदेव है ॥१६॥

प्रेत्यभावे हि कल्याणः संगमो मे सदा त्वया ।
श्रुतिर्हि श्रूयते पुण्या ब्राह्मणानां यशस्विनाम् ॥१७॥

पदच्छेदः—प्रेत्यभावे, हि, कल्याणः, संगमः, मे, सदा, त्वया, श्रुतिः, हि, श्रूयते, पुण्या, ब्राह्मणानाम्, यशस्विनाम् ।

अन्वयः—हि, प्रेत्यभावे, त्वया, संगमः, सदा, मे, कल्याणः, हि, यशस्विनाम्, ब्राह्मणानाम् (मुखात्) पुण्या, श्रुतिः, श्रूयते ।

व्याख्या—हि (निश्चयेन) प्रेत्यभावे (कृतशरीरान्तरपरिग्रहेऽपि) त्वया (पत्या) संगमः (सहवासः) सदा (सर्वदा) मे (मम) कल्याणः (दिव्यसुखहेतुः) हि (यतः) यशस्विनाम् (कीर्त्तिमताम्) ब्राह्मणानाम् (द्विजानाम्) मुखात् पुण्या (उक्तार्थप्रतिपादिका) श्रुतिः (वेदमन्त्रः) श्रूयते (निशम्यते) ।

व्युत्पत्तिः—प्र + इ + क्त्वा, प्रेत्यभावः मृत्युः ।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

संस्कृतार्थः—हे प्रभो ! त्वयैव सह मरणानन्तरमपि संगमो भवेत् स एव मे कल्याणदः, एतज्जन्मनः संगमस्य तु चर्चैव का ? ।

वाच्यान्तरम्—त्वया संगमेन मे कल्याणेन भूयते…… ।

भावार्थः—हे प्रभो ! मरने के बाद भी आपके ही संगम से हमे आनन्द है, इस जन्म की तो बात ही क्या ? ॥ १७ ॥

इह लोके च पितृभिर्या स्त्री यस्य महाबल ।
अद्भिर्दत्ता स्वधर्मेण प्रेत्यभावेऽपि तस्य सा ॥ १८ ॥

पदच्छेदः—इह, लोके, च, पितृभिः, या, स्त्री, यस्य, महाबल, अद्भिः, दत्ता, स्वधर्मेण, प्रेत्यभावे, अपि, तस्य, सा ।

अन्वयः—हे महाबल !, इह, पितृभिः, अद्भिः, स्वधर्मेण, या, स्त्री, यस्य, दत्ता, प्रेत्यभावे, लोके, अपि, च, तस्य, (एव) सा ।

व्याख्या—हे महाबल (हे बलशालिन्) इह (अस्मिन् लोके) पितृभिः (मातापित्रादिभिः) अद्भिः (जलकुशादिभिः) स्वधर्मेण (स्वधर्मपूर्वकम्) या स्त्री (नारी) यस्य (यस्मै) दत्ता (प्रदत्ता) प्रेत्यभावे (मरणेऽपि) लोके (परलोके) अपि च (पुनः) तस्य (ग्रहीतुः) एव सा । नान्यस्येति भावः ।

व्युत्पत्तिः—महत् बलं यस्य सः तत्सम्बुद्धौ (बहु०) स्वस्य धर्मः स्वधमः तेन (तत्पु०) ।

संस्कृतार्थः—हे महाबल ! अत्र जन्मनि पित्रादिभिः कन्या यस्मै दत्ता मरणानन्तरम् परलोकेऽपि सा पत्नी तस्यैव, नान्यस्य पत्युः भवतीति ।

वाच्यान्तरम्—यां स्त्रियम् पित्रादयः अदुः प्रेत्यभावेऽपि… ।

भावार्थः—हे महाबल ! इस जन्म में जिस व्यक्ति को माता पिता आदि ने विधिपूर्वक जो कन्या समर्पित कर दी मरने के बाद परलोक में भी उस स्त्री का अधिकारी वही पति रहता है, दूसरा नहीं ॥ १८ ॥

एवमस्मात् स्वकां नारीं सुवृत्तां हि पतिव्रताम् ।
नाभिरोचयसे नेतुं त्वं मां केनेह हेतुना ॥ १९ ॥

पदच्छेदः—एवम् , अस्मात् , स्वकाम् , नारीम् , सुवृत्ताम् , हि, पतिव्रताम् , न, अभिरोचयसे, नेतुम् , त्वम् , माम् , केन, इह, हेतुना ।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अन्वयः—हि, एवम्, अस्मात्, स्वकाम्, सुवृत्ताम्, पतिव्रताम्, नारीम्, माम्, केन, हेतुना, त्वम्, नेतुम्, न, अभिरोचयसे ।

व्याख्या—हि (तथापि) एवम् (अमुना प्रकारेण) अस्मात् (नगरात्) स्वकाम् (स्वीयाम्) सुवृत्ताम् (सुचरिताम्) पतिव्रताम् (पतिदीक्षाम्) नारीम् (योषितम्) माम् (सीताम्) केन हेतुना (कारणेन) त्वम् (रामः) नेतुम् (सह नेतुम्) न (नैव) अभिरोचयसे (इच्छसि) ।

व्युत्पत्तिः—सुष्ठु वृत्तं यस्याः सा ताम् । पतिः व्रतं यस्याः सा ताम् (उभयत्र बहु०) ।

संस्कृतार्थः—एवमपि मादृशीम् पतिव्रताम् सीताम् स्वधर्मपत्नीम् अयोध्यानगरात् वने सह नेतुम् कथं नेच्छसि ? ।

वाच्यान्तरम्—सुवृत्ता पतिव्रता नारी अहं कथं सह नेतुं नाभिरोच्ये ।

भावार्थः—हे भगवन् ! मुझ जैसी सुचरिता, पतिव्रता सीता को भी आप साथ नहीं ले जाना चाहते, क्या कारण ? ॥ १९ ॥

भक्ताम् पतिव्रतां दीनां मां समां सुखदुःखयोः ।
नेतुमर्हसि काकुत्स्थ समानसुखदुःखिनीम् ॥ २० ॥

पदच्छेदः—भक्ताम्, पतिव्रताम्, दीनाम्, माम्, समाम्, सुखदुःखयोः, नेतुम्, अर्हसि, काकुत्स्थ, समानसुखदुःखिनीम् ।

अन्वयः—हे काकुत्स्थ !, भक्ताम्, पतिव्रताम्, दीनाम्, सुखदुःखयोः, समाम्, समानसुखदुःखिनीम्, माम्, नेतुम्, अर्हसि ।

व्याख्या—हे काकुत्स्थ (हे राघव) भक्ताम् (भक्तियुताम्) पतिव्रताम् (पतिदीक्षाम्) दीनाम् (कातराम्) सुखदुःखयो समाम् समानसुखदुःखिनीम् (समसुखदुःखवतीम्) माम् (सीताम्) नेतुम् (सहनेतुम्) अर्हसि (योग्योऽसि) ।

व्युत्पत्तिः—पतिःव्रतं यस्याः सा ताम् (बहु०) सुखं च दुःखं च ते तयोः (द्वन्द्वः) समानसुखदुःखमस्ति अस्याः सा ताम् । मत्वर्थं इन्नन्तः ।

संस्कृतार्थः—हे पतिदेव । सुखदुःखयोः समानाम्, पतिदेवताम्, दीनाम् भक्ताम् माम् सह नेतुमर्हसि ।

वाच्यान्तरम्—भक्ता दीना पतिव्रता अहं त्वया नेतुमर्ह्ये ।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

भावार्थः—हे पतिदेव ! भक्त दीन तथा पतिव्रता व सुख दुःख में समान रहनेवाली मुझे आपको साथ ले चलना चाहिए ॥ २० ॥

यदि मां दुःखितामेवं वनं नेतुं न चेच्छसि ।
विषमग्निं जलं वाहमास्थास्ये मृत्युकारणात् ॥ २१ ॥

पदच्छेदः—यदि, माम्, दुःखिताम्, एवम्, वनम्, नेतुम्, न, च, इच्छसि, विषम्, अग्निम्, जलम्, वा, अहम्, आस्थास्ये, मृत्युकारणात् ।

अन्वयः--यदि, एवम्, दुःखिताम्, माम्, वनम्, नेतुम् च न, इच्छसि, तदा अहम्, विषम्, अग्निम्, जलम्, वा, मृत्युकारणात्, आस्थास्ये ।

व्याख्या--यदि (चेत्) एवम् (उक्तप्रकारेण) दुःखिताम् (स-दुःखाम्) माम् (सीताम्) वनम् (अरण्यम्) नेतुम् (सहनेतुम्) च, न, इच्छसि (नाभिलषसि) तदा (तदानीम्) अहम् (सीता) विषम् (गरलम्) अग्निम् (अनलम्) जलम् (वारि) वा मृत्युकारणात् (मृत्यवे) आस्थास्ये (अधिकरिष्यामि) ।

व्युत्पत्तिः--मृत्युः कारणम् मृत्युकारणम् तस्मात् ।

संस्कृतार्थः--हे भगवन् ! एवम् दुःखिताम् माम् यदि वनं नेतुम् नाभिलषसि तदा अहम् मृत्यवे विषम् भोक्ष्ये, अग्निं जलं वा प्रवेक्ष्यामि ।

वाच्यान्तरम्—यदि अहं नेतुं नेष्ये तदा विषम् अग्निः जलम् वा प्रवेक्ष्यते ।

भावार्थः—हे राजन् ! अगर आप मुझे साथ नहीं ले चलेंगे तो मैं विष खाकर, अग्नि से जलकर अथवा पानी में डूब कर मर जाऊँगी ॥ २१ ॥

एवं बहुविधं तं सा याचते गमनम् प्रति ।
नानुमेने महाबाहुस्तां नेतुं विजनं वनम् ॥ २२ ॥

पदच्छेदः—एवम्, बहुविधम्, तम्, सा, याचते, गमनम्, प्रति, न, अनुमेने, महाबाहुः, ताम्, नेतुम्, विजनम्, वनम् ।

अन्वयः—सा, एवम्, गमनम्, प्रति, तम्, बहुविधम्, याचते, महाबाहुः, विजनम्, वनम्, ताम्, नेतुम्, न, अनुमेने ।

व्याख्या--सा (सीता) एवम् (वर्णितविधिना) गमनम् प्रति (वनगमनम् प्रति) तम् (रामम्) बहुविधम् (नानाप्रकारेण) याचते (प्रार्थयते)

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

परन्तु महाबाहुः (रामः) विजनम् (निर्जनम्) वनम् (काननम्) ताम् (सीताम्) नेतुम् (सहनेतुम्) न (नैव) अनुमेने (स्वीचकार) ।

व्युत्पत्तिः—बहवः विधा यस्मिन् तत् बहुविधम् । महान्तौ बाहू, यस्य सः (बहु०) ।

संस्कृतार्थः—एवम् प्रकारेण सीता वनगमनाय बहु कथयामास परन्तु भगवान् रामः ताम् निर्जनम् वनम् नेतुम् न स्वीचक्रे ।

वाच्यान्तरम्—तया…बहुविधम् याच्यते । महबाहुना नेतुम् नान्वमन्यत ।

भावार्थः—इस प्रकार वन जाने के लिए सीताजी ने बहुत प्रार्थना की परन्तु भगवान् राम उस निर्जन वन में सीता को ले जाना स्वीकार न किए ॥२२॥

एवमुक्त्वा तु सा चिन्तां मैथिली समुपागता ।
स्नापयन्तीव गामुष्णैरश्रुभिर्नयनच्युतैः ॥ २३ ॥

पदच्छेदः—एवम्, उक्त्वा, तु, सा, चिन्ताम्, मैथिली, समुपागता, स्नापयन्ती, इव, गाम्, उष्णैः, अश्रुभिः, नयनच्युतैः ।

अन्वयः—एवम्, उक्त्वा, सा, मैथिली, तु, नयनच्युतैः, उष्णैः, अश्रुभिः, गाम्, स्नापयन्ती, इव, चिन्ताम्, समुपागता ।

व्याख्या—एवम् (वर्णितप्रकारेण) उक्त्वा (कथिता) सा (पूर्वोक्ता) मैथिली (जनकात्मजा) तु नयनच्युतैः (नेत्रपतितैः) उष्णैः (अशीतैः) अश्रुभिः (नेत्रजलैः) गाम् (पृथ्वीम्) स्नापयन्ती (अभिषिञ्चन्ती) इव (यथा) चिन्ताम् (शोकम्) समुपागता (प्रापत्) ।

व्युत्पत्तिः—नयनाभ्यां च्युताः नयनच्युताः तैः (तत्पु०) ।

संस्कृतार्थः—एवं रूपेण कथिता वैदेही निराशा रुदन्ती चिन्तिता बभूव ।

वाच्यान्तरम्—एवमुक्तया मैथिल्या……चिन्ता प्रापि ।

भावार्थः—इस तरह रामचन्द्रजी का कोरा जवाब पाकर निराश हो रोती हुई जानकी जी चिन्ता में पड़ गईं ॥ २३ ॥

चिन्तयन्तीं तदा तां तु निवर्तयितुमात्मवान् ।
क्रोधाविष्टां तु वैदेहीं काकुत्स्थो बहु सान्त्वयत् ॥ २४ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्येऽयोध्याकाण्ड
एकोनत्रिंशः सर्गः ॥ २९ ॥

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

पदच्छेदः—चिन्तयन्तीम्, तदा, ताम्, तु, निवर्तयितुम्, आत्मवान्, क्रोधाविष्टाम्, तु, वैदेहीम्, काकुत्स्थः, बहु, सान्त्वयत्।

अन्वयः—आत्मवान्, काकुत्स्थः, तदा, क्रोधाविष्टाम्, चिन्तयन्तीम्, ताम्, वैदेहीम्, तु, निवर्तयितुम्, बहु, सान्त्वयत्।

व्याख्या—आत्मवान् (आत्मज्ञः) काकुत्स्थः (राघवः) तदा (तदानीम्) क्रोधाविष्टाम् (क्रुद्धाम्) चिन्तयन्तीम् (चिन्तां कुर्वन्तीम्) ताम् (स्वीयाम्) वैदेहीम् (जानकीम्) तु निवर्तयितुम् (वनाग्रहात् प्रत्यावर्तयितुम्) बहु (अधिकम्) सान्त्वयत् (आश्वासयत्) सान्त्ववाक्यानि उवाचेति यावत्।

व्युत्पत्तिः—क्रोधेन आविष्टा ताम् (तृ० त०) विदेहस्यापत्यं स्त्री वैदेही ताम्। सान्त्वयत् अत्र अडभाव आर्षः।

संस्कृतार्थः—एवं बहु क्रुद्धाम् सीताम् आत्मज्ञः रामः वनगमनाग्रहात् ताम् प्रत्यावर्तयितुम् बहु समबोधयत्।

वाच्यान्तरम्—आत्मवता काकुत्स्थेन सा वैदेही बहु समबोधि।

भावार्थः—आत्मज्ञानी रामचन्द्र जी ने इस प्रकार क्रोध से भरी हुई सीता को अपने वन जाने के आग्रह से घुमाने के लिए बहुत प्रकार से समझाना शुरू किया ॥२४॥

इति वाल्मीकीये रामवनगमने आचार्यश्रीराजनारायणशास्त्रिशुक्ल-
रचितायाम् प्रभाटीकायाम् षष्ठः सर्गः।

अथ सप्तमः सर्गः।

सान्त्व्यमाना तु रामेण मैथिली जनकात्मजा।
वनवासनिमित्तार्थं भर्तारमिदमब्रवीत् ॥ १ ॥

पदच्छेदः—सान्त्व्यमाना, तु, रामेण, मैथिली, जनकात्मजा, वनवासनिमित्तार्थम्, भर्तारम्, इदम्, अब्रवीत्।

अन्वयः—वनवासनिमित्तार्थम्, रामेण, सान्त्वयमाना, जनकात्मजा, मैथिली, तु, भर्तारम्, इदम्, अब्रवीत्।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

व्याख्या—वनवासनिमित्तार्थम् (वनवासनिमित्तानुमतिसिद्ध्यर्थम्) रामेण (रामचन्द्रेण) सान्त्व्यमाना (संबोध्यमाना) जनकात्मजा (जनकसुता) मैथिली (सीता) तु भर्तारम् (पतिम्) इदम् (वक्ष्यमाणम्) अब्रवीत् (उवाच) ।

व्युत्पत्तिः—वने वासः वनवासः तस्मै निमित्तायेति वनवासनिमित्तार्थम् (तत्पुरु०) जनकस्य आत्मजा (ष० त०) ।

संस्कृतार्थः—भगवता रामेण सम्बोध्यमानाऽपि वनगमनरूपस्वाग्रहसिद्धये सीताऽवादीत् ।

वाच्यान्तरम्—सान्त्व्यमानया जनकात्मजया भर्त्ता ऊचे ।

भावार्थः—भगवान् राम से इस तरह समझाई जाती हुई जानकीजी ने अपने वन जाने के आग्रह को सिद्ध करने के लिए कहा ॥ १ ॥

सा तमुत्तमसंविग्ना सीता विपुलवक्षसम् ।
प्रणयाच्चाभिमानाच्च परिचिक्षेप राघवम् ॥ २ ॥

पदच्छेदः—सा, तम्, उत्तमसंविग्ना, सीता, विपुलवक्षसम्, प्रणयात्, च, अभिमानात्, च, परिचिक्षेप, राघवम् ।

अन्वयः—उत्तमसंविग्ना, सा, सीता, विपुलवक्षसम्, तम्, राघवम्, प्रणयात्, च, अभिमानात्, च, परिचिक्षेप ।

व्याख्या—उत्तमसंविग्ना (अतिभीता) सा (प्रसिद्धा) सीता (वैदेही) विपुलवक्षसम् (विशालवक्षसम्) तम् (स्वपतिम्) राघवम् (रामम्) प्रणयात् (स्नेहात्) च (पुनः) अभिमानात् (प्रणयकोपात्) च परिचिक्षेप (साक्षेपमुवाच) ।

व्युत्पत्तिः—उत्तमा संविग्ना (कर्म०) विपुलं वक्षो यस्य स विपुलवक्षाः तम् (बहु०) ।

संस्कृतार्थः—अतिभीता सीता प्रणयकोपद्वाराऽऽक्षेपसहितं राममुवाच ।

वाच्यान्तरम्—उत्तमसंविग्नया सीतया राघवः परिचिक्षिपे ।

भावार्थः—अत्यन्त भयभीत, प्रणयकोप से आक्षेप करती हुई सीताजी ने रामचन्द्रजी से कहा ॥ २ ॥

किं त्वामन्यत वैदेहः पिता मे मिथिलाधिपः ।
राम जामातरम् प्राप्य स्त्रियम् पुरुषविग्रहम् ॥ ३ ॥

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

पदच्छेदः—किम्, त्वा, अमन्यत, वैदेहः, पिता, मे, मिथिलाधिपः, राम, जामातरम्, प्राप्य, स्त्रियम्, पुरुषविग्रहम् ।

अन्वयः—हे राम ! वैदेहः, मिथिलाधिपः, मे, पिता, पुरुषविग्रहम्, स्त्रियम्, त्वा, जामातरम्, प्राप्य, किम्, अमन्यत ।

व्याख्या—हे राम (हे राघव) वैदेहः (तदुपाधिकः) मिथिलाधिपः (मिथिलापतिः) मे (मम) पिता (जनकः) पुरुषविग्रहम् (शरीरमात्रेण पुरुषम्) स्त्रियम् (कर्मणा स्त्रियम्) त्वा (त्वाम्) जामातरं प्राप्य (अधिगत्य) किम् अमन्यत (अवाबुध्यत) न जाने इति शेषः ।

व्युत्पत्तिः—मिथिलायाः अधिपः (ष० त०) विग्रहेण पुरुषः इति पुरुषविग्रहः तम् ।

संस्कृतार्थः—हे राम ! मे पिता राजा जनकः शरीरमात्रेण पुरुषं त्वाम् जामातरम् प्राप्य किम् अवाबुध्यत ।

वाच्यान्तरम्—मिथिलाधिपेन…पुरुषविग्रहः जामाता…अमन्यत ।

भावार्थः—हे राघवेन्द्र ! मेरे पिता राजा जनक जी ने शरीरमात्र से पुरुष तथा कर्म से स्त्रीरूपधारी आप को जामाता पाकर क्या समझा । अगर वे आपको ऐसा समझते तो सम्भव था कि कन्यादान न करते ॥ ३ ॥

अनृतं वत लोकोऽयमज्ञानाद् यदि वक्ष्यति ।
तेजो नास्ति परं रामे तपतीव दिवाकरे ॥ ४ ॥

पदच्छेदः—अनृतम्, वत, लोकः, अयम्, अज्ञानात्, यदि, वक्ष्यति, तेजः, नास्ति, परम्, रामे, तपति, इव, दिवाकरे ।

अन्वयः—यदि (माम् विहाय वनगमनभारम् भवान्) वक्ष्यति, तदा, रामे, इव, तपति, दिवाकरे, परम्, तेजः नास्ति, इति, अयं लोकः अनृतम्, अज्ञानाद्, वा, वदतीति शेषः ।

व्याख्या—यदि (चेत्) माम् विहाय भवान् वनगमनभारम् वक्ष्यति (प्राप्स्यति) तदा रामे (रामचन्द्रे) इव (यथा) तपति (पूर्णे) दिवाकरे (सूर्ये) अपि परम् (विशिष्टम्) तेजः (प्रतापम्) नास्ति (नैवास्ति) इति

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

कथयन् अयं (एषः) लोकः (संसारः) अनृतम् (मिथ्या) अज्ञानात् (अनवबोधात्) वा वदतीति वक्तुं शक्येत ।

व्युत्पत्तिः—न ऋतम् , अनृतम् , न ज्ञानम् अज्ञानम् तस्मात् (नञ्समा०) दिवा करोति इति दिवाकरः तस्मिन् (तत्पुरु०) ।

संस्कृतार्थः—हे राम ! यदि भवान् मां विहाय एकाकी वनं गमिष्यति तदा रामेण समं पूर्णे सूर्येऽपि तेजो नास्ति इति यः लोकप्रवादः स मिथ्या अज्ञानात् वा लोकैः उच्यते इति स्पष्टम् स्यात् ।

वाच्यान्तरम्—यदि भवता उच्यते···अनेन लोकेन···।

भावार्थः—हे राम ! अगर मुझे छोड़ कर आप वन जाते हैं तो लोगों का यह कहना कि "राम के समान पूर्ण सूर्य में भी तेज नहीं" यह बात झूठी अथवा बिना समझे कही गई है ऐसा स्पष्ट हो जायगा ॥ ४ ॥

किं हि कृत्वा विषण्णस्त्वं कुतो वा भयमस्ति ते ।
यत्परित्यक्तुकामस्त्वं मामनन्यपरायणाम् ॥ ५ ॥

पदच्छेदः—किम् , हि, कृत्वा, विषण्णः, त्वम् , कुतः, वा, भयम् , अस्ति, ते, यत् , परित्यक्तुकामः, त्वम् , माम, अनन्यपरायणाम् ।

अन्वयः—हि, त्वम् , किम् , कृत्वा, विषण्णः, कुतः, वा, ते, भयम् ,अस्ति, यत् , त्वम् , अनन्यपरायणाम् , माम् , परित्यक्तुकामः ।

व्याख्या—हि (यतः) त्वम् (भवान् रामः) किम् कृत्वा (किं विचार्य) विषण्णः (प्राप्तविषादः) कुतः (कस्मात्) वा ते (तव) भयम् (भीतिः) अस्ति (वर्तते) यत् (यतः) त्वम् (भवान्) अनन्यपरायणाम् (अनन्यचित्ताम्) माम् (सीताम्) परित्यक्तुकामः (परित्यजति) ।

व्युत्पत्तिः—नास्ति अन्यः परम् अयनम् यस्याः सा ताम् , परित्यक्तुं कामो यस्य सः (बहु०) ।

संस्कृतार्थः—हे राम ! किम् विचार्य माम् न नयसि । कस्मात् भयम् अस्ति यत् सर्वथा अनन्यामपि माम् परित्यक्तुम् इच्छसि ।

वाच्यान्तरम्—त्वया अनन्यपरायणा अहम्···।

भावार्थः—हे पतिदेव ! आपने क्या सोचा कि जिससे मुझे छोड़ रहे हैं,

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

आपको किससे डर है कि जिसके कारण मुझ अनन्य पतिव्रता को छोड़कर अकेले जाना चाहते हैं ॥ ५ ॥

द्युमत्सेनसुतं वीरं सत्यवन्तमनुव्रताम् ।
सावित्रीमिव मां विद्धि त्वमात्मवशवर्त्तिनीम् ॥ ६ ॥

पदच्छेदः—द्युमत्सेनसुतम्, वीरम्, सत्यवन्तम्, अनुव्रताम्, सावित्रीम्, इव, माम्, विद्धि, त्वम्, आत्मवशवर्त्तिनीम् ।

अन्वयः—त्वम्, द्युमत्सेनसुतम्, वीरम्, सत्यवन्तम्, अनुव्रताम्, सावित्रीम्, इव, आत्मवशवर्त्तिनीम्, माम्, विद्धि ।

व्याख्या—त्वम् (रामः) द्युमत्सेनसुतम् (द्युमत्सेनपुत्रम्) वीरम् (शूरम्) सत्यवन्तम् (तन्नामकम्) अनुव्रताम् (तद्व्रताम्) सावित्रीम् (तन्नामिकाम्) इव (यथा) आत्मवशवर्त्तिनीम् (सर्वथा स्वानुगामिनीम्) माम् (सीताम्) विद्धि (जानीहि) नान्यथेति शेषः ।

व्युत्पत्तिः—द्युमत्सेनस्य सुतः तम् । आत्मनः वशवर्त्तिनी ताम् (ष० त०) अनु व्रतं यस्याः सा ।

संस्कृतार्थः—हे राम ! यथा सावित्री सत्यवन्तम् अनुव्रता तथैव सर्वथा माम् स्वानुचरीम् जानीहि ।

वाच्यान्तरम्—यथा सावित्र्या सत्यवान् तथा स्ववशवर्त्तिनी त्वामहम्… ।

भावार्थः—हे राम ! जैसे सत्यवान् के लिए सावित्री वैसे ही आप के लिए मैं हूं ऐसा समझिए ॥ ६ ॥

न त्वहम् मनसा त्वन्यं द्रष्टास्मि त्वदृतेऽनघ ।
त्वया राघव गच्छेयं यथान्या कुलपांसनी ॥ ७ ॥

पदच्छेदः—न, तु, अहम्, मनसा, तु, अन्यम्, द्रष्टा, अस्मि, त्वत्, ऋते, अनघ, त्वया, राघव, गच्छेयम्, यथा, अन्या, कुलपांसनी ।

अन्वयः—हे राघव ! यथा, अन्या, कुलपांसनी, (तथा) हे अनघ ! अहम्, त्वत्, ऋते, मनसा, तु, अन्यम्, न, द्रष्टा, त्वया, गच्छेयम् ।

व्याख्या—हे राघव (हे राम) यथा (येन प्रकारेण) अन्या (इतरा) कुलपांसनी (कुलकलङ्किनी) तथा हे अनघ (हे निष्पाप) अहम् (सीता) त्वत्

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

(त्वाम्) ऋते (विहाय) मनसा (चेतसा) तु अपि अन्यम् (इतरम् पुरुषम्) न (नैव) द्रष्टा (द्रक्ष्यामि) अतः त्वया (रामेण) सह गच्छेयम् (व्रजेयम्) ।

व्युत्पत्तिः—कुले कुलस्य वा पांसनी (तत्पु०) त्वत् ऋते (अत्र द्वितीयार्थेऽपि ऋतशब्दयोगात् पञ्चमी) ।

संस्कृतार्थः—हे राम ! यथा अन्या कुलटा अन्यम् पुरुषम् गच्छति तथा मां न जानीहि । अहंतु मनसाऽपि पुरुषान्तरं द्रष्टुमपि न सहे किमुत गन्तुम् । अतः त्वं सहैव नय ।

वाच्यान्तरम्—यथाऽन्यया कुलपांसन्या अन्यः तथा मया अन्यः न दृश्येत ।

भावार्थः—हे राम ! जैसे दुनियाँ में कोई कुलटा स्त्री हर एक को मान सकती है वैसी मुझे न जानो । मैं तो मन से भी दूसरे पुरुष को देखना भी नहीं चाहती । मैं आपके साथ ही जाऊँगी ॥ ७ ॥

स्वयं तु भार्यां कौमारीं चिरमध्युषितां सतीम् ।
शैलूष इव मां राम परेभ्यो दातुमिच्छसि ॥ ८ ॥

पदच्छेदः—स्वयम्, तु, भार्याम्, कौमारीम्, चिरम्, अध्युषिताम्, सतीम्, शैलूषः, इव, माम्, राम, परेभ्यः, दातुम्, इच्छसि ।

अन्वयः—राम ! चिरम्, अध्युषिताम्, कौमारीम्, सतीम्, भार्याम्, माम्, शैलूषः, इव, परेभ्यः, दातुम्, इच्छसि ।

व्याख्या—हे राम ! (हे राघव) चिरम् (बहुकालम्) अध्युषिताम् (पृथक् स्थिताम्) कौमारीम् (अन्यापूर्वाम्) सतीम् (पतिव्रताम्) भार्याम् (स्त्रियम्) माम् (सीताम्) शैलूषः (जायाजीवः) इव (यथा) परेभ्यः (अन्यपुरुषेभ्यः) दातुम् (समर्पितुम्) इच्छसि (कामयसे) ।

व्युत्पत्तिः—शैलूषो नटभिल्लयोः इति कोषः ।

संस्कृतार्थः—हे राम ! बहुकालमध्युषिताम् सतीम् माम् सीताम् शैलूषः इव परेभ्यः दित्सति ।

वाच्यान्तरम्—चिरम् अध्युषिता भार्या अहं···परेभ्यः इष्ये ।

भावार्थः—हे राम ! आप इस तरह बहुत काल तक अलग निवास की हुई मुझ सती स्त्री को एक खिलाड़ी नट की तरह दूसरे के लिए देने की इच्छा कर रहे हैं क्या ? ॥ ८ ॥

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

यस्य पत्थ्यंचरामात्थ यस्य चार्थेऽवरुध्यसे।
त्वं तस्य भव वश्यश्च विधेयश्च सदानघ॥ ९॥

पदच्छेदः—यस्य, पत्थ्यञ्चराम्, आत्थ, यस्य, च, अर्थे, अवरुध्यसे, त्वम्, तस्य, भव, वश्यः, च, विधेयः, च, सदा, अनघ।

अन्वयः—हे राम! यस्य, पत्थ्यंचराम्, आत्थ, यस्य, च, अर्थे, अवरुध्यसे, हे अनघ! त्वम्, सदा, तस्य, वश्यः, विधेयः च, भव।

व्याख्या—हे राम! यस्य (भरतस्य) पत्थ्यंचराम् (अनुगामिनीम् इष्टानुवर्तिनीम्) आत्थ (कथितवानसि) यस्य (भरतस्य) च (पुनः) अर्थे (अभिषेकार्थे) अवरुध्यसे (निरुद्धाभिषेकोऽसि) हे अनघ (हे निष्पाप) त्वम् (भवान्) तस्य (भरतस्य) वश्यः (वशगः) विधेयः (नियोज्यः) च भव (आस्स्व)।

व्युत्पत्तिः—पत्थ्यंचरतीति पत्थ्यंचरा ताम्। अत्र मुमागमः आर्षः। नास्ति अघः यस्य सः अनघः तत्सम्बुद्धौ (बहु०) वशं गच्छति इति वश्यः।

संस्कृतार्थः—हे राम! यस्य इष्टानुरोधिनीम् मां इच्छसि तस्य भरतस्य वश्यः अनुगन्ता च भवानेव भवतु नाहं भवितुमीशे।

वाच्यान्तरम्—हे राम! यस्य पत्थ्यंचरा अहम् अवोचि, तस्य विधेयेन त्वया भूयताम्।

भावार्थः—हे रामचन्द्रजी! जिस भरत की इष्टानुसारिणी मुझे आप बनाना चाहते हैं उसका अनुचर आप ही बनें, मुझसे साध्य नहीं॥ ९॥

स मामनादाय वनं न त्वं प्रस्थितुमर्हसि।
तपो वा यदि वारण्यं स्वर्गो वा स्यात्त्वया सह॥१०॥

पदच्छेदः—सः, माम्, अनादाय, वनम्, न, त्वम्, प्रस्थितुम्, अर्हसि, तपः, वा, यदि, वा, अरण्यम्, स्वर्गः, वा, स्यात्, त्वया, सह।

अन्वयः—सः, त्वम्, माम्, अनादाय, वनम्, प्रस्थितुम्, न, अर्हसि। त्वया, सह, तपः वा, यदि, वा, अरण्यम्, स्वर्गः, वा, स्यात्।

व्याख्या—सः (धर्मज्ञः) त्वम् (रामः) माम् (सीताम्) आनादाय, (अगृहीत्वा) वनम् (काननम्) प्रस्थितुम् (गन्तुम्) न (नैव) अर्हसि (योग्योऽसि) त्वया (भवता) सह (सहैव) तपः (तपस्या) वा, यदि वा

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अरण्यम् (काननवासः) स्वर्गः (नाकः) वा स्यात् (किमपि भवेत्) नान्यथा ।

व्युत्पत्तिः—न आदाय अनादाय । त्वया सह (सहयुक्तेऽप्रधाने) इति तृतीया ।

संस्कृतार्थः—हे राम ! माम् विहाय वनं गन्तुम् नार्हसि । त्वया सहैव मम निवासः स्यात् स कुत्रापि दशायाम् भवेत्, वने वा स्वर्गे वा न दुःखमिति ।

वाच्यान्तरम्—त्वया…गन्तुम्, न अर्ह्यते… ।

भावार्थः—हे राम ! आपका मुझे छोड़कर जङ्गल जाना उचित नहीं । आपके साथ ही मुझे तप करना पड़े, जङ्गल चलना पड़े अथवा स्वर्ग ही मिले कोई परवाह नहीं ॥ १० ॥

नच मे भविता तत्र कश्चित् पथि परिश्रमः ।
पृष्ठतस्तव गच्छन्त्या विहारशयनेष्विव ॥ ११ ॥

पदच्छेदः—नच, मे, भविता, तत्र, कश्चित्, पथि, परिश्रमः, पृष्ठतः, तव, गच्छन्त्याः, विहारशयनेषु, इव ।

अन्वयः—तत्र, पथि, तव, पृष्ठतः, गच्छन्त्याः, मे, विहारशयनेषु इव कश्चित्, परिश्रमः, च, न, भविता ।

व्याख्या—तत्र (वनादिषु) पथि (मार्गे) तव (रामस्य) पृष्ठतः (पश्चात्) गच्छन्त्याः (व्रजन्त्याः) मे (मम) विहारशयनेषु (विहारशय्यासु) इव (यथा) कश्चित् (कोऽपि) परिश्रमः (श्रमः) न च (नैव) भविता (भविष्यति) ।

व्युत्पत्तिः—परितः श्रमः परिश्रमः । विहारस्य शयनानि तेषु ।

संस्कृतार्थः—हे भगवन् ! भवतः पृष्ठे गच्छन्त्याः यथा विहारशय्यासु कश्चित् श्रमः न भवति तथा श्रमो न भविष्यति ।

वाच्यान्तरम्—केनापि परिश्रमेण न भाविता… ।

भावार्थः—हे भगवन् ! जैसे विहारकाल में मुझे आपके सहयोग से कोई परिश्रम नहीं मालूम पड़ता वैसे ही हर जगह आपके पीछे चलते रहने पर मुझे कोई कष्ट न होगा ॥ ११ ॥

कुशकाशशरेषीका ये च कण्टकिनो द्रुमाः ।
तूलाजिनसमस्पर्शा मार्गे मम सह त्वया ॥ १२ ॥

पदच्छेदः—कुशकाशशरेषीकाः, ये, च, कण्टकिनः, द्रुमाः, तूलाजिनसमस्पर्शाः, मार्गे, मम, सह, त्वया ।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अन्वयः—ये, च, मार्गे, कुशकाशशरेषीकाः, कण्टकिनः, द्रुमाः (ते)त्वया, सह, मम, तूलाजिनसमस्पर्शाः, भविष्यन्तीति शेषः ।

व्याख्या—ये च (यावन्तः च) मार्गे (वन्ये पथि) कुशकाशशरेषीकाः (दर्भकाशादयः) कण्टकिनः (कण्टकवन्तः) द्रुमाः (वृक्षाः) ते त्वया (पत्या) सह (सार्द्धम्) मम (सीतायाः कृते) तूलाजिनसमस्पर्शाः (पिचुमृगचर्मादिभिः इव कोमलस्पर्शाः) भविष्यन्ति ।

व्युत्पत्तिः—कुशाश्च काशाश्च शराश्च इषीकाश्चेति (द्वन्द्वः) तूलाजिनैः समः स्पर्शो येषां ते (बहु०) ।

संस्कृतार्थः—हे भगवन् ! वने मार्गे ये कण्टकयुक्ताः वृक्षाः तेषां समेषां स्पर्शः भवता सहगमने मे मृगचर्मवत् कोमलः भविष्यति ।

वाच्यान्तरम्—कण्टकिभिः द्रुमैः तूलाजिनसमस्पर्शैः भूयताम् ।

भावार्थः—हे भगवन् ! जङ्गल के रास्ते में जो काँटेदार पेड़ हैं वे आपके साथ रहने से मेरे लिए रूई और मृगचर्म की तरह कोमल स्पर्श वाले हो जायँगे ॥ १२ ॥

महावातसमुद्भूतं यन्मामवकरिष्यति ।
रजो रमण तन्मन्ये परार्घ्यमिव चन्दनम् ॥ १३ ॥

पदच्छेदः—महावातसमुद्भूतम् , यत् , माम् , अवकरिष्यति, रजः, रमण, तत् , मन्ये, परार्घ्यम् , इव, चन्दनम् ।

अन्वयः—हे रमण ! महावातसमुद्भूतम् , यत् , रजः, माम् , अवकरिष्यति, तत् , परार्घ्यम् , चन्दनम् , इव, मन्ये ।

व्याख्या—हे रमण (हे पतिदेव) महावातसमुद्भूतम् (महावायुसमुत्थम्) यत् (वन्यम्) रजः (धूलिः) माम् (सीताम्) अवकरिष्यति (विक्षेप्स्यति) तत् (रजः) परार्घ्यम् (अत्युत्तमम्) चन्दनम् (अगरुः) इव (यथा) मन्ये (ज्ञास्यामि) ।

व्युत्पत्तिः—महान् वातः महावातः तेन समुद्भूतम् (तत्पु०) परम् अर्घ्यम् परार्घ्यम् ।

संस्कृतार्थः—हे पतिदेव ! कानने महावायुजम् यत् रजः माम् व्याप्स्यति तत् चन्दनम् इव स्वीकरिष्यति ।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

वाच्यान्तरम्—महावातसमुद्भूतेन रजसा अहम् अवकीर्ये, तत् मया मन्येत ।

भावार्थः—हे महाराज ! जङ्गल में चलते समय वायु के झोंके से जो धूल उड़कर हमारे ऊपर आयेगी उसे मैं चन्दनपराग समझकर निभाऊँगी ॥ १३ ॥

शाद्वलेषु यदा शिश्ये वनान्तर्वनगोचरा ।
कुथास्तरणयुक्तेषु किं स्यात् सुखतरं ततः ॥१४॥

पदच्छेदः—शाद्वलेषु, यदा, शिश्ये, वनान्तः, वनगोचरा, कुथास्तरण-युक्तेषु, किम्, स्यात्, सुखतरम्, ततः ।

अन्वयः—वनान्तः, वनगोचरा, शाद्वलेषु, कुथास्तरणमुख्येषु, यदा, शिश्ये, ततः, सुखतरम्, किम्, स्यात् ।

व्याख्या—वनान्तः (वनमध्ये) वनगोचरा (वनविषया) शाद्वलेषु (घासमयेषु) कुथास्तरणमुख्येषु (चित्रकम्बलरूपास्तरणयुक्तेषु) मञ्चेषु यदा (शयनं करिष्यते) ततः (ततोऽधिकम्) सुखतरम् (अतिसुखम्) किं स्यात् (किम् भवेत्) न किमपीत्यर्थः ।

व्युत्पत्तिः—वनस्यान्तः वनान्तः । कुथाः चित्रकम्बलाः तद्रूपास्तरणैः युक्ताः तेषु (तत्पु०) अतिशयेन सुखम् सुखतरम् । शादो जम्बालघासयोः इति कोशः ।

संस्कृतार्थः—हे भगवन् ! वने भवता सह घासादिशय्यासु शयानायाः मम तदेव सुखं स्यात् यत् महाभवने सुन्दरशय्यासु सम्पद्यते । इतः परं किम् सुखम् ?

वाच्यान्तरम्—वनगोचरया यदा शयिष्यते ततः सुखतरेण केन ।

भावार्थः—हे भगवन् ! आप के साथ जंगल में पर्णशय्या पर सोने से जो सुख हमे मिलेगा उससे अधिक कहाँ प्राप्त होगा ? ॥१४॥

पत्रं मूलं फलं यत्तु अल्पं वा यदि वा बहु ।
दास्यसे स्वयमाहृत्य तन्मेऽमृतरसोपमम् ॥१५॥

पदच्छेदः—पत्रम्, मूलम्, फलम्, यत्, तु, अल्पम्, वा, यदि, वा, बहु, दास्यसे, स्वयम्, आहृत्य, तत्, मे, अमृतरसोपमम् ।

अन्वयः—यत्, पत्रम्, मूलम्, फलम्, वा, अल्पम्, वा, बहु, वा, स्वयम्, आहृत्य, दास्यसे, तत्, मे, अमृतरसोपमम् ।

व्याख्या—कानने त्वम् यत् (यत्किञ्चित्) पत्रम् (पर्णम्) मूलम्, फलम्

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

वा अल्पम् (न्यूनम्) बहु वा (अधिकम् वा) स्वयम् (आत्मना) आहृत्य (एकत्रीकृत्य) दास्यसे (प्रदास्यसि) तत् (तदेव) मे (मम) अमृतरसोपमम् (अमृतरसायमानम्) भविष्यति ।

व्युत्पत्तिः—अमृतस्य रसः तेन उपमीयते इति अमृतरसोपमम् (तत्पुरुषगर्भः) ।

संस्कृतार्थः—हे भगवन् ! वने भवान् स्वहस्तेन किमपि फलमूलादिकं यत् मह्यम् दास्यति तत् अल्पम् बहु वा मे अमृतरसवद् भविष्यति ।

वाच्यान्तरम्—मूलेन फलेन अल्पेन वा बहुना, तेन अमृतरसोपमेन भूयताम् ।

भावार्थः—हे भगवन् ! जंगल में जो भी फल मूल थोड़ा या ज्यादा आप लाकर अपने हाथ से देंगे वही मेरे लिए अमृतरस की तरह होगा ॥१५॥

न मातुर्न पितुस्तत्र स्मरिष्यामि न वेश्मनः ।
आर्तवान्युपभुञ्जाना पुष्पाणि च फलानि च ॥१६॥

पदच्छेदः—न, मातुः, न, पितुः, तत्र, स्मरिष्यामि, न, वेश्मनः, आर्तवानि, उपभुञ्जाना, पुष्पाणि, च, फलानि, च ।

अन्वयः—तत्र, आर्तवानि, पुष्पाणि, फलानि, च, उपभुञ्जाना, मातुः, न, पितुः, न, वेश्मनः, च, न, स्मरिष्यामि ।

व्याख्या—तत्र (कानने स्थिता) आर्तवानि (ऋतूद्भवानि) पुष्पाणि (कुसुमानि) फलानि च (पुनः) उपभुञ्जाना (सेवमाना) मातुः (मातरम्) न (नैव) पितुः (पितरम्) न (नैव) वेश्मनः (गृहम्) च, न, स्मरिष्यामि (चिन्तयिष्यामि) कदापीति शेषः ।

व्युत्पत्तिः—ऋतौ भवानि आर्तवानि । उपभुङ्क्ते इति उपभुञ्जाना । उप-भुज + शानच् , टाप् । कर्मणः शेषत्वविवक्षायाम् मातुः इत्यादि षष्ठी ।

संस्कृतार्थः—हे महाराज राम ! वने ऋतुफलानि, पुष्पाणि च उपभुज्य मातापित्रादीनां गृहस्य च स्मरणं न करिष्यामि । तत्रैव प्रसन्ना स्थास्यामीति भावः ।

वाच्यान्तरम्—आर्तवानि फलानि…उपभुञ्जानया मया माता पिता वेश्म च न स्मरिष्यन्ते ।

भावार्थः—हे पतिदेव ! जंगल में ऋतु तथा पुष्प आदि जो भी वस्तुएं

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

प्राप्त होंगी उन्हीं से प्रसन्न रहती हुई मैं माता, पिता तथा घर आदि का स्मरण न करूँगी ॥१६॥

न च तत्र ततः किञ्चिद् द्रष्टुमर्हसि विप्रियम् ।
मत्कृते न च ते शोको भविष्यामि न दुर्भरा ॥१७॥

पदच्छेदः—न, च, तत्र, ततः, किञ्चिद्, द्रष्टुम्, अर्हसि, विप्रियम्, मत्कृते, न, च, ते, शोकः, भविष्यामि, न, दुर्भरा ।

अन्वयः—ततः, तत्र, च, किञ्चिद्, विप्रियम्, द्रष्टुम्, न अर्हसि, मत्कृते, च, ते, शोकः, न दुर्भरा, च, न, भविष्यामि ।

व्याख्या—ततः (पूर्वोक्तहेतोः) तत्र (कानने) च (पुनः) किञ्चित् (ईषदपि) विप्रियम् (अप्रियम्) द्रष्टुम् (अवलोकयितुम्) न (नैव) अर्हसि (योग्योऽसि) मत्कृते (मदर्थम्) च (पुनः) ते (तव) शोकः (चिन्ता) न (नैव) दुर्भरा (दुःखनीया) च न (नैव) भविष्यामि (स्थास्यामि) मन्निमित्तं किमपि ते कष्टम् न भविष्यति ।

व्युत्पत्तिः—विगतं प्रियं यस्मात् तत् । मदर्थमिति मत्कृते । दुःखेन भ्रियते इति दुर्भरा ।

संस्कृतार्थः—हे महाराज ! मदर्थम् किमपि ते कष्टं न स्यात् न शोकः न वा किञ्चित् अप्रियं स्यात् ।

वाच्यान्तरम्—किञ्चित् विप्रियम् द्रष्टुम् न अर्ह्यते···दुर्भरया च न भवितव्यम् ।

भावार्थः—हे राम ! जंगल में आप किसी प्रकार से भी मुझे अप्रिय में नहीं पा सकते, मेरे लिए शोक की भी आवश्यकता नहीं, मेरी रक्षा में भी आप को कष्ट न होगा ॥ १७ ॥

यस्त्वया सह स स्वर्गो निरयो यस्त्वया विना ।
इति जानन् परां प्रीतिं गच्छ राम मया सह ॥१८॥

पदच्छेदः—यः, त्वया, सह, सः, स्वर्गः, निरयः, यः, त्वया, बिना, इति, जानन्, पराम्, प्रीतिम्, गच्छ, राम, मया, सह ।

अन्वयः—हे राम, यः, त्वया, सह, सः, स्वर्गः, यः, त्वया, बिना, सः, निरयः, इति, पराम्, प्रीतिम्, जानन्, मया, सह गच्छ ।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

व्याख्या—हे राम (हे राघवेन्द्र) यः त्वया (भवता) सह (सार्द्धम्) सः तु स्वर्गः (नाकः) यः त्वया (भवता) विना (रहितेन) सः निरयः (नरकः) इति (एवम्) पराम् (उत्कृष्टम्) प्रीतिम् (स्नेहम्) जानन् (अवगच्छन्) मया (सीतया) सह (सार्द्धम्) गच्छ (वनं व्रज) ।

व्युत्पत्तिः—जानाति इति जानन् । ज्ञाधातोः वर्तमाने शतृप्रत्ययः । स्वरव्ययं स्वर्ग-नाक-त्रिदिव-त्रिदशालयाः इत्यमरः ।

संस्कृतार्थः—हे रामचन्द्र ! भवता सार्द्धं यत्र कुत्रापि मे निवासः स स्वर्गः, भवता विना यत्र भवेत् स नरक एवेति निश्चयं जानन् मां सहैव नय ।

वाच्यान्तरम्—यः…इति पराम् प्रीतिं विजानता मया सह गम्यताम् ।

भावार्थः—हे राम ! आपके साथ जहाँ रहना पड़े वहीं स्वर्ग है, जहाँ आपके विना रहना पड़े वही नरक है, मेरे ऐसे निश्चय को जानते हुए आप मुझे साथ ले चलें ॥ १८ ॥

अथ मामेवमव्यग्रां वनं नैव नयिष्यसे ।
विषमद्यैव पास्यामि मा वशं द्विषतां गमम् ॥ १९ ॥

पदच्छेदः—अथ, माम्, एवम्, अव्यग्राम्, वनम्, न, एव, नयिष्यसे, विषम्, अद्य, एव, पास्यामि, मा वशम्, द्विषताम्, गमम् ।

अन्वयः—अथ, एवम्, अव्यग्राम्, माम्, वनम्, न, एव, नयिष्यसे, चेत्, अद्य, एव, विषम्, पास्यामि, द्विषताम्, वशम्, मा गमम् ।

व्याख्या—अथ (अनन्तरम्) एवम् (वर्णितप्रकारेण) अव्यग्राम् (वनवासे दोषानगणयन्तीम्) माम् (सीताम्) वनम् (काननम्) न एव नयिष्यसे (न सह गमयिष्यसे) चेत् अद्य एव (अधुनैव) विषम् (गरलम्) पास्यामि (भोक्ष्ये) द्विषताम् (शत्रूणाम्) वशम् (अधिकारे) मा गमम् (मा व्राजिषम्) ।

व्युत्पत्तिः—न व्यग्रा अव्यग्रा ताम् (नञ्समासः) मागमम् अत्र गमधातोः लुङि "न माङ् योगे" इति अडभावः ।

संस्कृतार्थः—हे महाराज ! वनवासे मे किमपि कष्टं न भविष्यति इति निश्चिन्वानां यदि सह न नेष्यसे तदा अहम् गरलेन प्राणान् त्यक्ष्यामि, भरतादीनां शत्रुभूतानामधिकारे न स्थास्यामि ।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

वाच्यान्तरम्—एवम् अव्यग्रा अहम् न नेष्ये चेत्…विषम् पास्यते…।

भावार्थः—हे पतिदेव ! इस प्रकार जङ्गल चलने के लिए सन्नद्ध "वन में कोई कष्ट मुझे न होगा, न हम आपको ही कष्ट देंगी" इस प्रकार का निश्चय रखनेवाली मुझ सीता को अगर साथ नहीं ले चलेंगे तो मैं जहर खा जाऊँगी, पर भरत इत्यादि आपके शत्रुओं के अधिकार में रहना नहीं चाहती ॥ १९ ॥

पश्चादपि हि दुःखेन मम नैवास्ति जीवितम् ।
उज्झितायास्त्वया नाथ तदैव मरणं वरम् ॥ २० ॥

पदच्छेदः—पश्चात् , अपि, हि, दुःखेन, मम, न, एव, अस्ति, जीवितम्, उज्झितायाः, त्वया, नाथ, तदैव, मरणम् , वरम् ।

अन्वयः—हे नाथ ! हि, पश्चात् , अपि, त्वया, उज्झितायाः, मम, दुःखेन, जीवितम् , न, एव, अस्ति, तदा, मरणम् , एव, वरम् ।

व्याख्या—हे नाथ (हे पतिदेव) हि (यतः) पश्चात् (अनन्तरम्) अपि त्वया (रामेण) उज्झितायाः (त्यक्तायाः) मम (सीतायाः) दुःखेन (कष्टेन) जीवितम् (जीवनम्) नैव अस्ति (स्थास्यति) तदा (तर्हि) मरणम् (मृत्युः) एव वरम् (श्रेष्ठः) अर्थात् सर्वथा मरणे एव कल्याणम् ।

व्युत्पत्तिः—उज्झ उत्सर्गे इति धातो क्ते उज्झिता शब्दः ।

संस्कृतार्थः—हे पतिदेव ! त्वद्वियोगे पश्चादपि मे मरणं ध्रुवमिति पूर्वमेव कुतो न त्याज्यम् ।

वाच्यान्तरम्—त्वया उज्झिताया मम जीवितेन नैव भूयते इति मरणेन…।

भावार्थः—हे पतिदेव ! आपके वियोग में पीछे भी मरना ही है तो पहले ही से प्राणों को समाप्त कर देना अच्छा समझती हूँ ॥२०॥

इमं हि सहितुं शोकं मुहूर्त्तमपि नोत्सहे ।
किं पुनर्दश वर्षाणि त्रीणि चैकं च दुःखिता ॥२१॥

पदच्छेदः—इमम् , हि, सहितुम्, शोकम्, मुहूर्त्तम्, अपि, न, उत्सहे, किम् , पुनः, दश, वर्षाणि, त्रीणि, च, एकम् , च, दुःखिता ।

अन्वयः—हि, दुःखिता, इमम्, शोकम्, सहितुम्, मुहूर्त्तम्, अपि, न, उत्सहे, किम् , पुनः, दश, च, त्रीणि, च, एकम् , च, वर्षाणि ।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

व्याख्या—हि (यतः) दुःखिता (सदुःखा) इमम्, (पतिवियोगरूपम्) शोकम्, (सन्तापम्,) सहितुम्, (मर्षयितुम्,) मुहूर्त्तम्, (क्षणम्) अपि न (नैव) उत्सहे (समर्थाऽस्मि) किम् पुनः (भूयः) दश (दशसंख्यानि) च (पुनः) त्रीणि (त्रिसंख्यानि) च एकम्, (एकवर्षम्) च वर्षाणि (चतुर्दश-हायनानि) अतीवासम्भवम् इति भावः।

व्युत्पत्तिः—सहितुम् अत्र आर्षः इडागमः। पृथक् २ वर्षनिर्देशः अतिदुस्तर-त्वसूचनाय।

संस्कृतार्थः—हे महाराज! भवद्वियोगदुःखिता क्षणमपि कालं नेतुं न प्रभ-वामि चतुर्दशवर्षाणि यावत्तु कथं स्यात्?।

वाच्यान्तरम्—दुःखितया अयं शोकः…न उत्सह्यते…।

भावार्थः—हे महाराज! आप के वियोग से दुःखित मैं क्षणभर भी जी नहीं सकती तो चौदह वर्ष की तो बात ही क्या है? ॥२१॥

इति सा शोकसन्तप्ता विलप्य करुणं बहु।
चुक्रोश पतिमायस्ता भृशमालिङ्ग्य सस्वरम् ॥२२॥

पदच्छेदः—इति, सा, शोकसन्तप्ता, विलप्य, करुणम्, बहु, चुक्रोश, पतिम्, आयस्ता, भृशम्, आलिङ्ग्य, सस्वरम्।

अन्वयः—इति, शोकसन्तप्ता, सा, करुणम्, बहु, विलप्य, आयस्ता, पतिम्, भृशम्, आलिङ्ग्य, सस्वरम्, चुक्रोश।

व्याख्या—इति (वर्णितप्रकारेण) शोकसन्तप्ता (शोकदुःखिता) सा (सीता) करुणम् (करुणापूरम्) बहु (अधिकम्) विलप्य (विलापं कृत्वा) आयस्ता (आयासम् प्राप्ता) भृशम् (अत्यर्थम्) आलिङ्ग्य (आश्लिष्य) सस्व-रम् (स्वरपूर्वकम्) यथा स्यात्तथा चुक्रोश (रुरोद)।

व्युत्पत्तिः—शोकेन सन्तप्ता शोकसन्तप्ता (तृ० त०) स्वरेण सहितं यथा स्यात्तथा सस्वरम्।

संस्कृतार्थः—एवम् शोकदुःखिता सीता आयस्य पतिं राममाश्लिष्य रुरोद।

वाच्यान्तरम्—शोकसन्तप्तया…आयस्तया…पतिः सस्वरम् चुक्रुशे।

भावार्थः—इस तरह शोक में मग्न विलाप करती हुई सीता ने रामचन्द्रजी को पकड़ कर जोरों से रोना शुरू किया ॥२२॥

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

सा विद्धा बहुभिर्वाक्यैर्दिग्धैरिव गजाङ्गना ।
चिरसंनियतं बाष्पं मुमोचाग्निमिवारणिः ॥२३॥

पदच्छेदः—सा, विद्धा, बहुभिः, वाक्यैः, दिग्धैः, इव, गजाङ्गना, चिरसंनियतम्, बाष्पम्, मुमोच, अग्निम्, इव, अरणिः ।

अन्वयः—सा, बहुभिः, वाक्यैः, विद्धा, दिग्धैः, गजाङ्गना, इव, चिरसंनियतम्, बाष्पम्, अरणिः, अग्निम्, इव, मुमोच ।

व्याख्या—सा (सीता) बहुभिः (अनेकैः) वाक्यैः (वचनैः) विद्धा (ताडिता) दिग्धैः (विषतप्तबाणैः) गजाङ्गना (गजस्त्री) इव (यथा) चिरसंनियतम् (बहुकालं संनिरुद्धम्) बाष्पम् (अश्रु) अरणिः (यज्ञारणिः) अग्निम् (वह्निम्) इव (यथा) मुमोच (मुक्तवती) ।

व्युत्पत्तिः—गजस्य अङ्गना (ष० त०) चिरं संनियतम् ।

संस्कृतार्थः—यथा विषबाणैः विद्धा हस्तिनी, मन्थनैः अरणिः अग्निम् इव बहुवचनैः ताडिता सीता अश्रूणि अमुचत ।

वाच्यान्तरम्—तया गजाङ्गनया इव, अरणिना अग्निः इव अश्रु मुमुचे ।

भावार्थः—विषाक्त बाणों से बिंधी हुई हस्तिनी की तरह, मथी जाती हुई अरणि से अग्नि की तरह, वचनों से विद्धा सीता ने आँसू बहाये ॥२३॥

तस्याः स्फटिकसंकाशं वारि सन्तापसम्भवम् ।
नेत्राभ्यां परिसुस्राव पङ्कजाभ्यामिवोदकम् ॥२४॥

पदच्छेदः—तस्याः, स्फटिकसंकाशम्, वारि, सन्तापसम्भवम्, नेत्राभ्याम्, परिसुस्राव, पङ्कजाभ्याम्, इव, उदकम् ।

अन्वयः—तस्याः, नेत्राभ्याम्, पङ्कजाभ्याम्, उदकम्, इव, स्फटिकसङ्काशम्, सन्तापसम्भवम्, वारि, परिसुस्राव ।

व्याख्या—तस्याः (सीतायाः) नेत्राभ्याम् (नयनाभ्याम्) पङ्कजाभ्याम् (कमलाभ्याम्) उदकम् (जलम्) इव (यथा) स्फटिकसंकाशम् (स्फटिकसमम्) सन्तापसम्भवम् (सन्तापजम्) वारि (जलम्) परिसुस्राव (स्रोतुमारभत) ।

व्युत्पत्तिः—स्फटिकैः सङ्काशम्, सन्तापैः सम्भवम् (तृ० त०) ।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

संस्कृतार्थः—यथा कमलाभ्यां जलम् तथा सीतायाः नेत्राभ्याम् स्फटिकोपमम् शोकजम् जलम् अपतत् ।

वाच्यान्तरम्—स्फटिकसंकाशेन सन्तापवारिणा परिसुस्रुवे ।

भावार्थः—जैसे कमलों से जल उसी प्रकार सीताजी के नेत्रों से अति स्वच्छ आँसुओं के बूँद टपकने लगे ॥ २४ ॥

तत्सितामलचन्द्राभं मुखमायतलोचनम् ।
पर्यशुष्यत वाष्पेण जलोद्धृतमिवाम्बुजम् ॥ २५ ॥

पदच्छेदः—तत्, सितामलचन्द्राभम्, मुखम्, आयतलोचनम्, पर्यशुष्यत, वाष्पेण, जलोद्धृतम्, इव, अम्बुजम् ।

अन्वयः—तत्, सितामलचन्द्राभम्, आयतलोचनम्, मुखम्, जलोद्धृतम्, अम्बुजम्, इव, वाष्पेण, पर्यशुष्यत ।

व्याख्या—तत् (सीतासम्बन्धि) सितामलचन्द्राभम् (पौर्णमासीनिर्मलचन्द्रसमम्) आयतलोचनम् (विशालनेत्रम्) मुखम् (आननम्) जलोद्धृतम् (निर्जलम्) अम्बुजम् (कमलम्) इव (यथा) वाष्पेण (अश्रुबिन्दुना) पर्यशुष्यत (शुष्कं बभूव) ।

व्युत्पत्तिः—सितायाः अमलः यः चन्द्रः तस्येव आभा यस्य तत् (तत्पुरुषगर्भः) आयते लोचने तस्मिन् तत्, जलमुद्धृतं यस्मात् तत् (बहु०) अम्बुना जातम् अम्बुजम् (तत्पुरु०) ।

संस्कृतार्थः—पौर्णमासनिर्मलचन्द्र इव विशाललोचनम् मुखम् निर्जलं कमलमिव अशुष्यत ।

वाच्यान्तरम्—तेन आयतलोचनेन मुखेन…… अशुष्यत ।

भावार्थः—पूर्णमाणी के चन्द्रमा के समान निर्मल, बड़े बड़े हैं नेत्र जिनमें ऐसा सीताजी का मुख निर्जल कमल की तरह सूखने लगे ॥ २५ ॥

ताम् परिष्वज्य बाहुभ्यां विसंज्ञामिव दुःखिताम् ।
उवाच वचनं रामः परिविश्वासयँस्तदा ॥ २६ ॥

पदच्छेदः—ताम्, परिष्वज्य, बाहुभ्याम्, विसंज्ञाम्, इव, दुःखिताम्, उवाच, वचनम्, रामः, परिविश्वासयन्, तदा ।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अन्वयः—तदा रामः, विसंज्ञाम्, इव, दुःखिताम्, ताम्, बाहुभ्याम्, परिष्वज्य, परिविश्वासयन्, उवाच ।

व्याख्या—तदा (तस्मिन् काले) रामः (रामचन्द्रः) विसंज्ञाम् (गतासुम्) इव (यथा) दुःखिताम् (सदुःखाम्) ताम् (सीताम्) बाहुभ्याम् (कराभ्याम्) परिष्वज्य (आश्लिष्य) परिविश्वासयन् (उज्जीवयन्) उवाच (अवोचत्) ।

व्युत्पत्तिः—विगता संज्ञा यस्याः सा ताम् (बहु०) परितः विश्वासयति इति परिविश्वासयन् ।

संस्कृतार्थः—तदानीम् गतप्राणाम् इव दुःखिताम् सीताम् बाहुभ्याम् आश्लिष्य विश्वासयन् अब्रवीत् ।

वाच्यान्तरम्—रामेण विसंज्ञा······दुःखिता······सीता ऊचे ।

भावार्थः—उस समय रामचन्द्र जी मरी हुई की तरह सीता को बाहुओं से आलिङ्गनकर विश्वास दिलाते हुए बोले ॥ २६ ॥

न देवि ! तव दुःखेन स्वर्गमप्यभिरोचये ।
न हि मेऽस्ति भयं किञ्चित् स्वयम्भोरिव सर्वतः ॥ २७ ॥

पदच्छेदः—न, देवि, तव, दुःखेन, स्वर्गम्, अपि, अभिरोचये, न, हि, मे, अस्ति, भयम्, किञ्चित्, स्वयम्भोः, इव, सर्वतः ।

अन्वयः—हे देवि !, तव, दुःखेन, स्वर्गम्, अपि न, अभिरोचये, हि, मे, स्वयम्भोः, इव, सर्वतः, किञ्चिद्, भयम्, न, अस्ति ।

व्याख्या—हे देवि ! (हे सीते !) तव दुःखेन (त्वद्वियोगदुःखेन) स्वर्गम् (नाकम्) अपि न (नैव) अभिरोचये (अभिलषामि) हि (यतः) मे (मम) स्वयम्भोः (ब्रह्मणः) इव (यथा) सर्वतः (परितः) किञ्चित् (ईषदपि) भयम् (भीतिः) न, अस्ति (वर्तते) ।

व्युत्पत्तिः—स्वयम्भवतीति स्वयम्भूः दीर्घोकारान्तः । स्वयम्भोः इत्यार्षो गुणः ।

संस्कृतार्थः—हे देवि ! यथा त्वया कथितम् तथैव ममापि त्वद्वियोगे स्वर्गोऽपि न सुखदः । ब्रह्मण इव ममापि किञ्चित् कुतश्चित् कस्यचित् भयम् नास्तीति ।

वाच्यान्तरम्—तव दुःखेन स्वर्गः अपि न अभिरोच्यते, केनापि भयेन न भूयते ।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

भावार्थः—हे सीते ! तुम्हारे वियोग में स्वर्ग भी हमें सुखद नहीं। रही बात यह कि जगत् में हमें किसी से कहीं से भय नहीं है ॥ २७ ॥

तव सर्वमभिप्रायमविज्ञाय शुभानने ! ।
वासं न रोचयेऽरण्ये शक्तिमानपि रक्षणे ॥ २८ ॥

पदच्छेदः–तव, सर्वम् , अभिप्रायम् , अविज्ञाय, शुभानने, वासम् , न, रोचये, अरण्ये, शक्तिमान् , अपि, रक्षणे ।

अन्वयः—हे शुभानने !, रक्षणे, शक्तिमान् , अपि, तव, सर्वम् , अभिप्रायम् , अविज्ञाय, अरण्ये, वासम् , न रोचये ।

व्याख्या—हे शुभानने ! (हे सदानने !) रक्षणे (पालने) शक्तिमान् (समर्थः) अपि तव (सीतायाः) सर्वम् (सम्पूर्णम्) अभिप्रायम् (तात्पर्यम्) अविज्ञाय (अज्ञात्वा) अरण्ये (कानने) वासम् (निवासम्) न (नैव) रोचये (अभिलषामि) ।

व्युत्पत्तिः—शुभम् आननं यस्याः तत्सम्बुद्धौ हे शुभानने ! (बहु०); न विज्ञाय अविज्ञाय (नञ् समा०) ।

संस्कृतार्थः—हे सीते ! यद्यपि कानने तव रक्षायामहं समर्थः तथापि त्वदीयं भावं अज्ञात्वा तव वनगमनं नाभिलषामि ।

वाच्यान्तरम्—रक्षणे शक्तिमताऽपि अरण्ये वासः न अभिरोच्यते ।

भावार्थः—हे सीते ! यद्यपि जंगल में हम तुम्हारी रक्षा कर सकते हैं तथापि विना तुम्हारे अभिप्राय समझे वन जाने की राय कैसे देते ? ॥२८॥

यत्सृष्टासि मया सार्द्धं वनवासाय मैथिलि ! ।
न विहातुं मया शक्या प्रीतिरात्मवता यथा ॥२९॥

पदच्छेदः—यत् , सृष्टा, असि, मया, सार्द्धम् , वनवासाय, मैथिलि, न, विहातुम् , मया, शक्या, प्रीतिः, आत्मवता, यथा ।

अन्वयः—हे मैथिलि !, यत् , मया, सार्द्धम् , वनवासाय, सृष्टा, असि, अतः, यथा, आत्मवता, प्रीतिः, तथा, त्वम् , मया, विहातुम् , न, शक्या ।

व्याख्या—हे मैथिलि ! (हे वैदेहि !) यत् (यतः) मया (रामेण) सार्द्धम् (सह) वनवासाय (कानननिवासाय) सृष्टा (निर्मिता असि) अतः

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

यथा (येन प्रकारेण) आत्मवता (आत्मज्ञेन) प्रीतिः (दया) तथा विहातुम् (त्यक्तुम्) न (नैव) शक्या (समर्था) ।

व्युत्पत्तिः—वने वासः तस्मै (तत्पु०) । मिथिलायां भवा मैथिली तत्सम्बुद्धौ ।

संस्कृतार्थः—हे जानकि ! त्वं वनवासाय मया सार्द्धं विधात्रा निर्मिताऽसि । अतः यथा आत्मज्ञानी प्रीतिं त्यक्तुं न समर्थः तथा अहमपि त्वां त्यक्तुं न समर्थः ।

वाच्यान्तरम्—यथा आत्मवान् प्रीतिम् तथा अहमपि त्वां विहातुम् न शक्नोमि ।

भावार्थः—हे सीते ! विधाता ने हमारे साथ वन चलने के लिए तुम्हें बनाया है । अतः जैसे आत्मज्ञानी दया नहीं छोड़ता वैसेही मैं तुम्हें कैसे छोड़ सकता हूँ ॥२९॥

धर्मस्तु गजनासोरु सद्भिराचरितः पुरा ।
तं चाहमनुवर्तिष्ये यथा सूर्यं सुवर्चला ॥३०॥

पदच्छेदः—धर्मः, तु, गजनासोरु, सद्भिः, आचरितः, पुरा, तम्, च अहम्, अनुवर्त्तिष्ये, यथा, सूर्यम्, सुवर्चला ।

अन्वयः—हे गजनासोरु !, धर्मः, तु, सद्भिः, पुरा, आचरितः, अहम्, च तम्, अनुवर्तिष्ये, यथा, सुवर्चला, सूर्यम्, तथा त्वं मामनुवर्तस्वेति शेषः ।

व्याख्या—हे गजनासोरु ! (हे उत्तमजंघे !) धर्मः (वानप्रस्थः) तु सद्भिः (सज्जनैः) पुरा (पूर्वम्) आचरितः (अनुयातः) अहम् (रामः) च (अपि) तम् (वानप्रस्थम्) अनुवर्तिष्ये (अनुकरिष्ये) यथा (येन प्रकारेण) सुवर्चला सूर्यम् (भानुम्) तथा त्वम् माम् अनुवर्त्तस्व इति शेषः ।

व्युत्पत्तिः—गजस्य नासा गजनासा इव ऊरु यस्याः,तत्सम्बुद्धौ (तत्पुरुषः) ।

संस्कृतार्थः—हे सुन्दरगात्रे ! वानप्रस्थधर्मः सनातनः । त्वया सह वने तमेवाङ्गीकरिष्ये, त्वं च सूर्यम् सुवर्चला इव माम् अनुवर्त्तेथाः ।

वाच्यान्तरम्—धर्मम् तु सन्तः आचरन्, मया सः अनुवर्त्तिष्यते, सुवर्चलया सूर्यः यथा ।

भावार्थः—हे सीते ! वानप्रस्थधर्म सज्जनों ने बतलाया है, हम भी उसी के हिसाब से चलेंगे तुम भी जैसे सूर्य के पीछे सुवर्चला वैसे ही मेरा अनुगमन करना ॥ ३० ॥

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

न खल्वहं न गच्छेयं वनं जनकनन्दिनि ।
वचनं तन्नयति माम् पितुः सत्योपबृंहितम् ॥३१॥

पदच्छेदः—न, खलु, अहम्, न, गच्छेयम्, वनम्, जनकनन्दिनि, वचनम्, तत्, नयति, माम्, पितुः, सत्योपबृंहितम्।

अन्वयः—हे जनकनन्दिनि !, अहम्, खलु, वनम्, न गच्छेयम्, परन्तु पितुः, सत्योपबृंहितम्, तत्, वचनम्, माम्, नयति।

व्याख्या—हे जनकनन्दिनि ! (हे जानकि !) अहम् (रामः) खलु (निश्चयेन) वनम् (काननम्) न (नैव) गच्छेयम् (व्रजेयम्) परन्तु पितुः (दशरथस्य) सत्योपबृंहितम् (सत्यसमृद्धम्) तत् (पूर्वोक्तम्) वचनम् (वचः) माम् (रामम्) नयति (वनं गमयति) ।

व्युत्पत्तिः—जनकस्य नन्दिनी तत्सम्बुद्धौ (ष० त०) । सत्येन उपबृंहितम् सत्योपबृंहितम् (तृ० त०) ।

संस्कृतार्थः—हे सीते ! अहं स्वेच्छया वनं न गच्छामि किन्तु सत्यवक्तुः पितुः आदेशम् पालयन् एव व्रजामि ।

वाच्यान्तरम्—मया वनं न गम्येत परन्तु पितुः वचनेन अहं नीये ।

भावार्थः—हे सीते ! मैं अपनी इच्छा से तो वन नहीं जाता हूँ । मुझे तो सत्यवादी पिता की आज्ञा पालन से जाना पड़ रहा है ॥ ३१ ॥

एष धर्मश्च सुश्रोणि ! पितुर्मातुश्च वश्यता ।
आज्ञां चाहं व्यतिक्रम्य नाहं जीवितुमुत्सहे ॥ ३२ ॥

पदच्छेदः—एषः, धर्मः, च, सुश्रोणि, पितुः, मातुः, च, वश्यता, आज्ञाम्, च, अहम्, व्यतिक्रम्य, न, अहम्, जीवितुम्, उत्सहे ।

अन्वयः—हे सुश्रोणि !, पितुः, मातुः, च, वश्यता, एषः, धर्मः, अहम्, च, आज्ञाम्, व्यतिक्रम्य, जीवितुम्, न, उत्सहे ।

व्याख्या—हे सुश्रोणि ! (हे सुभगे !) पितुः (जनकस्य) मातुः (जनन्याः) च (पुनः) वश्यता (इष्टानुवर्तिता) एषः (अयम्) एव धर्मः (पुत्रस्य) अतः अहम् (रामः) च आज्ञाम् (आदेशम्) व्यतिक्रम्य (उल्लङ्घ्य) जीवितुम् (प्राणान् धारयितुम्) न (नैव) उत्सहे (शक्नोमि) ।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

व्युत्पत्तिः—सुष्ठु श्रोणिः यस्याः सा तत्सम्बु० (बहु०) बध्यमर्हति वध्यः तस्य भावः वध्यतामूले अहम्पदद्वयम् , तयोरेकमार्षमात्रम् ।

संस्कृतार्थः—हे सीते ! पित्रोः आज्ञापालनमेव पुत्रस्य धर्मः इति तद्विरुद्धे प्राणत्यागमेव उत्तमम् पश्यामि ।

वाच्यान्तरम्—एतेन धर्मेण मया च आज्ञाम् उल्लंघ्य···न उत्सह्यते ।

भावार्थः—हे सुन्दरि ! माता पिता की आज्ञा का पालन करना ही पुत्र का कर्त्तव्य है । अतः इसके विरुद्ध मुझे जीना भी पसन्द नहीं ॥ ३२ ॥

अस्वाधीनं कथं दैवम् प्रकारैरभिराध्यते ।
स्वाधीनं समतिक्रम्य पितरं मातरं गुरुम् ॥ ३३ ॥

पदच्छेदः—अस्वाधीनम् , कथम् , दैवम् , प्रकारैः, अभिराध्यते, स्वाधीनम् , समतिक्रम्य, पितरम् , मातरम् , गुरुम् ।

अन्वयः—स्वाधीनम् , पितरम् , मातरम् , गुरुम् , (च) समतिक्रम्य, अस्वाधीनम् , दैवम् , प्रकारैः, कथम् , अभिराध्यते ।

व्याख्या—स्वाधीनम् (प्रत्यक्षम्) पितरम् (जनकम्) मातरम् (जननीम्) गुरुम् (पूज्यम्) च समतिक्रम्य (लंघयित्वा) अस्वाधीनम् (अप्रत्यक्षम्) दैवम् (अदृष्टम्) प्रकारैः (भावनामात्रसाध्याराधनप्रकारैः) कथम् (कस्मात्) आराध्यते (अर्च्यते) ।

व्युत्पत्तिः—स्वस्य अधीनम् (ष० त०) । न स्वाधीनम् अस्वाधीनम् (नञ्-समासः) ।

संस्कृतार्थः—प्रत्यक्षदेवते पितरौ विहाय अप्रत्यक्षं दैवम् अर्च्यते इति का बुद्धिः ? ।

वाच्यान्तरम्—अस्वाधीनं दैवम् कथमाराधयन्ति ? ।

भावार्थः—इस जगत् में प्रत्यक्ष देवता पिता और माता को छोड़ अप्रत्यक्ष देवता का पूजन करना अज्ञानपूर्ण बात है ॥ ३३ ॥

यत्र त्रयं त्रयो लोकाः पवित्रं तत्समं भुवि ।
नाऽन्यदस्ति शुभापाङ्गे ! तेनेदमभिराध्यते ॥ ३४ ॥

पदच्छेदः—यत्र, त्रयम् , त्रयः, लोकाः, पवित्रम् , तत्समम्, भुवि, न, अन्यत् , अस्ति, शुभापाङ्गे, तेन, इदम् , अभिराध्यते ।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अन्वयः—हे शुभापाङ्गे, यत्र, त्रयम्, त्रयः, लोकाः, भुवि, तत्समम्, अन्यत्, पवित्रम्, न, अस्ति, तेन, इदम्, अभिराध्यते।

व्याख्या—हे शुभापाङ्गे! (हे सुनेत्रे!) यत्र (पित्राद्याराधने सति) त्रयम् (धर्मार्थकामरूपम्) भवति त्रयः (त्रिसंख्याः) लोकाः (मर्त्यलोकाद्यधिष्ठित-देवताः) आराधिता भवन्ति। भुवि (पृथिव्याम्) तत्समम् (तदुपमम्) अन्यत् (अपरम्) पवित्रम् (पूतम्) न (नैव) अस्ति (वर्त्तते) तेन (हेतुना) इदम् (पित्रादिकम्) अभिराध्यते (पूज्यते)।

व्युत्पत्तिः—शुभम् अपाङ्गं यस्याः सा तत्सम्बुद्धौ (बहु०)।

संस्कृतार्थः—हे सीते! यत्र पित्रादिकम् पूज्यते तत्र धर्मार्थकामाः वसन्ति। त्रिलोकीस्थाः सर्वेऽपि देवाः तत्पूजयैव पूजिता भवन्ति। तत्स्थानसमम् किमपि पुण्यजनकं स्थानं नास्ति, अतः लोकैः पित्रादिकम् पूज्यते।

वाच्यान्तरम्—भुवि तेन समेन नान्येन पवित्रेण भूयते···।

भावार्थः—हे प्रिये! जिस जगह माता पिता गुरु आदि की पूजा रहती है वहाँ पर धर्म, अर्थ, काम तीनों स्वयं निवास करते हैं उस स्थान के तुल्य कोई पुण्यस्थान नहीं। साथही पिता आदि की पूजा से ही विश्व के समस्त देवता पूजित हो जाते हैं, अतः लोग इनकी पूजा करते हैं॥ ३४॥

न सत्यं दानमानौ वा यज्ञो वाप्याप्तदक्षिणः।
तथा बलकराः सीते! यथा सेवा पितुर्मता॥ ३५॥

पदच्छेदः—न, सत्यम्, दानमानौ, वा, यज्ञः, वा, अपि, आप्तदक्षिणः, तथा, बलकराः, सीते, यथा, सेवा, पितुः, मता।

अन्वयः—हे सीते!, सत्यम्, दानमानौ, वा, आप्तदक्षिणः, यज्ञः, अपि, वा, तथा, बलकराः, न, यथा, पितुः, सेवा, मता।

व्याख्या—हे सीते! (हे जानकि!) सत्यम् (ऋतम्) दानमानौ (त्याग-सत्कारौ) वा आप्तदक्षिणः (प्राप्तदक्षिणः) यज्ञः (यागः) अपि वा तथा (तेन प्रकारेण) बलकराः (परलोकसुखावहाः) न (नैव) यथा (यादृशी) पितुः (जनकस्य) सेवा (शुश्रूषा) मता (अभीष्टा)।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

व्युत्पत्तिः—दानं च मानश्च दानमानौ (इतरे० द्व०)। आप्ता दक्षिणा यत्र सः (बहु०)। बलं कुर्वते इति बलकराः (तत्पु०)।

संस्कृतार्थः—हे सीते ! यथा पितुः सेवा परलोकोपकारिणी तथा सत्य-दान-मानयज्ञादयः न भवन्ति ।

वाच्यान्तरम्—सत्येन दानमानाभ्याम् यज्ञेन वा बलकरैः न भूयते यथा पितुः सेवया……।

भावार्थः—हे सीते ! सत्य दान मान यज्ञ आदि उतने परलोक हितकारी नहीं होते जितनी कि पिता की सेवा ॥३५॥

स्वर्गो धनं वा धान्यं वा विद्याः पुत्राः सुखानि च ।
गुरुवृत्त्यनुरोधेन न किञ्चिदपि दुर्लभम् ॥३६॥

पदच्छेदः—स्वर्गः, धनम्, वा, धान्यम्, वा, विद्याः, पुत्राः, सुखानि, च, गुरुवृत्त्यनुरोधेन, न, किञ्चित्, अपि, दुर्लभम् ।

अन्वयः—गुरुवृत्त्यनुरोधेन, स्वर्गः, धनम्, वा, धान्यम्, वा, विद्याः, पुत्राः, सुखानि, च, किञ्चित्, अपि, दुर्लभम्, न ।

व्याख्या—गुरुवृत्त्यनुरोधेन (गुरुचित्तवृत्त्यनुसारेण) स्वर्गः (नाकः) धनम् (सम्पत्तिः) वा धान्यम् (अन्नादिः वा) विद्याः (चतस्रः) पुत्राः (सुताः) सुखानि (कल्याणानि) किञ्चित् (किमपि) दुर्लभम् (दुष्प्राप्यम्) न (नैव) अस्ति इति शेषः ।

व्युत्पत्तिः—गुरोः वृत्तिः तस्याः अनुरोधः तेन (तत्पु०) दुःखेन लभ्यते इति दुर्लभम् ।

संस्कृतार्थः—गुरूणामाज्ञापालनेन इह धनधान्यादिकं विद्यापुत्रादिकं स्वर्गादि-लोकाः वा केऽपि न दुर्लभाः ।

वाच्यान्तरम्—धनेन, धान्येन, सुखैः वा केनापि न दुर्लभेन भूयते ।

भावार्थः—गुरुजनों की आज्ञा का पालन करने से धन, धान्य, पुत्र, विद्या, सुख तथा स्वर्ग आदि कुछ भी दुर्लभ नहीं है ॥३६॥

देव-गन्धर्व-गोलोकान् ब्रह्मलोकाँस्तथा परान् ।
प्राप्नुवन्ति महात्मानो मातापितृपरायणाः ॥३७॥

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

पदच्छेदः—देवगन्धर्वगोलोकान्, ब्रह्मलोकान्, तथा, परान्, प्राप्नुवन्ति, महात्मानः, मातापितृपरायणाः ।

अन्वयः—मातापितृपरायणाः, महात्मानः, देवगन्धर्वगोलोकान्, तथा, परान्, ब्रह्मलोकान्, प्राप्नुवन्ति ।

व्याख्या—मातापितृपरायणाः (पितृसेवानिरताः) महात्मानः (महापुरुषाः) देवगन्धर्वगोलोकान् (देवादिप्रशस्तलोकान्) तथा (अथ च) परान् (श्रेष्ठान्) ब्रह्मलोकान् (ब्रह्मभुवनानि) प्राप्नुवन्ति (लभन्ते) नात्र सन्देहः ।

व्युत्पत्तिः—माता च पिता च मातापितरौ । परं अयनम् येषां ते (द्वन्द्वगर्भः बहु०) ब्रह्मणः लोकाः तान् (ष० त०) ।

संस्कृतार्थः—ये खलु पित्रादिसेवानिरताः ते दैवात् ब्रह्मगोलोकादीन् अपि लभन्ते किम् ऐहिकविभूतिचर्चया ।

वाच्यान्तरम्—मातापितृपरायणैः महात्मभिः देव-गोलोकाः परे ब्रह्मलोकाः प्राप्यन्ते ।

भावार्थः—माता पिता की सेवा में लगे हुए महापुरुष को देवगन्धर्वादिलोक तथा ब्रह्मलोक भी प्राप्त होते हैं, ऐहिक पदार्थों की तो बात ही क्या है ! ॥३७॥

स माम् पिता यथा शास्ति सत्यधर्मपथे स्थितः ।
तथा वर्तितुमिच्छामि स हि धर्मः सनातनः ॥ ३८ ॥

पदच्छेदः—सः, माम्, पिता, यथा, शास्ति, सत्यधर्मपथे, स्थितः, तथा, वर्त्तितुम्, इच्छामि, सः, हि, धर्मः, सनातनः ।

अन्वयः—सत्यधर्मपथे, स्थितः, सः, पिता, यथा, माम्, शास्ति, तथा, वर्त्तितुम्, इच्छामि, हि, सः, सनातनः, धर्मः ।

व्याख्या—सत्यधर्मपथे (सत्यधर्ममार्गे) स्थितः (वर्तमानः) सः (प्रसिद्धः) पिता (दशरथः) यथा (येन प्रकारेण) माम् (रामम्) शास्ति (आज्ञापयति) तथा (तेन प्रकारेण) वर्त्तितुम् (चलितुम्) इच्छामि (अभिलषामि) हि (यतः) सः (पूर्वोक्तः) सनातनः (शाश्वतः) धर्मः अस्ति इति शेषः ।

व्युत्पत्तिः—सत्यं च धर्मश्च सत्यधर्मौ तयोः पन्थाः तस्मिन् । सना भवः सनातनः, "सनासनात् नित्ये" इति अव्ययम्, "सायं चिरम्—" इति पाणिनीयेन व्युत्पत्तौ ।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

संस्कृतार्थः—सत्यधर्मावलम्बी मे पिता यथा माम् आदिशति तथैव मया कर्त्तव्यम् । हि सः एव सनातनः धर्मः ।

वाच्यान्तरम्—सत्यधर्मपक्षे स्थितेन तेन पित्रा यथा शास्ये तथा वर्तितुम् इष्ये······ ।

भावार्थः—सत्यधर्मपथ पर चलने वाले मेरे पिता राजा दशरथ मुझे जैसी आज्ञा दे रहे हैं । मैं वैसाही करूँगा । यही सनातन धर्म है ॥ ३८ ॥

मम सन्ना मतिः सीते ! नेतुं त्वां दण्डकावनम् ।
वसिष्यामीति सा त्वं मामनुयातुं सुनिश्चिता ॥ ३९ ॥

पदच्छेदः—मम, सन्ना, मतिः, सीते, नेतुम्, त्वाम्, दण्कावनम्, वसिष्यामि, इति, सा, त्वम्, माम्, अनुयातुम्, सुनिश्चिता ।

अन्वयः—हे सीते !, त्वाम्, दण्डकावनम्, नेतुम्, मम, मतिः, सा, सन्ना, त्वम्, वसिष्यामि, इति, माम्, अनुयातुम्, सुनिश्चिता ।

व्याख्या—हे सीते ! (हे जानकि !) त्वाम् (सीताम्) दण्डकावनम् (काननविशेषम्) नेतुम् (सहनेतुम्) मम (रामस्य) या मतिः (विरुद्धा बुद्धि) आसीत् सा (अनयनरूपा बुद्धिः) इदानीम् सन्ना (शीर्णा) त्वम् (सीता) वसिष्यामि (वने वत्स्यामि) इति (एवं रूपेण) माम् (रामम्) अनुयातुम् (अनुगन्तुम्) सुनिश्चिता (निश्चितविचारा) असि ।

व्युत्पत्तिः—दण्डका इति वनम् दण्डकावनम् । सुष्ठु निश्चिता सुनिश्चिता । अनु पश्चात् यातुम् अनुयातुम् । वसिष्यामि अत्र आर्ष इडागमः ।

संस्कृतार्थः—हे सीते ! त्वाम् दण्डकावनं न नेतुं या मम बुद्धिः आसीत्, सा त्वदीयविचारं श्रुत्वा इदानीं परिवर्त्तिता ।

वाच्यान्तरम्—मम मत्या···असादि···।

भावार्थः—हे सीते ! तुम्हें दण्डकावन न ले जाने की जो मेरी इच्छा थी वह तुम्हारे विचारों को सुनकर बदल गई । अतः अब तुम चल सकती हो ॥३९॥

सा हि दिष्टानवद्याङ्गि ! वनाय मदिरेक्षणे ! ।
अनुगच्छस्व मां भीरु ! सह धर्मचरी भव ॥४०॥

पदच्छेदः—सा, हि, दिष्टा, अनवद्याङ्गि, वनाय, मदिरेक्षणे, अनुगच्छस्व, माम्, भीरु, सह, धर्मचरी, भव ।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अन्वयः—हे अनवद्याङ्गि !, सा, हि, वनाय, दिष्टा, हे मदिरेक्षणे, माम्, अनुगच्छस्व, हे भीरु !, सह धर्मचरी, भव ।

व्याख्या—हे अनवद्याङ्गि ! (हे सुन्दराङ्गि !) सा (त्वम्) हि (यतः) वनाय (वनगमनाय) दिष्टा (मया आदिष्टा) माम् (स्वपतिम्) अनुगच्छस्व (अनुव्रज) हे भीरु ! (हे भीते !) सहधर्मचरी (सहधर्मचारिणी) भव (स्याः) ।

व्युत्पत्तिः—न अवद्यानि अङ्गानि यस्याः सा तत्सम्बुद्धौ (बहु०) । मदिरा इव ईक्षणे नेत्रे यस्याः सा तत्सम्बुद्धौ (बहु०) सह धर्मं चरतीति सहधर्मचरी (तत्पु०) । अनुगच्छस्व आत्मने पदमार्षम् ।

संस्कृतार्थः—हे सीते ! वनं गच्छ इति आदिशामि । मत्तनेत्रे ! माम् अनुगच्छ । हे भीरु ! मया सह सर्वान् पतिव्रतास्त्रीधर्मान् चर ।

वाच्यान्तरम्—ताम् त्वाम् आदिशम्, त्वयाऽहमनुगम्यै । त्वया सह धर्मचारिण्या भूयताम् ।

भावार्थः—हे प्रिये ! तुम्हें मैंने वन चलने की आज्ञा दे दी, तुम मेरे पीछे चलो, पतिव्रताओं के उचित धर्मों का साथ रह पालन करो ॥४०॥

सर्वथा सदृशं सीते ! मम स्वस्य कुलस्य च ।
व्यवसायमनुक्रान्ता क्रान्ते त्वमसि शोभनम् ॥४१॥

पदच्छेदः—सर्वथा, सदृशम्, सीते, मम, स्वस्य, कुलस्य, च, व्यवसायम्, अनुक्रान्ता, क्रान्ते, त्वम्, असि, शोभनम् ।

अन्वयः—हे सीते !, हे क्रान्ते !, त्वम्, सर्वथा, मम, स्वस्य, कुलस्य, च, सदृशम्, शोभनम्, व्यवसायम्, अनुक्रान्ता, असि ।

व्याख्या—हे सीते ! (हे जानकि !) हे क्रान्ते ! (हे क्रमणशीले !) त्वम् (सीता) सर्वथा (सर्वैः प्रकारैः) मम (रामस्य) स्वस्य (स्वकीयस्य) कुलस्य (क्षत्रियराजकुलस्य) च (पुनः) सदृशम् (योग्यम्) शोभनम् (उत्तमम्) व्यवसायम् (भर्त्रनुसरणनिश्चयम्) अनुक्रान्ता (प्राप्ता) असि (वर्तसे) प्रीत्यतिशयद्योतनाय सम्बोधनद्वयम् ।

व्युत्पत्तिः—सदृशशब्दयोगे इह षष्ठी, तृतीयायाः विकल्पात् । सर्वशब्दात् प्रकारेऽर्थे थाल् तद्धितः ।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

संस्कृतार्थः—हे सीते ! त्वम् मम राजकुलस्य अनुरूपम् स्वस्याः पतिव्रतायाः च अनुरूपम् निश्चयम् वनगमनरूपम् अकार्षीः ।

वाच्यान्तरम्—त्वया सर्वथा शोभनः व्यवसायः अनुक्रान्तः••• ।

भावार्थः—हे सीते ! तुम हर तरह से अपनी, मेरी, राजकुल की तथा पतिव्रता धर्म की मर्यादा के अनुसार ही ऐसा उत्तम निश्चय पर पहुँची हो ॥४१॥

आरभस्व शुभश्रोणि ! वनवाससमाः क्रियाः ।
नेदानीं त्वदृते सीते ! स्वर्गोऽपि मम रोचते ॥४२॥

पदच्छेदः—आरभस्व, शुभश्रोणि !, वनवाससमाः, क्रियाः, न, इदानीम्, त्वत्, ऋते, सीते, स्वर्गः, अपि, मम, रोचते ।

अन्वयः—हे शुभश्रोणि ! वनवाससमाः, क्रियाः, आरभस्व, हे सीते ! इदानीम्, त्वत्, ऋते, स्वर्गः, अपि मम, न, रोचते ।

व्याख्या—हे शुभश्रोणि ! (हे सुन्दरि !) वनवाससमाः (वनवासोचिताः) क्रियाः (दानादिक्रियाः) आरभस्व (प्रारभस्व), हे सीते (हे जानकि) इदानीम् (एवं निश्चये) त्वत् (सीतायाः) ऋते (वर्जनेन) स्वर्गः (नाकः) अपि मम (रामाय) न रोचते (प्रियायते) ।

व्युत्पत्तिः—वने वासः वनवासः तस्य समाः ताः (तत्पु०) ।

संस्कृतार्थः—हे सीते ! इदानीं वनवासोचिताः दानादिक्रियाः सम्पादय । त्वां विहाय मह्यं स्वर्गः अपि न रोचते ।

वाच्यान्तरम्—हे सीते ! त्वया वनवाससमाः क्रियाः आरभ्यन्ताम् । मम स्वर्गेणापि न रुच्यते ।

भावार्थः—हे सीते ! अब इस समय तू दान आदि करके यात्रा की तैयारी करो । तुम्हारे बिना मुझे स्वर्ग भी अच्छा नहीं लग रहा है ॥४२॥

ब्राह्मणेभ्यश्च रत्नानि भिक्षुकेभ्यश्च भोजनम् ।
देहि चाशंसमानेभ्यः सन्त्वरस्व च मा चिरम् ॥४३॥

पदच्छेदः—ब्राह्मणेभ्यः, च, रत्नानि, भिक्षुकेभ्यः, च, भोजनम्, देहि, च, आशंसमानेभ्यः, सन्त्वरस्व, च, मा, चिरम् ।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अन्वयः—ब्राह्मणेभ्यः, च, रत्नानि, आशंसमानेभ्यः, च, भिक्षुकेभ्यः, च, भोजनम्, देहि, सन्त्वरस्व, च, मा, चिरम्।

व्याख्या—ब्राह्मणेभ्यः (द्विजेभ्यः) च रत्नानि (माणिक्यानि) आशंसमानेभ्यः (याचमानेभ्यः) च (पुनः) भिक्षुकेभ्यः च (याचकेभ्यः) च भोजनम् (अन्नादिकम्) देहि (वितर) सन्त्वरस्व च (आशु कुरु) मा (न) चिरम् (विलम्बम्) न विलम्बनीयमिति यावत्।

व्युत्पत्तिः—आशंसन्ते इत्याशंसमानाः तेभ्यः। ब्राह्मणेभ्यः भिक्षुकेभ्यः च सम्प्रदाने चतुर्थी।

संस्कृतार्थः—हे सीते! ब्राह्मणेभ्यः मणिहीरकादीनि, भोजनार्थिभ्यः च भोजनादिकं शीघ्रम् देहि। विलम्बं न कुरु।

वाच्यान्तरम्—ब्राह्मणेभ्यः रत्नानि दीयन्ताम्। सन्त्वर्यताम्···।

भावार्थः—हे प्रिये! ब्राह्मणों का रत्न आदि से तथा भिक्षुकों का भोजन आदि से जल्दी सत्कार करके चलो, विलम्ब करना ठीक नहीं ॥४३॥

भूषणानि महार्हाणि वरवस्त्राणि यानि च।
रमणीयाश्च ये केचित् क्रीडार्थाश्चाप्युपस्कराः ॥४४॥

शयनीयानि यानानि मम चान्यानि यानि च।
देहि स्वभृत्यवर्गस्य ब्राह्मणानामनन्तरम् ॥४५॥

पदच्छेदः—भूषणानि, महार्हाणि, वरवस्त्राणि, यानि, च, रमणीयाः, च, ये, केचित्, क्रीडार्थाः, च, अपि, उपस्कराः, शयनीयानि, यानानि, मम, च, अन्यानि, यानि, च, देहि, स्वभृत्यवर्गस्य, ब्राह्मणानाम्, अनन्तरम्।

अन्वयः—महार्हाणि, भूषणानि, यानि, च, वरवस्त्राणि, ये, केचित्, च, क्रीडार्थाः, उपस्कराः, अपि, मम, च, अन्यानि, यानि, शयनीयानि, यानानि, (तानि, सर्वाणि) ब्राह्मणानाम्, अनन्तरम्, स्वभृत्यवर्गस्य, देहि।

व्याख्या—महार्हाणि (बहुमूल्यानि) भूषणानि (आभरणानि) यानि च वरवस्त्राणि (उत्तमवासांसि) ये केचित् च क्रीडार्थाः (खेलनोपयुक्ताः) उपस्कराः (स्वर्णमयपुत्रिकाद्युपकरणानि) अपि, मम (रामस्य) चात् तव अन्यानि (इतराणि) यानि (यावन्ति) शयनीयानि (शयनसाधनानि) यानानि (वाह-

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

नानि) तानि सर्वाणि ब्राह्मणानाम् (द्विजेभ्यः) अनन्तरम् (प्रदानानन्तरम्) स्वभृत्यवर्गस्य (स्वसेवकवृन्दाय) देहि (वितर) किमपि न शेष्यमिति भावः ।

व्युत्पत्तिः—महान्ति अर्हन्ति इति महार्हाणि । वराणि वस्त्राणि वरवस्त्राणि (कर्मधा०) । क्रीडा अर्थः येषां ते क्रीडार्थाः (बहु०) । स्वस्य यः भृत्यवर्गः तस्य (ष० त०) अत्र षष्ठी चतुर्थ्यर्थे आर्षी ।

संस्कृतार्थः—हे प्रिये ! यानि-भूषण-वसन-वाहन-शयन खेलन-विहारादिसाधनानि तानि पूर्वं ब्राह्मणेभ्यः यथोचितम् प्रदाय पश्चात् अवशिष्टम् स्वभृत्यवर्गेभ्यः देहि ।

वाच्यान्तरम्—महार्हाणि भूषणानि•••उपस्कराः•••त्वया ब्राह्मणेभ्यः स्वभृत्यवर्गाय च प्रदीयन्ताम् ।

भावार्थः—हे प्रिये ! जितने भी कीमती गहने कपड़े बिछौने चारपाई खेलने की गुड्डी आदि, सवारियाँ आदि सभी ब्राह्मणों को यथायोग्य देकर जो बचे उसे अपने नौकरों को दो ॥४४—४५॥

अनुकूलं तु सा भर्तुर्ज्ञात्वा गमनमात्मनः ।
क्षिप्रं प्रमुदिता देवी दातुमेव प्रचक्रमे ॥४६॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्येऽयोध्याकाण्डे
त्रिंशः सर्गः ॥ ३० ॥

पदच्छेदः—अनुकूलम्, तु, सा, भर्तुः, ज्ञात्वा, गमनम्, आत्मनः, क्षिप्रम्, प्रमुदिता, देवी, दातुम्, एव, प्रचक्रमे ।

अन्वयः—देवी, सा, भर्तुः, गमनम्, आत्मनः, अनुकूलम्, ज्ञात्वा, तु प्रमुदिता, क्षिप्रम्, एव, दातुम्, प्रचक्रमे ।

व्याख्या—देवी (पूजनीया) सा (सीता) भर्तुः (रामस्य) गमनम् (वनगमनम्) आत्मनः (स्वस्याः) अनुकूलम् (इष्टम्) ज्ञात्वा (अवगम्य) तु प्रमुदिता (प्रहृष्टा) क्षिप्रम् (आशु) एव दातुम् (उत्स्रष्टुम्) प्रचक्रमे (समारभत) ।

व्युत्पत्तिः—प्रकर्षेण मुदिता प्रमुदिता ।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

संस्कृतार्थः—पूज्या सा माता सीता पत्युः अभिप्रायम् स्वानुकूलमभीष्टं बुद्ध्वा तदाज्ञया शीघ्रम् दानाय अचेष्टत ।

वाच्यान्तरम्—देव्या तया...ज्ञात्वा...प्रमुदितया...प्रचक्रमे ।

भावार्थः—उस पूजनीया देवी सीता ने अपने स्वामी रामचन्द्र जी महाराज के अभिप्राय को अपने अभीष्टानुकूल समझ कर दान इत्यादि कार्यों में आज्ञानुसार शीघ्रता ही किया ॥४६॥

इति वाल्मीकीये रामवनगमने आचार्यश्रीराजनारायणशास्त्रिशुक्लरचितायां प्रभाटीकायां सप्तमः सर्गः ॥ ७ ॥

अथ अष्टमः सर्गः ।

एवं श्रुत्वा स संवादं लक्ष्मणः पूर्वमागतः ।
बाष्पपर्याकुलमुखः शोकं सोढुमशक्नुवन् ॥ १ ॥

पदच्छेदः—एवम्, श्रुत्वा, सः, संवादम्, लक्ष्मणः, पूर्वम्, आगतः, बाष्पपर्याकुलमुखः, शोकम्, सोढुम्, अशक्नुवन् ।

अन्वयः—पूर्वम्, आगतः, सः, लक्ष्मणः, एवम्, संवादम्, श्रुत्वा, शोकम्, सोढुम्, अशक्नुवन्, बाष्पपर्याकुलमुखः, बभूवेति शेषः ।

व्याख्या—पूर्वम् (सीतारामसंवादप्रवृत्तेः प्राक्) आगतः (तत्र उपस्थितः) सः (रामानुजः) लक्ष्मणः (तन्नामकः) एवम् (वर्णितम्) संवादम् (सीतारामयोः वार्तालापम्) श्रुत्वा (निशम्य) शोकम् (रामविरहजम्) सोढुम् (मर्षयितुम्) अशक्नुवन् (असमर्थः) बाष्पपर्याकुलमुखः (अश्रुव्याप्ताननः) बभूव । लक्ष्मणस्तु एवं स्वमनसि विचारितवान् यत् रामः सीतायाः सहगमनं ईदृशा विवादेन स्वीकरोति चेत् मम का चर्चा ! मां न नयति चेत् रामविरहजः शोकः ।

व्युत्पत्तिः—शक्नोतीति शक्नुवन् न शक्नुवन् अशक्नुवन् (नञ्समासः) बाष्पेण पर्याकुले अक्षिणी यस्यासौ बाष्पपर्याकुलेक्षणः (बहु०) ।

संस्कृतार्थः—सीतारामसंवादप्रारम्भात् पूर्वमेवागतः लक्ष्मणः सर्वं श्रुत्वा वनं नयति न वेति चिन्तमानः शोकेन अश्रुपूर्णाननः बभूव ।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

वाच्यान्तरम्—पूर्वम् आगतेन तेन लक्ष्मणेन शोकं सोढुम् अशक्नुवता बभूवे।

भावार्थः—सीताराम के इस वर्णित संवाद के पहले से ही वहाँ उपस्थित लक्ष्मण जी ने यह सोचकर कि अपनी धर्मपत्नी को साथ ले जाने में जब ये इतना विषाद किये तो मेरी बात ही क्या ! पता नहीं मुझे साथ लेंगे या नहीं, इसी संभावित रामविरहशोक में रोते से देख पड़े ॥ १ ॥

स भ्रातुश्चरणौ गाढं निपीड्य रघुनन्दनः ।
सीतामुवाचातियशां राघवं च महाव्रतम् ॥ २ ॥

पदच्छेदः—सः, भ्रातुः, चरणौ, गाढम्, निपीड्य, रघुनन्दनः, सीताम्, उवाच, अतियशाम्, राघवम्, च, महाव्रतम् ।

अन्वयः—रघुनन्दनः, सः, भ्रातुः, चरणौ, गाढम्, निपीड्य, अतियशाम्, सीताम्, महाव्रतम्, राघवम्, च, उवाच ।

व्याख्या—रघुनन्दनः (राघवः) सः (लक्ष्मणः) भ्रातुः (रामस्य) चरणौ (पादौ) गाढम् (अधिकम्) निपीड्य (प्रणम्य) अतियशाम् (विपुलकीर्त्तिम्) सीताम् (जानकीम्) महाव्रतम् (वनवासलक्षणकृतमहाव्रतम्) राघवम् (रामचन्द्रम्) च (पुनः) उवाच (अवोचत्) ।

व्युत्पत्तिः—रघून् नन्दयतीति रघुनन्दनः (तत्पु०) । अति अधिकम् यशो यस्याः सा ताम् । अत्र यशस्शब्दस्य अदन्तत्वम् आर्षत्वात् । महत् व्रतं यस्य तम् (बहु०) ।

संस्कृतार्थः—लक्ष्मणः सादरं रामस्य चरणस्पर्शं कृत्वा सीताम् प्रार्थयन् च अब्रवीत् ।

वाच्यान्तरम्—तेन लक्ष्मणेन अतियशा सीता राघवः च ऊचाते ।

भावार्थः—श्रीलक्ष्मण जी सीताराम को सादर दण्डवत् कर विनय पूर्वक बोले ॥ २ ॥

यदि गन्तुं कृता बुद्धिर्वनं मृगगजायुतम् ।
अहं त्वानुगमिष्यामि वनमग्रे धनुर्द्धरः ॥ ३ ॥

पदच्छेदः—यदि, गन्तुम्, कृता, बुद्धिः, वनम्, मृगगजायुतम्, अहम्, त्वा, अनुगमिष्यामि, वनम्, अग्रे, धनुर्द्धरः ।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अन्वयः—यदि, मृगगजायुतम्, वनम्, गन्तुम्, बुद्धिः, कृता, तर्हि, अग्रे, धनुर्द्धरः, अहम्, त्वा, अनुगमिष्यामि।

व्याख्या—यदि (चेत्) मृगगजायुतम् (मृगनागसमाकुलम्) वनम् (काननम्) गन्तुम् (व्रजितुम्) बुद्धिः (मतिः) कृता (विहिता) युवाभ्यामिति शेषः। तर्हि अग्रे (वनगमनकाले) धनुर्द्धरः (धनुर्भृत्) अहम् (लक्ष्मणः) त्वा (त्वाम्) अनु (सह) गमिष्यामि (व्रजिष्यामि)।

व्युत्पत्तिः—मृगाश्च गजाश्च तैः आसमन्ताद् युतम् (द्वन्द्वगर्भः) धरतीति धरः धनुषः धरः धनुर्द्धरः (ष० त०)। अनुः सहार्थे।

संस्कृतार्थः—यदि मृगनागादिसङ्कीर्णम् वनम् यातु युवयोर्निश्चयः तदा धनुर्द्धरः अहमग्रे अग्रे गमिष्यामि।

वाच्यान्तरम्—धनुर्द्धरेण मया त्वम् अनुगमिष्यसे।

भावार्थः—हे पूज्यवरो ! यदि आप लोगों ने वन जाने का निश्चय कर लिया है तो मैं भी साथ चलूँगा, तथा यात्रापथ में धनुष धारण किए आगे आगे रहूँगा ॥ ३ ॥

मया समेतोऽरण्यानि रम्याणि विचरिष्यसि।
पक्षिभिर्भृङ्गयूथैश्च संघुष्टानि समन्ततः ॥ ४ ॥

पदच्छेदः—मया, समेतः, अरण्यानि, रम्याणि, विचरिष्यसि, पक्षिभिः, भृङ्गयूथैः, च, संघुष्टानि, समन्ततः।

अन्वयः—मया, समेतः, पक्षिभिः, भृङ्गयूथैः, च, समन्ततः, संघुष्टानि, रम्याणि, अरण्यानि, विचरिष्यसि।

व्याख्या—मया (लक्ष्मणेन) समेतः (सहितः) पक्षिभिः (पतङ्गैः) भृङ्गयूथैः (भृङ्गसमूहैः) च समन्ततः (विष्वक्) संघुष्टानि (शब्दितानि) रम्याणि (सुन्दराणि) अरण्यानि (वनानि) विचरिष्यसि (विहरिष्यसि)।

व्युत्पत्तिः—भृङ्गानां यूथानि तैः (ष० त०)। सम्यक् घुष्टानि संघुष्टानि (घुषिरविशब्दने) आर्षम्।

संस्कृतार्थः—हे पूज्यवर ! नानापक्षिभृङ्गादिशब्दितानि सुन्दराणि वनानि मया सेवितः सानन्दं विहरिष्यसि।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

वाच्यान्तरम्—मया समेतेन अरण्यानि विचरिष्यन्ते ।

भावार्थः—हे महाराज ! अनेक प्रकार के मृगों, पक्षियों तथा भौरों के शब्दों से गुञ्जार वनों में मुझ सेवक से सेवित हो विचरण करेंगे ॥ ४ ॥

न देवलोकाक्रमणं नामरत्वमहं वृणे ।
ऐश्वर्यं चापि लोकानां कामये न त्वया विना ॥ ५ ॥

पदच्छेदः—न, देवलोकाक्रमणम्, न, अमरत्वम्, अहम्, वृणे, ऐश्वर्यम्, च, अपि, लोकानाम्, कामये, न, त्वया, विना ।

अन्वयः—अहम्, त्वया, विना, देवलोकाक्रमणम्, न, अमरत्वम्, च, न, वृणे, लोकानाम्, च, अपि, न, कामये ।

व्याख्या—अहम् (लक्ष्मणः) त्वया (भगवता रामेण) विना (रहितः) देवलोकाक्रमणम् (देवलोकारोहणम्) न (नैव) अमरत्वम् (देवत्वम्) च (पुनः) न (नैव) वृणे (स्वीकरोमि) लोकानाम् (समस्तभुवनानाम्) ऐश्वर्यम् (आधिपत्यम्) च (पुनः) अपि (निश्चयेन) न (नैव) कामये (अभिलषामि) ।

व्युत्पत्तिः—देवानां लोकः तस्य आक्रमणम् (तत्पु०) । न म्रियन्ते इत्यमराः तेषां भावः अमरत्वम् । अमरा निर्जरा देवास्त्रिदशा विबुधाः सुराः इति अमरः । ईश्वरस्य भावः ऐश्वर्यम् ।

संस्कृतार्थः—हे भगवन् राम ! त्वां विहाय स्वर्गप्राप्तिम् सकलविश्वसाम्राज्यप्राप्तिं वा नाऽहमधिकर्तुमिच्छामि । किन्तु त्वया सहैव यत् किमपि स्यात् ।

वाच्यान्तरम्—मया अमरत्वम् न व्रियते, ऐश्वर्यं च न काम्यते ।

भावार्थः—हे रामचन्द्रजी महाराज ! मैं आपसे अलग स्वर्ग तथा विश्व-वैभव की भी इच्छा नहीं करता, जो कुछ चाहता हूँ आपके साथ ही ॥ ५ ॥

एवं ब्रुवाणः सौमित्रिर्वनवासाय निश्चितः ।
रामेण बहुभिः सान्त्वैर्निषिद्धः पुनरब्रवीत् ॥ ६ ॥

पदच्छेदः—एवम्, ब्रुवाणः, सौमित्रिः, वनवासाय, निश्चितः, रामेण, बहुभिः, सान्त्वैः, निषिद्धः, पुनः, अब्रवीत् ।

अन्वयः—वनवासाय, निश्चितः, एवम्, ब्रुवाणः, सौमित्रिः, रामेण, बहुभिः, सान्त्वैः, निषिद्धः, पुनः, अब्रवीत् ।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

व्याख्या—वनवासाय (काननिवासाय) निश्चितः (कृतनिश्चयः) एवम् (उक्तरीत्या) ब्रुवाणः (वदन्) सौमित्रिः (लक्ष्मणः) रामेण (रामचन्द्रेण) बहुभिः (अनेकैः) सान्त्वैः (सान्त्ववचनैः) निषिद्धः (निवारितः) पुनः (भूयः) अब्रवीत् (उवाच) ।

व्युत्पत्तिः—वने वासः तस्मै (तत्पु०) । सुमित्राया अपत्यं पुमान् सौमित्रिः ।

संस्कृतार्थः—पूर्वोक्तं बहु वदन् लक्ष्मणः भगवता रामेण बहु संबोधितोऽपि वनगमनात् निवारितोऽपि पुनः अबोचत् ।

वाच्यान्तरम्—निश्चितेन सौमित्रिणा…पुनः ऊचे ।

भावार्थः—इस तरह बन जाने के लिए उत्सुक रामचन्द्र जी से बहुत समझाये गए भी लक्ष्मणजी फिर बोले ॥ ६ ॥

अनुज्ञातस्तु भवता पूर्वमेव यदस्म्यहम् ।
किमिदानीं पुनरपि क्रियते मे निवारणम् ॥ ७ ॥

पदच्छेदः—अनुज्ञातः, तु, भवता, पूर्वम्, एव, यत्, अस्मि, अहम्, किम्, इदानीम्, पुनः, अपि, क्रियते, मे, निवारणम् ।

अन्वयः—यत्, अहम्, भवता, पूर्वम्, एव, अनुज्ञातः, अस्मि, पुनः, अपि, इदानीम्, किम्, मे, निवारणम्, क्रियते ।

व्याख्या—यत् (यतः) अहम् (लक्ष्मणः) भवता (रामेण) पूर्वम् एव (अवतरणसमये एव) अनुज्ञातः (वनाय आदिष्टः) अस्मि (वर्त्ते) पुनः (भूयः) अपि इदानीम् (आसन्ने गमने) किम् (कथम्) मे (मम) निवारणम् (निषेधः) क्रियते (विधीयते) ।

व्युत्पत्तिः—इदम् शब्दात् इदानीं च इति सिद्धिः ।

संस्कृतार्थः—हे भगवन् ! भवता पूर्वं वनगमनायानुमतोऽहमिदानीं कथं निषेधपात्रं भवामि इति न जाने ।

वाच्यान्तरम्—माम् भवान् पूर्वमेव अन्वज्ञासीत्……इदानीं निवारणं करोषि कथम् ? ।

भावार्थः—हे भगवन् राम ! आपने पहलेही मुझे वनगमनके लिए कहा था, अब इस चलने के समय क्यों मना कर रहे हैं ? समझ में नहीं आता ॥ ७ ॥

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

यदर्थं प्रतिषेधो मे क्रियते गन्तुमिच्छतः ।
एतदिच्छामि विज्ञातुं संशयो हि ममानघ ! ॥ ८ ॥

पदच्छेदः—यदर्थम्, प्रतिषेधः, मे, क्रियते, गन्तुम्, इच्छतः, एतत्, इच्छामि, विज्ञातुम्, संशयः, हि, मम, अनघ ।

अन्वयः—हे अनघ !, यदर्थम्, गन्तुम्, इच्छतः, मे, प्रतिषेधः, क्रियते, एतत्, विज्ञातुम्, इच्छामि, हि, मम, संशयः ।

व्याख्या—हे अनघ ! (हे निष्पाप !) यदर्थम् (यन्निमित्तम्) गन्तुम् (व्रजितुम्) इच्छतः (अभिलषतः) मे (मम) प्रतिषेधः (वनगमननिषेधः) क्रियते (विधीयते) एतत् (इदम्) विज्ञातुम् (ज्ञातुम्) इच्छामि (वाञ्छामि) हि (यतः) मम (लक्ष्मणस्य) संशयः (सन्देहः) अस्ति इति शेषः ।

व्युत्पत्तिः—नास्ति अघं यस्य सः तत्सम्बुद्धौ (बहु०) । इच्छति इति इच्छन् तस्य (इष् + शतृ + ङस्) ।

संस्कृतार्थः—हे रामचन्द्र महाराज ! भवता सार्द्धं गन्तुमिच्छतः मम कथं निषेधः क्रियते, अत्र सन्देह एव ।

वाच्यान्तरम्—गन्तुमिच्छतः मे प्रतिषेधं कुरुषे, एतद् विज्ञातुमिष्यते··· ।

भावार्थः—हे महाराज ! साथ चलने की इच्छा रखनेवाले मुझसे सेवक को क्यों मना कर रहे हैं ? यही सन्देह है ॥ ८ ॥

ततोऽब्रवीन्महातेजा रामो लक्ष्मणमग्रतः ।
स्मितं प्रागग्गामिनं धीरं याचमानं कृताञ्जलिम् ॥ ९ ॥

पदच्छेदः—ततः, अब्रवीत्, महातेजाः, रामः, लक्ष्मणम्, अग्रतः, स्मितम्, प्रागग्गामिनम्, धीरम्, याचमानम्, कृताञ्जलिम् ।

अन्वयः—ततः, महातेजाः, रामः, स्मितम्, प्रागग्गामिनम्, धीरम्, याचमानम्, कृताञ्जलिम्, लक्ष्मणम्, अग्रतः, अब्रवीत् ।

व्याख्या—ततः (तदन्तरम्) महातेजाः (अतितेजस्वी) रामः (रामचन्द्रः) स्मितम् (विस्मितम्) प्रागग्गामिनम् (वनं प्रति प्रथमतः गमनाभिप्रायम्) धीरम् (धैर्यशीलम्) याचमानम् (प्रार्थयमानम्) कृताञ्जलिम् (बद्धाञ्जलिम्) लक्ष्मणम् (सौमित्रिम्) अग्रतः (पुरतः) अब्रवीत् (उवाच) ।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

व्युत्पत्तिः—महत् तेजः यस्य सः (बहु०) । प्राग् गच्छतीति प्राग्गामी तम् (तत्पु०) । कृता अञ्जलिर्येन सः तम् (बहु०) । याचते इति याचमानः तम् ।

संस्कृतार्थः—ततः रामः नतमस्तकम् धीरम् पूर्वं कृतगमननिश्चयम् इदानीं निषेधेन विस्मितम् लक्ष्मणम् उवाच ।

वाच्यान्तरम्—महातेजसा रामेण लक्ष्मणः ऊचे ।

भावार्थः—भगवान् राम ने आगे हाथ जोड़कर खड़े हुए वन जाने के लिए पहले से ही उत्सुक, इस समय निषेध के कारण अचम्भे तथा दुःख में पड़े हुए लक्ष्मण जी से कहा ॥ ९ ॥

स्निग्धो धर्मरतो धीरः सततं सत्पथे स्थितः ।
प्रियः प्राणसमो वश्यो विधेयश्च सखा च मे ॥ १० ॥

पदच्छेदः—स्निग्धः, धर्मरतः, धीरः, सततम् , सत्पथे, स्थितः, प्रियः, प्राणसमः, वश्यः, विधेयः, च, सखा, च, मे ।

अन्वयः—स्निग्धः, धर्मरतः, धीरः, सततम् , सत्पथे, स्थितः, मे, प्राणसमः, प्रियः, वश्यः, विधेयः, च, सखा, च, त्वमिति शेषः ।

व्याख्या—स्निग्धः (स्नेहपात्रम्) धर्मरतः (धर्मे लग्नः) धीरः (गम्भीरः) सततम् (निरन्तरम्) सत्पथे (सुमार्गे) स्थितः (वर्तमानः) मे (रामस्य) प्राणसमः (प्राणतुल्यः) प्रियः (प्रेमपात्रम्) वश्यः (वशवर्ती) विधेयः (कृपा-पात्रम्) च पुनः, सखा (मित्रम्) च त्वम् असि ।

व्युत्पत्तिः—सन् पन्थाः सत्पथम् तस्मिन् (कर्म०) । प्राणेन समः (तृ०त०) ।

संस्कृतार्थः—हे लक्ष्मण ! धार्मिकः सुमार्गगामी धीरः वीरः त्वम् मे प्राण-समप्रियः, मित्रम् , कृपार्हः, वशंवदश्चासि, अत्र कः सन्देहः ? ।

वाच्यान्तरम्—स्निग्धेन धर्मरतेन···सख्या च भूयते ।

भावार्थः—हे प्रियभाई लक्ष्मण ! तुम मेरे प्रिय मित्र हितैषी, कृपापात्र तथा स्नेही हो, इसमें क्या सन्देह ? ॥ १० ॥

मयाऽद्य सह सौमित्रे ! त्वयि गच्छति तद् वनम् ।
को भजिष्यति कौसल्यां सुमित्रां वा यशस्विनीम् ? ॥११॥

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

पदच्छेदः—मया, अद्य, सह, सौमित्रे, त्वयि, गच्छति, तद्, वनम्, कः, भजिष्यति, कौसल्याम्, सुमित्राम्, वा, यशस्विनीम् ।

अन्वयः—हे सौमित्रे !, मया, सह, त्वयि, तद्, वनम्, गच्छति, कौसल्याम्, यशस्विनीम्, सुमित्राम्, वा, कः, भजिष्यति ।

व्याख्या—हे सौमित्रे ! (लक्ष्मण !) मया (रामेण) सह (सार्द्धम्) त्वयि (लक्ष्मणे) तत् (पूर्वोक्तम्) वनम् (दण्डकावनम्) गच्छति (व्रजति) कौसल्याम् (ज्येष्ठमातरम्) यशस्विनीम् (कीर्त्तिमतीम्) सुमित्राम् (तन्नामिकाम्) वा कः (पुत्रः) भजिष्यति (सेविष्यते) ।

व्युत्पत्तिः—यशः अस्ति अस्याः सा यशस्विनी ताम् ।

संस्कृतार्थः—हे लक्ष्मण ! यदा त्वम् अपि मया सार्द्धम् वनं गमिष्यसि तदा गृहे कौसल्याम् सुमित्रां च मातरम् कः सेविष्यते ।

वाच्यान्तरम्—त्वयि गच्छति केन सुमित्रा कौसल्या वा भजिष्यते ।

भावार्थः—हे लक्ष्मण ! मेरे साथ तुम भी वन चले चलोगे तो सुमित्रा तथा कौसल्या माता की सेवा कौन करेगा ? ॥ ११ ॥

अभिवर्षति कामैर्यः पर्जन्यः पृथिवीमिव ।
स कामपाशपर्यस्तो महातेजा महीपतिः ॥ १२ ॥

पदच्छेदः—अभिवर्षति, कामैः, यः, पर्जन्यः, पृथिवीम्, इव, सः, कामपाशपर्यस्तः, महातेजाः, महीपतिः ।

अन्वयः—यः, पर्जन्यः, इव, कामैः, पृथिवीम्, अभिवर्षति, महातेजाः, सः, महीपतिः, कामपाशपर्यस्तः ।

व्याख्या—यः (प्रसिद्धः) पर्जन्यः (मेघः) इव (यथा) कामैः (इष्टान्नपातैः) पृथिवीम् (भूतलम्) अभिवर्षति (रक्षति) महातेजाः (अधिकतेजस्वी) सः (महाराजः) महीपतिः (दशरथः) कामपाशपयस्तः (कैकेयीसमनुरागबद्धः) नान्यां भर्तुं समयं लप्स्यते इति शेषः ।

व्युत्पत्तिः—महत् तेजः यस्य सः (बहु०) । मह्याः पतिः (ष० त०) । कामस्य पाशः तेन पर्यस्तः (तत्पु०) ।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

संस्कृतार्थः—यः महाराजः दशरथः मेघवत् पृथ्वीं बिभर्त्ति सः कैकेयीप्रेम-पाशविवशः न कौशल्यां सुमित्रां वा सम्मानयेत् ।

वाच्यान्तरम्—महातेजसा महीपतिना कामपाशपर्यस्तेन स्थीयते··· ।

भावार्थः—संसार का बादल की तरह निष्पक्ष भरण करने वाले महाराज दशरथ जी तो कैकेयी के प्रेम के फन्दे में फँसे हैं । वे अन्य मेरी माताओं का आदर न कर सकेंगे ॥ १२ ॥

सा हि राज्यमिदं प्राप्य नृपस्याऽश्वपतेः सुता ।
दुःखितानां सपत्नीनां न करिष्यति शोभनम् ॥ १३ ॥

पदच्छेदः—सा, हि, राज्यम् , इदम् , प्राप्य, नृपस्य, अश्वपतेः, सुता, दुःखितानाम् , सपत्नीनाम् , न, करिष्यति, शोभनम् ।

अन्वयः—हि, अश्वपतेः, नृपस्य, सुता, सा, इदम् , राज्यम् , प्राप्य, दुःखितानाम् , सपत्नीनाम् , शोभनम् , न करिष्यति ।

व्याख्या—हि (यतः) अश्वपतेः (तदाख्यस्य) नृपस्य (राज्ञः) सुता (पुत्री) सा (कैकेयी) इदम् (एतत्) राज्यम् (आधिपत्यम्) प्राप्य (लब्ध्वा) दुःखितानाम् (शोचन्तीनाम्) सपत्नीनाम् (कौशल्यादीनाम्) शोभनम् (हितम्) न (नैव) करिष्यति (विधास्यति) ।

व्युत्पत्तिः—समानः पतिः यासां ताः सपत्न्यः तासाम् (बहु०) । नॄन् पाति इति नृपः ।

संस्कृतार्थः—कैकेयी एतद्राज्याधिकारं हस्तेकृत्य सपत्नीनां सुमित्रादीनाम् हितम् न चरिष्यति ।

वाच्यान्तरम्—अश्वपतेः सुतया सपत्नीनां हितं न करिष्यते ।

भावार्थः—कैकेयी इतने बड़े राज्य पर अधिकार करने के बाद अपनी सवतों पर ध्यान न देगी । बल्कि उनका अहित करना चाहेगी ॥ १३ ॥

न स्मरिष्यति कौसल्यां सुमित्रां च सुदुःखिताम् ।
भरतो राज्यमासाद्य कैकेय्यां पर्यवस्थितः ॥ १४ ॥

पदच्छेदः—न, स्मरिष्यति, कौसल्याम् , सुमित्राम् , च, सुदुःखिताम् ; भरतः, राज्यम् , आसाद्य, कैकेय्याम् , पर्यवस्थितः ।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अन्वयः—भरतः, राज्यम् , आसाद्य, कैकेय्याम् , पर्यवस्थितः, सुदुःखिताम् , कौशल्याम् , सुमित्राम् , च, न, स्मरिष्यति ।

व्याख्या—भरतः (तन्नामा) राज्यम् (राज्याधिकारम्) आसाद्य (अधिकृत्य) कैकेय्याम् (स्वमातरि) पर्यवस्थितः (प्रतिष्ठितः) सुदुःखिताम् (अतिदुःखिनीम् , कौशल्याम् (ज्येष्ठमातरम्) सुमित्राम् (कनिष्ठमातरम्) च (पुनः) न (नैव) स्मरिष्यति (चिन्तयिष्यति) ।

व्युत्पत्तिः—सुष्ठु दुःखिता सुदुःखिता ताम् ।

संस्कृतार्थः—भरतः अपि राज्यम् आसाद्य कैकेयीमेव सेविष्यते, न कौशल्यासुमित्रे इति निश्चयः ।

वाच्यान्तरम्—भरतेन राज्यम् प्राप्य कौसल्यासुमित्रे न स्मरिष्येते··· ।

भावार्थः—भरत भी राज्य पाकर कैकेयी की ही बात मानेगा, सुमित्रा तथा कौसल्या की बात न सुनेगा ॥ १४ ॥

तामार्यां स्वयमेवेह राजानुग्रहणेन वा ।
सौमित्रे ! भर कौसल्यामुक्तमर्थममुं चर ॥ १५ ॥

पदच्छेदः—ताम् , आर्याम् , स्वयम् , एव, इह, राजानुग्रहणेन, वा, सौमित्रे, भर, कौशल्याम् , उक्तम् , अर्थम् , अमुम् , चर ।

अन्वयः—हे सौमित्रे !, इह, आर्याम् , ताम् , कौसल्याम् , राजानुग्रहणेन, वा, भर, अमुम् , उक्तम् , अर्थम् , चर ।

व्याख्या—हे सौमित्रे ! (हे लक्ष्मण !) इह (अयोध्यायाम्) आर्याम् (श्रेष्ठाम्) ताम् (मातरम्) कौसल्याम् (तन्नाम्नीम्) राजानुग्रहणेन (दशरथानुग्रहसम्पादनेन) वा भर (पालय) अमुम् (एनम्) उक्तम् (अभिहितम्) अर्थम् (प्रयोजनम्) चर (कुरु) ।

व्युत्पत्तिः—राज्ञः अनुग्रहणं तेन (तृ० त०) ।

संस्कृतार्थः—हे लक्ष्मण ! इहस्थः त्वम् स्वतः राज्ञोऽनुग्रहं सम्पाद्य वा कौशल्याम् रक्ष ।

वाच्यान्तरम्—हे सौमित्रे ! त्वया कौसल्या भ्रियताम्······ ।

भावार्थः—हे लक्ष्मण ! तुम स्वयम् अथवा राजा दशरथ के अनुग्रह द्वारा माता कौशल्या की रक्षा करना ॥ १५ ॥

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

एवं मयि च ते भक्तिर्भविष्यति सुदर्शिता ।
धर्मज्ञगुरुपूजायां धर्मश्चाप्यतुलो महान् ॥ १६ ॥

पदच्छेदः—एवम्, मयि, च, ते, भक्तिः, भविष्यति, सुदर्शिता, धर्मज्ञगुरुपूजायाम्, धर्मः, च, अपि, अतुलः, महान् ।

अन्वयः—एवम्, च, मयि, ते, भक्तिः, सुदर्शिता, धर्मज्ञगुरुपूजायाम्, अतुलः, महान्, धर्मः, च, भविष्यति ।

व्याख्या—एवम् (मदुक्त्यनुसारम्) च (पुनः) मयि (रामे) ते (तव) भक्तिः (अनुरागः) सुदर्शिता (प्रदर्शिता) धर्मज्ञगुरुपूजायाम् (दशरथकौशल्यादिसेवायाम्) अतुलः (अनुपमः) महान् (सुदीर्घः) धर्मः च (पुनः) भविष्यति (सम्पत्स्यते) ।

व्युत्पत्तिः—सुष्ठु दर्शिता सुदर्शिता (कर्म०) । धर्मं जानातीति धर्मज्ञः स च गुरुश्चेति धर्मज्ञगुर्वोः पूजा तस्याम् (द्वन्द्वगर्भः तत्पु०) । न तुला यस्य सः (बहु०) ।

संस्कृतार्थः—हे लक्ष्मण ! तथा सति मयि तव भक्तिः तथा पितृमातृसेवायाम् अनुपमधर्मलाभः च सम्पत्स्यते ।

वाच्यान्तरम्—अतुलेन महता धर्मेण सम्पत्स्यते ।

भावार्थः—हे लक्ष्मण ! ऐसा करने से मुझपर तुम्हारी भक्ति भी लोगों के सामने आ जायगी साथही माता पिता की सेवा से बहुत बड़ा धर्म भी होगा ॥१६॥

एवं कुरुष्व सौमित्रे ! मत्कृते रघुनन्दन ! ।
अस्माभिर्विप्रहीणाया मातुर्नो न भवेत्सुखम् ॥ १७ ॥

पदच्छेदः—एवम्, कुरुष्व, सौमित्रे, मत्कृते, रघुनन्दन, अस्माभिः, विप्रहीणायाः, मातुः, नः, न, भवेत्, सुखम् ।

अन्वयः—हे सौमित्रे !, हे रघुनन्दन !, मत्कृते, एवम्, कुरुष्व, अस्माभिः, विप्रहीणायाः, नः, मातुः, सुखम्, न, भवेत् ।

व्याख्या—हे सौमित्रे ! (हे लक्ष्मण !) हे रघुनन्दन ! (हे राघव !) मत्कृते (मदर्थम्) एवम् (मदुक्तम्) कुरुष्व (अनुसर) अस्माभिः (रामादिभिः) विप्रहीणायाः (वियुक्तायाः) नः (अस्माकम्) मातुः (जनन्याः) सुखम् (आनन्दः) न (नैव) भवेत् (स्यात्) ।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

व्युत्पत्तिः—रघून् नन्दयते इति रघुनन्दनः तत्सम्बुद्धौ (ष० त०) विप्रकर्षेण हीना विप्रहीणा तस्याः विप्रहीणायाः ।

संस्कृतार्थः—हे लक्ष्मण ! मदुक्तानुसारमेव कुरु । अन्यथा अस्माभिः वियुक्तायाः कौशल्यादेः सुखं नैव भवेत् ।

वाच्यान्तरम्—त्वया मत्कृते एवं क्रियताम्······मातुः सुखेन न भूयते ।

भावार्थः—हे लक्ष्मण ! तुम मेरे कथनानुसार चलो । क्योंकि हम लोगों से वियुक्त मातायें सुख न पायेंगी ॥१७॥

एवमुक्तस्तु रामेण लक्ष्मणः श्लक्ष्णया गिरा ।
प्रत्युवाच तदा रामं वाक्यज्ञो वाक्यकोविदम् ॥१८॥

पदच्छेदः—एवम्, उक्तः, तु, रामेण, लक्ष्मणः, श्लक्ष्णया, गिरा, प्रत्युवाच, तदा, रामम्, वाक्यज्ञः, वाक्यकोविदम् ।

अन्वयः—रामेण, एवम्, उक्तः, वाक्यज्ञः, लक्ष्मणः, तु, वाक्यकोविदम्, रामम्, श्लक्ष्णया, गिरा, प्रत्युवाच ।

व्याख्या—रामेण (रामचन्द्रेण) एवम् (उक्तरीत्या) उक्तः (अभिहितः) वाक्यज्ञः (वचनवित्) लक्ष्मणः (सौमित्रिः) तु वाक्यकोविदम् (वाक्यविदम्) रामम् (रामचन्द्रम्) श्लक्ष्णया (विनीतया) गिरा (वाण्या) प्रत्युवाच (प्रत्यब्रवीत्) च ।

व्युत्पत्तिः—वाक्यं जानातीति वाक्यज्ञः । वाक्येषु कोविदः तम् (तत्पु०) ।

संस्कृतार्थः—एवम् रामेण उक्तः लक्ष्मणः विनीतभावेन राममुवाच ।

वाच्यान्तरम्—एवमुक्तेन वाक्यज्ञेन लक्ष्मणेन रामः ऊचे ।

भावार्थः—इस तरह राम से कहे गये लक्ष्मण जी चतुरता से विनययुक्त हो रामजी से बोले ॥१८॥

तदैव तेजसा वीर ! भरतः पूजयिष्यति ।
कौसल्यां च सुमित्रां च प्रयतो नास्ति संशयः ॥१९॥

पदच्छेदः—तदा, एव, तेजसा, वीर !, भरतः, पूजयिष्यति, कौसल्याम्, च, सुमित्राम्, च, प्रयतः, न, अस्ति, संशयः ।

अन्वयः—हे वीर !, भरतः, तदा, एव, तेजसा, प्रयतः, कौसल्याम्, च, सुमित्राम्, च, पूजयिष्यति, संशयः, न, अस्ति ।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

व्याख्या—हे वीर ! (हे शूर !) भरतः तदा एव (तदानीम्) तेजसा (प्रतापेन) प्रयतः (उद्यतः) कौसल्याम् (तन्नाम्नीम्) च (पुनः) सुमित्राम् (तन्नाम्नीम् च) पूजयिष्यति (अर्चयिष्यति) अत्र संशयः (सन्देहः) न (नैव) अस्ति (वर्तते)

व्युत्पत्तिः—प्रयम् + क्तः प्रयतः ।

संस्कृतार्थः—हे वीर ! आवयोः वनगमने जाते भरतः भवदीयप्रतापं स्मरन् प्रयत्नेन सुमित्राम् कौसल्याम् च अविष्यति, नाऽत्र संशयः कार्यः ।

वाच्यान्तरम्—भरतेन प्रयतेन सुमित्रा कौसल्या च अर्चिष्येते…।

भावार्थः—हे महाराज ! हम लोगों के वन जाने पर भरतजी प्रयत्न पूर्वक माताओं की रक्षा करेंगे इसमें सन्देह नहीं। क्योंकि आपके प्रताप को कैसे भूलेंगे ॥ १९ ॥

यदि दुःस्थो न रक्षेत भरतो राज्यमुत्तमम् ।
प्राप्य दुर्मनसा वीर ! गर्वेण च विशेषतः ॥२०॥

पदच्छेदः—यदि, दुःस्थः, न, रक्षेत, भरतः, राज्यम्, उत्तमम्, प्राप्य, दुर्मनसा, वीर !, गर्वेण, च, विशेषतः ।

अन्वयः—हे वीर !, यदि, भरतः, उत्तमम्, राज्यम्, प्राप्य, दुःस्थः, दुर्मनसा, विशेषतः, गर्वेण, च, न, रक्षेत (तदा तमहम् वधिष्यामि इत्युत्तरेणाऽन्वयः) ।

व्याख्या—हे वीर ! (हे शूर !) यदि (चेत्) भरतः (तन्नामा) उत्तमम् (श्रेष्ठम्) राज्यम् (आधिपत्यम्) प्राप्य (अधिगत्य) दुःस्थः (दुर्मार्गस्थः) दुर्मनसा (कैकेय्यनुरोधात् दुष्टमानसेन) विशेषतः (विशेषतया) गर्वेण (अभिमानेन) च (पुनः) न (नैव) रक्षेत (अविष्यति) तदा तमहम् वधिष्यामि इत्युत्तरेणान्वयः ।

व्युत्पत्तिः—दुष्टं मनः दुर्मनः तेन (गतिस.) । विशेषेण इति विशेषतः तृतीयान्तात् तसिल् ।

संस्कृतार्थः – हे राम ! सः भरतः यदि राज्यमदोन्मत्तः कैकेयीवचनानुसारं कौशल्यां सुमित्रां च न रक्षेत तदाऽहम् तम् वधिष्यामि ।

वाच्यान्तरम्—दुःस्थेन भरतेन न रक्ष्येताम् चेत् मया स हनिष्यते ।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

भावार्थः—हे राम ! राज्यमद में चूर तथा कैकेयी की बातों में पड़कर भरत अगर माताओं का पालन नहीं करेगा तो हम उसको मारेंगे ॥२०॥

तमहं दुर्मतिं क्रूरं वधिष्यामि न संशयः ।
तत्पक्षानपि तान् सर्वांस्त्रैलोक्यमपि किन्तु सा ॥ २१ ॥

पदच्छेदः—तम् , अहम् , दुर्मतिम् , क्रूरम् , वधिष्यामि, न, संशयः, तत्पक्षान् , अपि, तान् , सर्वान् , त्रैलोक्यम् , अपि, किन्तु, सा ।

अन्वयः—अहम् , दुर्मतिम्, क्रूरम्, तम्, तत्पक्षान् , तान् , सर्वान् , अपि, त्रैलोक्यम् , अपि, वधिष्यामि, संशयः, न, किन्तु, सा, कौशल्या, बिभृयात् इति परेण अन्वयः ।

व्याख्या—अहम् (लक्ष्मणः) दुर्मतिम् (दुर्बुद्धिम्) क्रूरम् (नृशंसम्) तम् (भरतम्) तत्पक्षान् (तत्पक्षपातिनः) तान् सर्वान् (निखिलान्) अपि, त्रैलोक्यम् (त्रिलोकीम् तदनुगामिनीम्) अपि वा वधिष्यामि (हनिष्यामि) अत्र संशयः (सन्देहः) न (नैव); किन्तु (परन्तु) सा (प्रसिद्धा) कौशल्या बिभृयात् इति परेण ।

व्युत्पत्तिः—दुष्टा मतिर्यस्य सः तम् (ग० स० व०) सः पक्षः येषां ते तत्पक्षाः तान् (बहु०) । त्रयाणां लोकानां समाहारः त्रिलोकी, एव इति त्रैलोक्यम् ।

संस्कृतार्थः—अहम् क्रूरम् दुर्मतिं भरतं, तत्पक्षपातिनः अन्यान् सर्वान् किमुत त्रैलोक्यमपि यदि तत्पक्षपाति भवेत् तदा हनिष्यामि, अत्र संशयः न कार्यः ।

वाच्यान्तरम्—दुर्मतिः क्रूरः भरतः तत्पक्षाः सर्वे त्रैलोक्यमपि मया हनिष्यन्ते ।

भावार्थः—मैं उस दुष्ट भरत, उसके पक्षपाती अन्य लोग, क्या तीनों लोक भी यदि उसका पक्षपाती हों तो उसे मारूँगा इसमें सन्देह नहीं ॥ २१ ॥

कौसल्या बिभृयादार्या सहस्रं मद्विधानपि ।
यस्याः सहस्रं ग्रामाणां सम्प्राप्तमुपजीविनाम् ॥ २२ ॥

पदच्छेदः—कौसल्या, बिभृयात्, आर्या, सहस्रम् , मद्विधान् , अपि, यस्याः, सहस्रम्, ग्रामाणाम् , सम्प्राप्तम्, उपजीविनाम् ।

अन्वयः—आर्या, कौसल्या, यस्याः, उपजीविनाम् , ग्रामाणाम् , सहस्रम् , सम्प्राप्तम् , वर्तते इति शेषः । मद्विधान् , सहस्रम् , अपि, बिभृयात् ।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

व्याख्या—आर्या (श्रेष्ठा) कौशल्या (माता) यस्याः (कौशल्यायाः) उपजीविनाम् (सेवकानाम्) अत्र षष्ठी तृतीयार्थे उपजीविभिः इत्यर्थः। ग्रामाणाम् सहस्रम् (सहस्रसंख्याः ग्रामाः) सम्प्राप्तम् (अधिगतम्) वर्तते सा मद्विधान् (मदृशान्) सहस्रम् (सहस्रसंख्यान्) अपि बिभृयात् (पालयितुं शक्नुयात्) इति कथमहं तदीयरक्षां कर्तुम् योग्यः। तदर्थं मदपेक्षा नास्ति इति भावः।

व्युत्पत्तिः—उपजीवन्ति इति उपजीविनः तेषाम्। अहमिवेति मद्विधा तान्।

संस्कृतार्थः—हे राम ! कौशल्यारक्षायाः कः प्रश्नः ? यस्या उपजीविभिः ग्रामसहस्री प्राप्ता वर्तते, सा तु मादृशान् अपि सहस्रं पालयेत।

वाच्यान्तरम्—आर्यया कौसल्यया मद्विधाः सहस्रम् भ्रियेरन्।

भावार्थः—हे राम ? जिस माता कौशल्या के आश्रितों को हजारों गाँव मिल चुके हैं ऐसी वह माता हम जैसे हजारों को पाल सकती है, हम उसकी क्या रक्षा करेंगे ? ॥२२॥

तदात्मभरणे चैव मम मातुस्तथैव च।
पर्याप्ता मद्विधानां च भरणाय मनस्विनी ॥२३॥

पदच्छेदः—तत्, आत्मभरणे, च, एव, मम, मातुः, तथा, एव, च, पर्याप्ता, मद्विधानाम्, च, भरणाय, मनस्विनी।

अन्वयः—तत्, मनस्विनी, आत्मभरणे, च, एव, तथा, एव, च, मम, मातुः, मद्विधानाम्, च, भरणाय, पर्याप्ता।

व्याख्या—तत् (ततः) मनस्विनी (मानिनी) सा कौशल्या आत्मभरणे (स्वपालने) च (पुनः) एव तथा एव च (अपि च) मम (लक्ष्मणस्य) मातुः (जनन्याः सुमित्रायाः) च मद्विधानाम् (मादृशानाम्) च भरणाय (पालनाय) पर्याप्ता (समर्था) अस्ति इति शेषः।

व्युत्पत्तिः—आत्मनः भरणम् तस्मिन् (तत्पु०)। अहमिवेति मद्विधाः तेषाम्।

संस्कृतार्थः—सा माता कौशल्या स्वभरणे सुमित्राभरणे मादृशानां च सर्वेषां भरणे सर्वथा समर्थास्ति, इति न चिन्तनीया।

वाच्यान्तरम्—मनस्विन्या पर्याप्तया भूयते…।

भावार्थः—हे राम ! वह माता श्रीकौशल्या अपने तथा सुमित्रा के पोषण में

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

तो समर्थ हैं ही, हम जैसों का भी स्वयम् पालन कर सकती हैं। अत उनकी चिन्ता करना व्यर्थ है ॥२३॥

कुरुष्व मामनुचरं वैधर्म्यं नेह विद्यते।
कृतार्थोऽहं भविष्यामि तव चाऽर्थः प्रकल्प्यते ॥२४॥

पदच्छेदः—कुरुष्व, माम्, अनुचरम्, वैधर्म्यम्, न, इह, विद्यते, कृतार्थः, अहम्, भविष्यामि, तव, च, अर्थः, प्रकल्प्यते।

अन्वयः—माम्, अनुचरम्, कुरुष्व, इह, वैधर्म्यम्, न, विद्यते, अहम्, कृतार्थः, भविष्यामि, तव, च, अर्थः, प्रकल्प्यते।

व्याख्या—माम् (लक्ष्मणम्) अनुचरम् (सेवकम्) कुरुष्व (स्वीकुरु) इह (मत्सेवानुमतौ) वैधर्म्यम् (वैपरीत्यसाधकम्) न (नैव) विद्यते (वर्तते) तथा सति अहम् (लक्ष्मणः) कृतार्थः (कृतकृत्यः) भविष्यामि (सम्पत्स्ये) तव (रामस्य) च (पुनः) अर्थः (फलमूलाद्यानयनरूपः) प्रकल्प्यते (अनायासेन सम्पद्यते) इति मदनुगमने उभयोरर्थसिद्धिः।

व्युत्पत्तिः—अनुचरतीति अनुचरः तम्। विरुद्धो धर्मः विधर्मः तस्य भावः वैधर्म्यम्। कृतः अर्थः यस्य सः (बहु०)।

संस्कृतार्थः—हे राम! माम् सेवकत्वेन सह गमय। तथा सति अहं कृतार्थः भविष्यामि। भवतः च फलमूलाद्यानयनं सम्पादयिष्ये इत्युभयोरर्थः सिद्धः।

वाच्यान्तरम्—अहम् अनुचरः क्रियताम्, मया कृतार्थेन सम्पत्स्यते…।

भावार्थः—हे राम! मुझे आप साथ ले चलें, क्योंकि इस तरह मैं भी कृतकृत्य होता हूँ, साथ ही फलमूलादि ले आकर उपस्थित करूँगा। इससे आपका भी कार्य होगा॥ २४॥

धनुरादाय सगुणं खनित्रपिटकाधरः।
अग्रतस्ते गमिष्यामि पन्थानं तव दर्शयन्॥ २५॥

पदच्छेदः—धनुः, आदाय, सगुणम्, खनित्रपिटकाधरः, अग्रतः, ते, गमिष्यामि, पन्थानम्, तव, दर्शयन्।

अन्वयः—खनित्रपिटकाधरः, सगुणम् धनुः, आदाय, तव, पन्थानम्, दर्शयन्, ते, अग्रतः, गमिष्यामि।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

व्याख्या—खनित्रपिटकाधरः (खनित्रसामग्र्याधारपेटिकाधरः) सगुणम् (ससूत्रम्) धनुः (चापम्) आदाय (गृहीत्वा) तव (रामस्य) पन्थानम् (मार्गम्) दर्शयन् (अवलोकयन्) ते (तव) अग्रतः (पुरतः) गमिष्यामि (वने व्रजिष्यामि)।

व्युत्पत्तिः—खनित्रं च पिटका च ते धरतीति खनित्रपिटकाधरः (द्वन्द्वग० तत्पु०)। गुणेन सहितम् सगुणम् (अव्ययी०)।

संस्कृतार्थः—हे राम! खनित्रं सामग्रीधारकपेटिकां च धृत्वा, सज्यं धनुः हस्तेकृत्य तव अग्रतः मार्गम् प्रदर्शयन् सह गमिष्यामि।

वाच्यान्तरम्—खनित्रपिटकाधरेण तव पन्थानम् दर्शयता··· ।

भावार्थः—हे भगवन्! मैं खननेवाला हथियार, समग्री रखने की पेटी, तथा धनुष खींचे हुए आपके आगे आगे रास्ता दिखलाते चलूँगा॥ २५॥

आहरिष्यामि ते नित्यं मूलानि च फलानि च।
वन्यानि च तथाऽन्यानि स्वाहार्हाणि तपस्विनाम्॥ २६॥

पदच्छेदः—आहरिष्यामि, ते, नित्यम्, मूलानि, च, फलानि, च, वन्यानि, च, तथा, अन्यानि, स्वाहार्हाणि, तपस्विनाम्।

अन्वयः—नित्यम्, वन्यानि, मूलानि, च, फलानि, च, तथा, अन्यानि, तपस्विनाम्, स्वाहार्हाणि, च, ते, आहरिष्यामि।

व्याख्या—नित्यम् (सर्वदा) वन्यानि (काननभवानि) मूलानि (मूलकादीनि) फलानि च (पुनः) तथा (तेनैव प्रकारेण) अन्यानि (इतराणि) तपस्विनाम् (तपः कुर्वताम्) स्वाहार्हाणि (होमयोग्यानि) च (पुनः) वस्तूनि इति शेषः। ते (तुभ्यम्) आहरिष्यामि (आनेष्यामि)।

व्युत्पत्तिः—स्वाहा अर्हन्ति इति स्वाहार्हाणि।

संस्कृतार्थः—हे भगवन्! सर्वदा अहम् फलमूलादिकम् अन्यानि वनवासोपयुक्तानि हविष्यादिवस्तूनि च आनेष्यामि।

वाच्यान्तरम्—वन्यानि फलानि मूलानि च स्वाहार्हाणि मया आहरिष्यन्ते।

भावार्थः—हे भगवन्! मैं हमेशा जङ्गल में होनेवाले कन्दमूल फल आदि तथा हवन के योग्य समिधू इत्यादि ले आया करूँगा॥२६॥

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

भवाँस्तु सह वैदेह्या गिरिसानुषु रंस्यते ।
अहं सर्वं करिष्यामि जाग्रतः स्वपतश्च ते ॥ २७ ॥

पदच्छेदः—भवान् , तु, सह, वैदेह्या, गिरिसानुषु, रंस्यते, अहम् , सर्वम् , जाग्रतः, स्वपतः, च, ते ।

अन्वयः—भवान् , तु, वैदेह्या सह, गिरिसानुषु, रंस्यते, अहम्, जाग्रतः, स्वपतः, च, ते, सर्वम् , करिष्यामि ।

व्याख्या—भवान् (रामः) तु वैदेह्या (जानक्या) सह (सार्द्धम्) गिरिसानुषु (गिरिकन्दरेषु) रंस्यते (रमण करिष्यति) अहम् (लक्ष्मणः) जाग्रतः (अनिद्राणस्य) स्वपतः (शयनं कुर्वतः) च (पुनः) ते (तव) सर्वम् (आवश्यकम्) करिष्यामि (विधास्यामि) ।

व्युत्पत्तिः—गिरीणां सानवः तेषु (ष० त०) । जागर्ति इति जाग्रत् तस्य जागृ + शतृ + ङस् । स्वपिति इति स्वपन् तस्य ञिष्वप् शये, स्वप् + शतृ + ङस् ।

संस्कृतार्थः—भवान् रामः पर्वतगुहासु जानक्या माता सह रमणं करिष्यति अहम् च सर्वासु अवस्थासु भवतः आवश्यकम् सम्पादयिष्यामि ।

वाच्यान्तरम्—भवता गिरिसानुषु रंस्यते मया च सर्वम् करिष्यते ।

भावार्थः—हे महाराज ! आप तो माता सीताके साथ पर्वतीयकन्दराओं में रमण करना, मैं सोते जागते हर समय आपके आवश्यक कार्यों को करता रहूँगा ॥२७॥

रामस्त्वनेन वाक्येन सुप्रीतः प्रत्युवाच तम् ।
व्रजापृच्छस्व सौमित्रे ! सर्वमेव सुहृज्जनम् ॥ २८ ॥

पदच्छेदः—रामः, तु, अनेन, वाक्येन, सुप्रीतः, प्रत्युवाच, तम् , व्रज, आपृच्छस्व, सौमित्रे, सर्वम् , एव, सुहृज्जनम् ।

अन्वयः—अनेन, वाक्येन, सुप्रीतः, रामः, तम् , प्रत्युवाच, हे सौमित्रे !, सर्वम् , एव, सुहृज्जनम् , आपृच्छस्व, व्रज, च ।

व्याख्या—अनेन (एतेन) वाक्येन (वचनेन) सुप्रीतः (सुप्रसन्नः) रामः (रामचन्द्रः) तम् (लक्ष्मणम्) प्रत्युवाच (प्रत्यवोचत्) हे सौमित्रे ! (हे लक्ष्मण !) सर्वम् (निखिलम्) एव सुहृज्जनम् (मित्रसमाजम्) आपृच्छस्व (तेषामाज्ञां गृहाण) व्रज (अनुव्रज) च ।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

व्युत्पत्तिः—सुहृदः जनाः इति समाहारः । अथवा जनः समाजः, सुहृदां जनः तम् (ष०त०)। सुष्ठु प्रीतः सुप्रीतः (कर्म०) आङ्पूर्वात् पृच्छेरात्मनेपदम् ।

संस्कृतार्थः—एवं लक्ष्मणस्य वचांसि आकर्ण्य प्रसन्नः रामः उवाच । हे लक्ष्मण ! अनुव्रज मित्रमण्डलस्यादेशं गृहाण ।

वाच्यान्तरम्—सुप्रीतेन रामेण……प्रत्यूचे । सौमित्रे त्वया……आपृच्छ्यताम् ।

भावार्थः—लक्ष्मण जी की इस तरह की बातें सुनकर रामचन्द्र जी ने कहा कि हे लक्ष्मण ! अच्छा तुम चलो । जाओ मित्रमण्डल से भी आज्ञा लेलो ॥२८॥

ये च राज्ञो ददौ दिव्ये महात्मा वरुणः स्वयम् ।
जनकस्य महायज्ञे धनुषी रौद्रदर्शने ॥२९॥

पदच्छेदः—ये, च, राज्ञः, ददौ, दिव्ये, महात्मा, वरुणः, स्वयम्, जनकस्य, महायज्ञे, धनुषी, रौद्रदर्शने ।

अन्वयः—राज्ञः, जनकस्य, महायज्ञे, महात्मा, वरुणः, स्वयम्, ये, दिव्ये, रौद्रदर्शने, धनुषी, ददौ । आदाय आगच्छ इति तृतीयेन अन्वयः ।

व्याख्या—राज्ञः (नृपस्य) जनकस्य (विदेहस्य) महायज्ञे (महामखे) महात्मा (महापुरुषः) वरुणः (अपाम्पतिः) स्वयम् (आत्मना) ये (अपूर्वे) दिव्ये (पुण्ये) रौद्रदर्शने (भयङ्करावलोकने) धनुषी (चापे) ददौ (अदात्) ते आदाय आगच्छ इति !

व्युत्पत्तिः—महान् यज्ञः महायज्ञः तस्मिन् । महानात्मा यस्य सः, रौद्रम् दर्शनं यतो ते (सर्वत्र बहुव्रीहिः) ।

संस्कृतार्थः—महाराजजनकस्य यज्ञे आवयोः उपरि तुष्टः वरुणः विलक्षणे ये धनुषी आवाभ्यां दत्ते ते गुरोः सकाशे स्थापिते वर्तेते, शीघ्रम् ते आदायागच्छ इति ।

वाच्यान्तरम्—वरुणेन दत्ते ते आदाय आगम्यताम्…।

भावार्थः—हे लक्ष्मण ! महाराज जनकजी के यज्ञ में वरुणजी ने प्रसन्न होकर हम लोगों को दिव्य अस्त्र प्रदान किए थे, उन्हें गुरुजी के यहाँ से लेकर शीघ्र आओ ॥२९॥

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अभेद्ये कवचे दिव्ये तूणी चाऽक्षय्यसायकौ।
आदित्यविमलाभौ द्वौ खड्गौ हेमपरिष्कृतौ ॥३०॥

पदच्छेद:—अभेद्ये, कवचे, दिव्ये, तूणी, च, अक्षय्यसायकौ, आदित्यविमलाभौ, द्वौ, खड्गौ, हेमपरिष्कृतौ ।

अन्वय:—अभेद्ये, दिव्ये, कवचे, अक्षय्यसायकौ, तूणी, च, आदित्यविमलाभौ, हेमपरिष्कृतौ, द्वौ, खड्गौ, सर्वमेतन्निहितमिति परेणान्वयः।

व्याख्या—अभेद्ये (न भेदनयोग्ये) दिव्ये (विलक्षणे) कवचे (वर्मणी) अक्षय्यसायकौ (अनाश्यवाणौ) तूणी (तूणीरौ) आदित्यविमलाभौ (सूर्यनिर्मलकान्ती) हेमपरिष्कृतौ (सुवर्णभूषितौ) द्वौ (द्विसंख्यौ) खड्गौ (अस्त्रविशेषौ) सर्वमेतन्निहितमिति ।

व्युत्पत्ति:—भेत्तुं योग्ये भेद्ये, न भेद्ये अभेद्ये ते (नञ्समा०) अक्षय्याः सायकाः ययोः तौ (बहु०)। आदित्य इव विमला आभा ययोः तौ (बहु०) हेम्ना परिष्कृतौ (तृ० त०)।

संस्कृतार्थ:—अविनाश्यकवचे, अविनाश्यवाणयुक्तौ तूणीरौ, सौवर्णसंस्कृतौ मार्तण्डशोभौ खड्गौ इति आचार्यसद्मनि निहितमिति ।

वाच्यान्तरम्—अभेद्याभ्याम्, कवचाभ्याम्···खड्गाभ्याम् स्थीयेते ।

भावार्थ:—कभी भी नाश न होने लायक कवच, नष्ट न होने वाले बाणों से युक्त तूणीर तथा दो तलवारें रखी हैं ॥३०॥

सत्कृत्य निहितं सर्वमेतदाचार्यसद्मनि ।
सर्वमायुधमादाय क्षिप्रमाव्रज लक्ष्मण ! ॥३१॥

पदच्छेद:—सत्कृत्य, निहितम्, सर्वम्, एतत्, आचार्यसद्मनि, सर्वम्, आयुधम्, आदाय, क्षिप्रम्, आव्रज, लक्ष्मण ।

अन्वय:—एतत्, सर्वम्, सत्कृत्य, आचार्यसद्मनि, निहितम्, हे लक्ष्मण !, सर्वम्, आयुधम्, आदाय, क्षिप्रम्, आव्रज ।

व्याख्या—एतत्, (इदम्) सर्वम् (निखिलम्) सत्कृत्य (सत्कारपूर्वम्) आचार्यसद्मनि (आचार्यगृहे) निहितम् (स्थापितम्) वर्तते इति शेषः।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

हे लक्ष्मण ! (हे सौमित्रे !) सर्वम् (सम्पूर्णम्) आयुधम् (आयुधसमूहम्) आदाय (गृहीत्वा) क्षिप्रम् (शीघ्रम्) आव्रज (आगच्छ) ।

व्युत्पत्तिः—सत् कृत्वा इति सत्कृत्य । आचार्यस्य सद्म तस्मिन् (तत्पु०) । आयुधमिति एकवचनम् जात्यभिप्रायेण, आयुधानि इति तदर्थः "जात्याख्यायामेकस्मिन्" इति पाणिनिः ।

संस्कृतार्थः – हे लक्ष्मण ! एतानि सर्वाणि शस्त्राणि सङ्कलय्य सम्मानरक्षार्थम् आचार्यगृहे स्थापितानि सन्ति । तानि आदाय शीघ्रम् आगच्छ ।

वाच्यान्तरम्—एतत् सर्वम्……आदाय क्षिप्रम् आव्रज्यताम् ।

भावार्थः – हे लक्ष्मण ! ये सभी अस्त्र इकट्ठे कर आचार्य महोदय के पास रख दिए गए हैं । तुम इन सबको लेकर शीघ्र आओ ॥ ३१ ॥

स सुहृज्जनमामन्त्र्य वनवासाय निश्चितः ।
इक्ष्वाकुगुरुमागम्य जग्राहायुधमुत्तमम् ॥ ३२ ॥

पदच्छेदः—सः, सुहृज्जनम्, आमन्त्र्य, वनवासाय, निश्चितः, इक्ष्वाकुगुरुम्, आगम्य, जग्राह, आयुधम्, उत्तमम् ।

अन्वयः—सः सुहृज्जनम्, आमन्त्र्य, वनवासाय, निश्चितः, इक्ष्वाकुगुरुम्, आगम्य, उत्तमम्, आयुधम्, जग्राह ।

व्याख्या—सः (लक्ष्मणः) सुहृज्जनम् (सुहृद्वर्गम्) आमन्त्र्य (आपृच्छय) वनवासाय (काननिवासाय) निश्चितः (दृढः) इक्ष्वाकुगुरुम् (इक्ष्वाकुकुलपूज्यम्) आगम्य (उपेत्य) उत्तमम् (अनुपमम्) आयुधम् (अस्त्रम्) जग्राह (अग्रहीत्) ।

व्युत्पत्तिः – सुहृदां जनानां समाहारः, सुहृदां जनः समूहो वा (ष० त०) । इक्ष्वाकूणां गुरुः, तम् (ष० त०) ।

संस्कृतार्थः—लक्ष्मणः मित्रवर्गम् पृष्ट्वा आचार्यसमीपात् अस्त्राणि आदात् ।

वाच्यान्तरम्—तेन……निश्चितेन आयुधम् जगृहे ।

भावार्थः—वे लक्ष्मण जी मित्रों से आज्ञा पाकर आचार्य महोदय के पास से अस्त्र ग्रहण किये ॥ ३२ ॥

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

तद् दिव्यं राजशार्दूलः सत्कृतं माल्यभूषितम् ।
रामाय दर्शयामास सौमित्रिः सर्वमायुधम् ॥ ३३ ॥

पदच्छेदः—तद्, दिव्यम्, राजशार्दूलः, सत्कृतम्, माल्यभूषितम्, रामाय, दर्शयामास, सौमित्रिः, सर्वम्, आयुधम् ।

अन्वयः—राजशार्दूलः, सौमित्रिः, सत्कृतम्, माल्यभूषितम्, तत्, दिव्यम्, सर्वम्, आयुधम्, रामाय, दर्शयामास ।

व्याख्या—राजशार्दूलः (राजसिंह) सौमित्रिः (लक्ष्मणः) सत्कृतम् (सुपूजितम्) माल्यभूषितम् (मालालङ्कृतम्) तत् (पूर्वोक्तम्) दिव्यम् (विलक्षणम्) सर्वम् (सम्पूर्णम्) आयुधम् (अस्त्रजातम्) रामाय (रामचन्द्राय) दर्शयामास (प्रदर्शयामास)।

व्युत्पत्तिः—राजसु शार्दूल इवेति राजशार्दूलः (उपमित०)। माल्यैः विभूषितम् (तृ० त०)।

संस्कृतार्थः—क्षत्रियश्रेष्ठः लक्ष्मणः तत् सर्वम् सुपूजितम् मालादिवेष्टितम् आयुधम् रामाय अवलोकयामास ।

वाच्यान्तरम्—राजशार्दूलेन सौमित्रिणा सर्वम् आयुधम् रामाय दर्शयाञ्चक्रे।

भावार्थः—क्षत्रियों में श्रेष्ठ लक्ष्मण जी ने सभी हथियार लाकर रामजी को दिखलाया ॥ ३३ ॥

तमुवाचात्मवान् रामः प्रीत्या लक्ष्मणमागतम् ।
काले त्वमागतः सौम्य ! काङ्क्षिते मम लक्ष्मण ! ॥ ३४ ॥

पदच्छेदः—तम्, उवाच, आत्मवान्, रामः, प्रीत्या, लक्ष्मणम्, आगतम्, काले, त्वम्, आगतः, सौम्य, काङ्क्षिते, मम, लक्ष्मण ।

अन्वयः—आत्मवान्, रामः, प्रीत्या, तम्, आगतम्, लक्ष्मणम्, उवाच । हे सौम्य !, लक्ष्मण !, त्वम्, मम, काङ्क्षिते, काले, आगतः ।

व्याख्या—आत्मवान् (आत्मज्ञः) रामः (रामचन्द्रः) प्रीत्या (स्नेहेन) आगतम् (समायातम्) तम् (पूर्वोक्तम्) लक्ष्मणम् (स्वानुजम्) उवाच (अवोचत) हे सौम्य ! (हे सज्जन !) लक्ष्मण ! (सौमित्रे !) त्वम् (लक्ष्मणः) मम (रामस्य) काङ्क्षिते (अभीष्टे) काले (समये) आगतः (समागतः) असि इति शेषः ।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

व्युत्पत्तिः—आत्मा अस्त्यस्य इति आत्मवान् । आत्मन् + मतुप् ।

संस्कृतार्थः—आत्मज्ञः रामः लक्ष्मणं जगाद । भो लक्ष्मण ! त्वमुचिते एव समये समागतः असि ।

वाच्यान्तरम्—आत्मवता लक्ष्मणः…ऊचे ।

भावार्थः—आत्मज्ञानी राम ने लक्ष्मण जी से कहा कि हे लक्ष्मण ! तुम बिलकुल ठीक समय से आ गए हो ॥ ३४ ॥

अहं प्रदातुमिच्छामि यदिदं मामकं धनम् ।
ब्राह्मणेभ्यस्तपस्विभ्यस्त्वया सह परन्तप ! ॥ ३५ ॥

पदच्छेदः—अहम् , प्रदातुम् , इच्छामि, यत् , इदम् , मामकम् , धनम , ब्राह्मणेभ्यः, तपस्विभ्यः, त्वया, सह, परन्तप ।

अन्वयः—हे परन्तप !, यत् , इदम् , मामकम् , धनम् , तत् , अहम् , तपस्विभ्यः, ब्राह्मणेभ्यः, त्वया, सह, प्रदातुम् , इच्छामि ।

व्याख्या—हे परन्तप ! (हे शत्रुनाशन !) यत् इदम् (एतत्) मामकम् (मदीयम्) धनम् (स्वम्) तत् (सर्वम्) अहं (रामः) तपस्विभ्यः (तपोनिष्ठेभ्यः) ब्राह्मणेभ्यः (द्विजेभ्यः) त्वया (लक्ष्मणेन) सह (सार्द्धम्) प्रदातुम् (वितरितुम्) इच्छामि (अभिलषामि) ।

व्युत्पत्तिः—परान् शत्रून् तापयतीति परन्तपः तत्सम्बुद्धौ हे परन्तप ! । "द्विषत्परयोस्तापे" इति पाणिनिः । मम इदम् मामकम् । तपः अस्ति एषामिति तपस्विनः तेभ्यः ।

संस्कृतार्थः—हे शत्रुनिषूदन ! मम यावद् धनादिकम् तत् सर्वं त्वया सह ब्राह्मणेभ्यः दातुम् वाञ्छामि ।

वाच्यान्तरम्—मया……दातुम्……इष्यते ।

भावार्थः—हे शत्रुनाशन ! तुम ठीक समय पर आये हो क्योंकि मैं अपना धन इत्यादि सारी सम्पत्ति तुम्हारे साथ ही पूज्य ब्राह्मणों को दान कर देना चाहता हूँ ॥३५॥

वसन्तीह दृढं भक्त्या गुरुषु द्विजसत्तमाः ।
तेषामपि च मे भूयः सर्वेषां चोपजीविनाम् ॥३६॥

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

पदच्छेदः—वसन्ति, इह, दृढम्, भक्त्या, गुरुषु, द्विजसत्तमाः, तेषाम्, अपि, च, मे, भूयः, सर्वेषाम्, च, उपजीविनाम् ।

अन्वयः—इह, गुरुषु, दृढम्, भक्त्या, द्विजसत्तमाः, वसन्ति, तेषाम्, अपि, च, भूयः, मे, सर्वेषाम्, उपजीविनाम् ।

व्याख्या—इह (मत्समीपे) गुरुषु (गुरुजनेषु) दृढम् भक्त्या (सुदृढानुरागेण) युक्ताः इति शेषः । वसन्ति (निवसन्ति) तेषाम् (तेभ्यः) अपि च भूयः (पुनः) मे (मम) सर्वेषाम् (सर्वेभ्यः) उपजीविनाम् (उपजीविभ्यः) प्रदातुम् इच्छामि इति शेषः ।

व्युत्पत्तिः—दृढम् (क्रियाविशेष०) । द्विजेषु सत्तमाः (तत्पु०) ।

संस्कृतार्थः—मत्समीपे एव गुरुजनेषु कृतदृढानुरागाः ब्राह्मणाः वसन्ति तेभ्यः अथ च शेषम् स्वोपजीविभ्यः प्रदातुमिच्छामि ।

वाच्यान्तरम्—मया तेभ्यः सर्वेभ्यः उपजीविभ्यः प्रदातुम् इष्यते ।

भावार्थः—मेरे पास में ही ब्राह्मण लोग रहते हैं जो कि गुरुओं में दृढ अनुराग रखते हैं, उनके लिए, तथा अपने आश्रितों के लिए देना चाहता हूँ ॥३६॥

वसिष्ठपुत्रं तु सुयज्ञमार्यं त्वमानयाशु प्रवरं द्विजानाम् ।
अपि प्रयास्यामि वनं समस्तानभ्यर्च्य शिष्टानपरान् द्विजातीन् ॥३७॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्येऽयोध्याकाण्डे [illegible]
एकत्रिंशः सर्गः ॥३१॥

पदच्छेदः—वसिष्ठपुत्रम्, तु, सुयज्ञम्, आर्यम्, त्वम्, [illegible] आशु, प्रवरम्, द्विजानाम्, अपि, प्रयास्यामि, वनम्, समस्तान्, अभ्यर्च्य, शिष्टान्, अपरान्, द्विजातीन् ।

अन्वयः—त्वम्, वसिष्ठपुत्रम्, आर्यम्, द्विजानाम्, प्रवरम्, सुयज्ञम्, आशु, आनय, समस्तान्, शिष्टान्, अपरान्, द्विजातीन्, च, अभ्यर्च्य, वनम्, प्रयास्यामि ।

व्याख्या—त्वम् (लक्ष्मण) वसिष्ठपुत्रम् (वसिष्ठसुतम्) आर्यम् (श्रेष्ठम्) द्विजानाम् (ब्राह्मणानाम्) प्रवरम् (श्रेष्ठम्) सुयज्ञम् (तन्नामकम्) आशु

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

(शीघ्रम्) आनय (आह्वय) अहमिति शेषः । समस्तान् (सम्पूर्णान्) शिष्टान् (सदाचारिणः) अपरान् (अन्यान्) च (पुनः) द्विजातीन् (ब्राह्मणान्) अभ्यर्च्य (पूजयित्वा) वनम् (काननम्) प्रयास्यामि (गमिष्यामि) नान्यथेति भावः ।

व्युत्पत्तिः—वसिष्ठस्य पुत्रः तम् (ष०त०) । प्रकर्षेण वरः तम् (गतिसमा०) ।

संस्कृतार्थः– हे लक्ष्मण ! त्वम् वसिष्ठपुत्रम् परमाराध्यम् सुयज्ञम् शीघ्रम् आनय । अहं सर्वान् शिष्टान् द्विजातीन् पूजयित्वा वनं गमिष्यामि ।

वाच्यान्तरम् - त्वया सुयज्ञः आनीयताम् , मया समस्तान् शिष्टान् अभ्यर्च्य वनं गमिष्यते ।

भावार्थः—हे लक्ष्मण ! तुम गुरु वसिष्ठ के पुत्र परमाराध्य सुयज्ञ महाराज को शीघ्र ले आओ । मैं उन की आज्ञा से अन्य ब्राह्मणों तथा विद्वानों की पूजा करके ही वन जाऊँगा ॥३७॥

इति वाल्मीकीये अयोध्याकाण्डे श्रीरामवनगमने आचार्यश्रीराजनारायणशास्त्रिशुक्लरचितायां प्रभाटीकायाम् अष्टमः सर्गः ॥ ८ ॥

LIBRARY

पुस्तकप्राप्तिस्थानम्—
मास्टर खेलाड़ीलाल ऐण्ड सन्स,
संस्कृत बुकडिपो,
कचौड़ीगली, बनारस-१

Acc No. 4051

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

❀ प्रथमपरीक्षोपयोगिपुस्तकानि ❀

लघुकौमुदी-सुबोधिनी भाषा टीका	१॥)
रामवनगमन-पदच्छेद, अन्वय, व्याख्या, व्युत्पत्ति, संस्कृतार्थ, वाच्यान्तर, भाषार्थ सहित	१॥)
विठ्ठलोपाख्यान-,, ,, ,, ,,	॥)
छन्दःकौमुदी-म० म० पं० नारायणशास्त्रि खिस्ते कृत	॥)
हितोपदेश-मित्रलाभ, सं० टी०, भा० टी०	१)
अमरकोष-प्रथमकाण्ड	।–)
शुक्लयजुर्वेदरुद्राष्टाध्यायी १-४ अ० तथा पुरुषसूक्त भा० टी०	।–)
हिन्दी नवज्योति-तीसरा भाग	१)
सप्तसरोज	।।।)
हिन्दी निबन्ध	३)
सरल हिन्दी व्याकरण	१।)
अपने देश की कथा	१=)
भारत का भूगोल	।–)
सरल नागरिक शास्त्र	॥–)
गणित कौमुदी	२)
तर्कसंग्रह—मूल	।)
,, —न्यायबोधिनी पदकृत्य भा० टी०	१)
शीघ्रबोध—पं० सीतारामझा कृत भा० टी०	१)

सर्वविधपरीक्षापाठ्यग्रन्थप्राप्तिस्थान—

मास्टर खेलाड़ीलाल ऐण्ड सन्स

संस्कृत बुकडिपो,

कचौड़ीगली, बनारस-१

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi